शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
महाराष्ट्र

दूरशिक्षण केंद्र

सत्र–5 पेपर 9 (DSE- E8)

हिंदी साहित्य का इतिहास

(शैक्षिक वर्ष 2021-22 से)

बी. ए. भाग–3 हिंदी

© **कुलसचिव,** शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
प्रथम संस्करण : 2021
बी. ए. भाग 3 (हिंदी : बीजपत्र-9 और 14)
सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ : 300

■

प्रकाशक :
डॉ. व्ही. एन. शिंदे
प्रभारी कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

मुद्रक :
श्री. बी. पी. पाटील
अधीक्षक,
शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

ISBN- 978-93-92887-48-2

★ दूरशिक्षण केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी-
शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर-416 004. (भारत)

दूरशिक्षण केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

सलाहकार समिति

प्रा. (डॉ.) डी. टी. शिर्के
मा. कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) पी. एस. पाटील
प्र-कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) एम. एम. साळुंखे
माजी कुलगुरू,
यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विश्वविद्यालय, नाशिक

प्रा. (डॉ.) के. एस. रंगाप्पा
मा. कुलगुरू,
म्हैसुर विश्वविद्यालय, म्हैसुर

प्रा. पी. प्रकाश
अतिरिक्त सचिव-II
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नवी दिल्ली

प्रा. (डॉ.) सीमा येवले
गीत-गोविंद, फ्लॅट नं. २, ११३९ साईक्स एक्स्टेंशन,
कोल्हापुर-४१६००१

प्रा. (डॉ.) आर. के. कामत
प्रभारी अधिष्ठाता, विज्ञान और तंत्रज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) एस. एस. महाजन
प्रभारी अधिष्ठाता, वाणिज्य और व्यवस्थापन विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्य (डॉ.) आर. जी. कुलकर्णी
प्रभारी अधिष्ठाता, मानवविज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्या (डॉ.) श्रीमती एम. व्ही. गुळवणी
प्रभारी अधिष्ठाता, आंतर-विद्याशाखीय अभ्यास
विद्याशाखा
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. व्ही. एन. शिंदे
प्रभारी कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्री. जी. आर. पळसे
प्रभारी संचालक, परीक्षा व मूल्यमापन मंडळ,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्री. ए. बी. चौगुले
प्रभारी वित्त व लेखा अधिकारी,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) डी. के. मोरे
(सदस्य सचिव)
संचालक, दूरशिक्षण केंद्र,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

हिंदी अध्ययन मंडल

डॉ. राजेंद्र पिलोबा भोसले
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
एवं
छत्रपती शिवाजी कॉलेज, सातारा

- **प्रो. डॉ. अर्जुन चव्हाण**
  हिंदी विभाग,
  शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
- **डॉ. भारत खिलारे**
  कला व वाणिज्य कॉलेज, पुसेगांव, जि. सातारा
- **डॉ. संजय कांबळे**
  तुकाराम कृष्णाजी कोळेकर कला व वाणिज्य कॉलेज,
  नेसरी, ता. गडहिंग्लज, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. बबन शंकर सातपुते**
  मिरज महाविद्यालय, मिरज, जि. सांगली
- **डॉ. क्षितिज यादवराव धुमाळ**
  कला व वाणिज्य कॉलेज, वडूज, जि. सातारा
- **डॉ. संजय पिराजी चिंदगे**
  देशभक्त आनंदराव बळवंतराव नाईक कला व विज्ञान
  कॉलेज, चिखली, ता. शिराळा, जि. सांगली
- **प्रा. (डॉ.) सुनील बापू बनसोडे**
  जयसिंगपुर कॉलेज, जयसिंगपुर, जि. कोल्हापुर
- **प्रा. (डॉ.) एकनाथ श्रीपती पाटील**
  राधानगरी महाविद्यालय, राधानगरी,
  जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. विष्णु रानबा सरवदे**
  प्रोफेसर, केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद
- **डॉ. मोहन मंगेशराव सावंत**
  श्री. आण्णासाहेब डांगे कला, वाणिज्य व विज्ञान
  कॉलेज, हातकणंगले, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. प्रकाश शंकरराव चिकुर्डेकर**
  यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, वारणानगर,
  जि. कोल्हापुर
- **डॉ. मधुकर शंकरराव खराटे**
  कला, वाणिज्य व विज्ञान कॉलेज, बोदवड,
  जि. जळगाव
- **डॉ. श्रीमती सरोज संग्राम पाटील**
  श्री शहाजी छत्रपति महाविद्यालय, कोल्हापुर

अपनी बात

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर की दूरशिक्षा योजना के अंतर्गत बी. ए. भाग–3 हिंदी विषय के छात्रों के लिए निर्मित अध्ययन सामग्री नियमित रुप से प्रवेश न ले पाने वाले छात्रों की असुविधा को दूर करने के संकल्प का सुफल है। इसमें एक ओर विश्वविद्यालय की सामाजिक संवेदनशीलता दिखाई देती है, तो दूसरी ओर शिक्षा से वंचित छात्रों को अध्ययन सामग्री सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्धता। बी. ए. भाग 1, 2 तक की अध्ययन सामग्री से दूरशिक्षा योजना के छात्र जिस तरह लाभान्वित हुए हैं, उसी तरह बी. ए. भाग 3 के छात्र भी प्रस्तुत स्वयं–अध्ययन सामग्री से लाभान्वित होंगे, यह विश्वास है।

दूरशिक्षा के छात्रों का महाविद्यालयों तथा अध्यापकों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से कोई संबंध नहीं आता। उनकी इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्ययन सामग्री को सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र का स्वरुप तथा अंक–वितरण को ध्यान में रखकर अध्ययन–सामग्री को आवश्यकतानुसार विस्तृत तथा सूक्ष्म रुप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हमें आशा ही नहीं, बल्कि विश्वास भी हैं कि प्रस्तुत अध्ययन सामग्री बी. ए. भाग 3 के छात्रों के लिए उपादेय सिद्ध होगी।

प्रस्तुत सामग्री सामूहिक प्रयास का फल है। इकाई लेखकों ने अपनी–अपनी इकाइयों का लेखन समय पर पूरा कर इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शिवाजी विश्वविद्यालय के मा. कुलगुरू, कुलसचिव, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय विकास मंडल के संचालक, दूरशिक्षा विभाग के संचालक एवं उनके सभी सहयोगी सदस्यों ने समय–समय पर आवश्यक सहयोग दिया। अतः इन सभी के प्रति आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

धन्यवाद।

– संपादक

	सत्र 5	सत्र 6
★ **डॉ. सौ शाहीन एजाज जमादार** मिरज महाविद्यालय, मिरज	**1**	**-**
★ **डॉ. हेमलता काटे** बाळासाहेब देसाई कॉलेज पाटण, ता. पाटण, जि. सातारा	**2**	**-**
★ **डॉ. रवींद्र पाटिल** राजश्री शाहू कॉलेज, कोल्हापुर	**3**	**-**
★ **डॉ. रमेश लक्ष्मण गोवंडे** श्रीमती जी. के. जी. कन्या महाविद्यालय, जयसिंगपुर	**4**	**-**
★ **डॉ. विठ्ठल नाईक** श्रीमती आक्काताई रामगोंडा पाटील कन्या महाविद्यालय, इचलकरंजी. ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर	**-**	**1**
★ **डॉ. भारत उपाध्य** वारणा महाविद्यालय ऐतवडे खुर्द, ता. वाळवा, जि. सांगली	**-**	**2**
★ **डॉ. नितीन कुंभार** आर्टस, कॉमर्स अॅण्ड सायन्स कॉलेज, रामानंदनगर, जि. सांगली	**-**	**3**
★ **डॉ. माधव मुंडकर** नाईट कॉलेज ऑफ आर्टस अॅण्ड कॉमर्स, इचलकरंजी, ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर	**-**	**4**

■ **सम्पादक** ■

डॉ. आर. पी. भोसले
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
एवं
छत्रपती शिवाजी कॉलेज, सातारा

डॉ. एस. पी. चिंदगे
देशभक्त आनंदराव बळवंतराव नाईक
आर्टस अॅण्ड सायन्स कॉलेज, यशवंतनगर चिखली,
ता. शिराळा, जि. सांगली

अनुक्रमणिका

इकाई	पाठ्यविषय	पृष्ठ
	सत्र-5 पेपर 9 : हिंदी साहित्य का इतिहास	
1.	आदिकाल	1
2.	भक्तिकाल	23
3.	निर्गुण भक्तिधारा	53
4.	सगुण भक्तिधारा	78
	सत्र-6 पेपर 14 : हिंदी साहित्य का इतिहास	
1.	रीतिकाल	94
2.	आधुनिक काल	121
3.	आधुनिक गद्य विधाओं का विकास	154
4.	आधुनिक काल	178

हर इकाई की शुरूआत उद्देश्य से होगी, जिससे दिशा और आगे के विषय सूचित होंगे–

(१) इकाई में क्या दिया गया है।

(२) आपसे क्या अपेक्षित है।

(३) विशेष इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको किन बातों से अवगत होना अपेक्षित है।

स्वयं–अध्ययन के लिए कुछ प्रश्न दिए गए हैं, जिनके अपेक्षित उत्तरों को भी दर्ज किया है। इससे इकाई का अध्ययन सही दिशा से होगा। आपके उत्तर लिखने के पश्चात् ही स्वयं–अध्ययन के अंतर्गत दिए हुए उत्तरों को देखें। आपके द्वारा लिखे गए उत्तर (स्वाध्याय) मूल्यांकन के लिए हमारे पास भेजने की आवश्यकता नहीं है। आपका अध्ययन सही दिशा से हो, इसलिए यह अध्ययन सामग्री (Study Tool) उपयुक्त सिद्ध होगी।

इकाई 1

आदिकाल

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय – विवेचन

1.3.1 आदिकाल का नामकरण ।

1.3.2 आदिकाल की सामाजिक परिस्थितियाँ और राजनीतिक परिस्थितियाँ ।

1.3.3 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएँ :

पृथ्वीराज रासो एवं बीसलदेव रासो का सामान्य परिचय ।

1.4 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल और उसके नामकरण की समस्या से परिचित होंगे ।
2. आदिकालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ को समझ सकेंगे ।
3. आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएँ, पृथ्वीराज रासो एवं बीसलदेव रासो के सामान्य परिचय से परिचित होंगे ।

1.2 प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य के आदिकाल के काल-निर्धारण और नामकरण की समस्या हिन्दी साहित्योतिहास की एक ज्वलंत समस्या है । अभी तक इस समस्या का सही समाधान नही हो पाया है । हिन्दी साहित्य के प्रथम रचना-काल को हिन्दी साहित्य का आदिकाल कहा है । सं. 1000 के आसपास हिन्दी भाषा तथा अन्य भारतीय आर्यभाषाओं का प्रारंभ हुआ । प्रारंभ में भाषा का स्वरूप स्पष्ट नहीं था । हिन्दी साहित्य के प्रारंभ के संबंध में मतभेद हैं, फिर भी सामान्यत: सं. 1050 से. सं. 1375 तक के कालखंड को 'आदिकाल' कहा जाता है। अनेक विद्वानों ने इस काल को अनेक नामों से पुकारा है । इस काल में सिद्ध काव्यधारा, नाथ काव्यधारा, जैन काव्यधारा, सामन्ती श्रृंगार, वीर काव्यधारा तथा इनसे सम्बन्धित विभिन्न काव्य रूप और रूढियों आदि की महत्ता रही है । फिर भी यह काल विवादास्पद रहा है ।

प्रस्तुत इकाई में हिन्दी साहित्य का इतिहास के आदिकाल पर विस्तार से विचार करते समय आदिकाल का कालविभाजन, नामकरण, आदिकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ, आदिकालीन रासो साहित्य का सामान्य परिचय आदि पर विस्तार से चर्चा करेंगे ।

1.3 विषय – विवेचन :

काल विभाजन और नामकरण का सबसे मौलिक प्रयास आ. रामचंद्र शुक्ल ने किया। उन्होंने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में काल-विभाजन और नामकरण को प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रत्येक कालखंड को दो-दो नाम दिए हैं। एक मानव मनोविज्ञान पर आधारित है तो दूसरा नाम साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर। आ. शुक्ल का काल-विभाजन और नामकरण इस प्रकार है -

हिन्दी साहित्य का इतिहास

आदिकाल	पूर्व मध्यकाल	उत्तर मध्यकाल	आधुनिक काल
(वीरगाथा काल)	(भक्तिकाल)	(रीतिकाल)	(गद्यकाल)
सं. 1050 से	सं. 1375 से	सं. 1700 से	सं. 1900 से
सं. 1375 तक	सं. 1700 तक	सं. 1900 तक	आज तक

आ. रामचंद्र शुक्ल जी का यह का-विभाजन और नामकरण हिन्दी साहित्य में सर्वमान्य है। अनेक इतिहासकारों ने इसे थोडा परिवर्तन करके इसे ही स्वीकार किया है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल ये चार काल सर्वमान्य हैं।

1.3.1 आदिकाल का नामकरण :

सामान्यत: हिंदी साहित्य के इतिहास का नामकरण कृति, कर्ता, पद्धति और विषय की दृष्टि से किया जाता है। कभी-कभी नामकरण के किसी ठोस आधार के उपलब्ध न होने पर उस काल के किसी अत्यंत प्रभावशाली साहित्यकार के नाम पर या कभी साहित्य सृजन की प्रमुख शैलियों के आधार पर इसके

अतिरिक्त कभी-कभी मानव मनोविज्ञान और तत्कालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति को नामकरण का आधार माना जाता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल के नामकरण की समस्या विवादास्पद है। दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक के साहित्य की प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए विद्वान, आलोचकों ने इस काल को विविध नामों से पुकारा है। इस युग में विविध प्रवृत्तियों का साहित्य लिखा गया। उस समय हिन्दी भाषा का स्वरूप स्पष्ट और निश्चित नहीं था। अनेक विद्वानों ने इस काल को अलग-अलग नामों से पुकारा है। आज भी आदिकाल के नामकरण की समस्या विवादास्पद बनी हुई है। सामान्यत: सं. 1050 से सं. 1375 तक के काल को 'आदिकाल' कहा जाता है। इस युग के विभिन्न नाम इस प्रकार हैं -

1. वीरगाथाकाल : आ. रामचंद्र शुक्ल

आ. रामचंद्र शुक्ल जी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस काव्य को वीरगाथा काव्य कहा है, क्योंकि उक्त काव्य के भीतर दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं - अपभ्रंश की और देशभाषा (बोलचाल) की। अपभ्रंश की पुस्तकों में कई तो जैनों के धर्म-तत्त्व-निरुपण संबंधी जो साहित्य की कोटि में नहीं आती और जिनका उल्लेख केवल यह दिखाने के लिए ही किया गया है कि अपभ्रंश भाषा का व्यवहार कब से हो रहा था। साहित्य की कोटि में आने वाली रचनाओं में कुछ तो भिन्न-भिन्न विषयों पर फुटकल दोहें हैं जिनके अनुसार उस काल की कोई विशेष प्रवृत्ति निर्धारित नहीं की जा सकती। साहित्यिक ग्रंथ केवल चार हैं -

1. विजयपाल रासो
2. हम्मीर रासो
3. कीर्तिलता
4. कीर्तिपताका

देश भाषा की आठ ग्रंथ प्रसिद्ध हैं -

5. खुमान रासो
6. बीसलदेव रासो
7. पृथ्वीराज रासो
8. जयचंद प्रकाश
9. जयमयंक-जस-चंद्रिका
10. परमाल रासो (आल्हा का मूलरूप)
11. खुसरो की पहेलियाँ आदि
12. विद्यापति की पदावली

इस बारह ग्रंथों में से अंतिम दो तथा बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रंथ वीरगाथात्मक ही हैं। अत: इसी आधार पर आदिकाल का नाम 'वीरगाथाकाल' ही रखा जा सकता है। शुक्ल जी ने इसी नाम से पुकारा है।

समीक्षा :

हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस नामकरण की चर्चा अधिक रही। शुक्ल जी का यह नामकरण तर्कसंगत नहीं है। उन्होंने जिन 12 ग्रन्थों को आदिकाल के लक्षण निरुपण एवं नामकरण के लिए चुना तथा

उन ग्रन्थों में वीरगाथाओं की प्रमुखता दिखलाई, उनमें से अधिकांश ग्रंथ संदिग्ध एवं अप्रामाणिक हैं। इतना जरुर कहा जा सकता है कि इस काल की सामन्ती रचनाओं में वीरत्व का बड़ा ओजस्वी स्वर सुनाई पड़ता है। इस युग के काव्य में एक साथ अनेक प्रवृत्तियाँ चलती रही। अर्थात शुक्ल जी का यह नामकरण उचित नहीं है। अन्य इतिहासकारों ने भी इस नामकरण को स्वीकार नहीं किया है।

2. सिद्ध–सामंत–युग : राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन ने प्रस्तुत काल को 'सिद्ध–सामंत–युग' के नाम से अभिहित किया है। उन्होंने उसकी पूर्वापार सीमाएं 8वीं शती से 13 वीं शती तक निर्धारित की है। उन्होंने इस युग की साहित्य–सामग्री का विवेचन करके उनमें दो प्रवृत्तियों की प्रमुखता देकर इस युग का नामकरण 'सिद्ध–सामंत–युग' कहा है। जैसे – सिद्धों की वाणी और सामंतों की स्तुतिपरक रचनाएँ। सिद्धों की वाणी के अंतर्गत बौद्ध, नाथ सिद्धों की तथा जैन साधुओं का धार्मिक साहित्य आता है। सामन्तों की स्तुतिपरक रचनाओं के अंतर्गत चारण जाति वे कवियों की राजस्तुति परक रचनाएँ आती हैं। 'सामन्त' जिस काव्य का प्रधान आश्रयदाता उन उसमें उसके झूठे–सच्चे विजयों और कल्पित–अकल्पित–प्रेम प्रसंगों का वर्णन आता है। इस युग में वीर और शृंगार दोनों रसों की प्रधानता दिखाई देती है। साथ ही सामंत शब्द से उस युग की राजनीतिक स्थिति का परिचय होता है।

समीक्षा :

राहुल जी के नामकरण में महत्त्वपूर्ण जैन और लौकिक रस से अनुप्राणित महत्त्वपूर्ण रचनाओं का कुछ भी आभास नहीं मिलता, जिन पर स्वयं राहुल जी जोर देना चाहते थे। इस नामकरण से उस युग के साहित्य की समूची प्रवृत्तियों का बोध नहीं हो सकता। सन्देशरासक, विद्यापति की पदावली इत्यादि अनेक रचनाएँ जिनकी प्रवृत्तियों का परवर्ती साहित्य में विकास हुआ, उपेक्षित रह जाता हैं। इस नामकारण से उस काल के साहित्य की समूची प्रवृत्तियों का बोध नहीं हो सकता। भाषाशास्त्रीय दृष्टि से यह नामकरण उचित नहीं है। क्योंकि उस काल को उपभ्रंश भाषा का पूर्ण यौवन काल कहा जा सकता है। इस में हिन्दी का कोई निश्चित रूप नहीं मिलता। राहुल जी ने पुरानी हिन्दी और अपभ्रंश को एक ही माना है। अत: यह नामकरण उचित नहीं है।

3. चारणकाल : डॉ. रामकुमार वर्मा

डॉ. रामकुमार वर्मा ने इस काल के वीरगाथाओं का परिचय देते हुए इस काल को 'चारणकाल' कहा है। क्योंकि इस युग के अधिकांश कवि चारण थे। जो राजाओं के दरबार में आश्रित थे। इन सभी चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की खुलकर स्तुति की है। यह युग सामंतों का युग भी कहा जाता है। इसलिए इस युग को 'चारणकाल' कहा गया।

समीक्षा :

डॉ. रामकुमार वर्मा जी का दिया हुआ नामकरण पूर्ण रूप से तर्कसंगत नहीं है। क्योंकि इसकाल के

साहित्य में चारण प्रवृत्ति आंशिक रूप से दिखने को मिलती है। इस युग में एक साथ अनेक प्रवृत्तियाँ चलती रही, इसलिए चारणप्रवृत्ति इस साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति नहीं है। यह देखकर अन्य विद्वानों ने भी इस नामकरण को स्वीकार नहीं किया है। अत: यह नामकरण भी उचित नहीं है।

4. बीजवपनकाल : आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी

आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य के आदिकाल का लक्षण-विवेचन करके इसका नाम 'बीज-वपन-काल' रखा है।

इस युग में हिन्दी साहित्य के बीज बोए गये थे। इस युग में हिन्दी साहित्य के सभी प्रकार की प्रवृत्तियों का बीजवपन हुआ था। इन सभी का लक्षण-विवेचन करके इस युग को 'बीजवपनकाल' कहा गया।

समीक्षा :

आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का यह नामकरण पूर्णत: तर्क संगत नहीं है, क्योंकि साहित्यिक प्रवृत्तियों की दृष्टि से इसे उक्त नाम से पुकारना असंगत है। इस काल में प्राय: अपने पूर्ववर्ती साहित्य की सभी काव्य रुढ़ियों और परम्पराओं का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। साथ ही साथ कुछ नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी उद्भव हुआ है। जो अपने समुचित विकास रूप में देखने मिलते हैं। जैसे - संदेश रासक, ढोला मारू रा दूहा, बीसलदेव रासो आदि लौकिक प्रेम-कथा-काव्य, नाथ-सिद्धों की बानियाँ, जैन-कवियों के फाग, रास, चर्चही, चरित, पुराण, काव्य, 'पाकृत पैंगलम' के पद्य, कीर्तिलता, कीर्तिपताका, उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण, वर्ण रत्नाकर आदि काव्य-ग्रंथ एक साथ विवेचित हुए। यह भी कहा जा सकता है कि कोई भी साहित्य बीज रूप में नहीं होता। अत: यह नामकरण भी उचित नहीं है।

5. आदिकाल :

सबसे पहले मिश्रबन्धुओं ने अपने 'मिश्रबन्धु विनोद' नामक ग्रंथ में ई.स. 643 से ई.स. 1387 तक के कालखण्ड को आदिकाल के नाम से पुकारा है। बाद में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने इसे स्वीकार किया है। इसके बाद आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी स्वीकार किया है। आज अधिकांश विद्वान इस नामकरण को ही उचित मानते हैं। आदिकाल यह नामकरण मानव मनोविज्ञान पर आधारित है। मानव मनोविज्ञान किसी भी कालखंड को तीन भागों में विभाजित करता है - आदि, मध्य और अन्त या आधुनिक।

समीक्षा :

अनेक विद्वानों ने इस कालखंड के साहित्य का विवेचन करके इस कालखंड के 'आदिकाल' इस नाम को स्वीकार किया है। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इस युग का साहित्य अन्तर्विरोधों का साहित्य था। इसलिए किसी एक प्रवृत्ति के आधार पर उस युग का नामकरण नहीं किया जा सकता। आदिकाल ही नामकरण उपयुक्त है। साथ ही विकास क्रम की दृष्टि से इस काव्य को आदिकाल कहना ही समुचित है। इस युग की पृष्ठभूमि व्यापक है जो आदिकाल के नामकरण का बोध कराती है। जिस पर आगे का साहित्य

खड़ा है। भाव की दृष्टि से परवर्ती साहित्य की सभी प्रवृत्तियों के बीज इस युग के साहित्य में मिलतें हैं। साथ ही हिन्दी के आदि रूप के दर्शन भी होते हैं। 'आदिकाल' नाम के प्रस्तोताओं और प्रतिपादकों में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रवृत्ति विद्वान हैं। अत: 'आदिकाल' यह नाम ही युक्त, उचित एवं सर्वमान्य और सर्व संमत है।

1.3.2 आदिकाल की परिस्थितियाँ :

प्रत्येक युग का साहित्य अपनी युगीन परिस्थितियों की ऊपज होता है। इसका कारण यह है कि वे उसके निर्माण में प्रेरक तत्वों का काम देती हैं। कोई भी साहित्यकार उनसे अप्रभावित नहीं रह सकता। फलस्वरूप वे उसके साहित्य में प्रतिफलित हो उठती हैं। अत: किसी भी काल के साहित्य के वैज्ञानिक अनुशीलन के लिए तद्युगीन परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक है। युगीन पीठिका का निर्माण तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों से होता है। अत: हिन्दी साहित्य के अनुशीलन के लिए भी उसका ज्ञान होना जरुरी है।

1.3.2.1 आदिकाल की सामाजिक परिस्थिती :

जिस युग में धर्म और राजनीतिक की दीन-हीन दशा हो, उस युग में उच्च सामाजिकता की आशा नहीं की जा सकती। राजनीतिक की दृष्टि से अव्यवस्था तो धर्म के नाम पर अधर्म फैला था। सामान्य जनता युद्धों में पीस रही थी। जनता आर्थिक संकट में थी।

1. जाति-व्यवस्था :

इस युग में जाति व्यवस्था के बंधन कठोर बन गये थे। अब जाति गुण और कर्म के आधार पर न होकर वर्ग के आधार पर मानी जानी लगी थी। एक जाति की अनेक उपजातियाँ होने लगी थी। छुआछूत के नियम कड़े होते गये। ब्राहमण और क्षत्रिय दोनों ही उपजातियों में बँटते चले जा रहे थे। हिन्दू जाति की पाचन शक्ति का प्राय: ऱ्हास हो चुका था। हिन्दुओं को इस बात की इच्छा नहीं होती थी कि जो वस्तु एक बार भ्रष्ट हो गई है उसे शुद्ध करके फिर ले। उस समय रुढ़िग्रस्त धर्म के समान समाज भी रुढ़िग्रस्त हो चुका था। राजपूत जाति का अभ्युदय इस काल की महान घटना है। वे 36 कुलों में बँट गये थे। ब्रह्मणों-क्षत्रियों का प्रभाव वैश्य और शूद्रों पर पड़ना अनिवार्य था, अत: वे भी और उपजातियों में विभाजित हो गए। वैश्यों ने कृषि त्याग कर वाणिज्य को प्रमुख व्यवसाय बना लिया। शूद्रों को समाज में विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। उनका जीवन सेवा के लिए ही था। ऊपर उठने के लिए उनके पास कोई साधन नहीं थे।

2. रुढ़िग्रस्त समाज :

आदिकाल के रुढ़िग्रस्त धर्म के समान समाज भी रुढ़िग्रस्त हो चुका था। उस युग में सामंती वीरता और वंश-कुलीनता का बोलबाला था। राजपूत जाति वीरता और आत्मोत्सर्ग के लिए प्रसिद्ध थी। राजपूत नारियाँ भी पीछे नहीं थी, उस समय जौहर उनके आत्म-बलिदान और शौर्य का प्रतीक था। उस समय स्वयंवर

प्रथा एक अन्य सामाजिक विशेषता थी। मुस्लिम आक्रमणों की वजह से बालविवाह और पर्दा पद्धति की प्रथा भी प्रचलित हो गई थी। राजा विलासी एवं बहुपत्नीत्व थे। इसी कारण उनके उत्तरअधिकारी भी बहुपत्नीत्व थे। उस युग का समाज नैतिक मूल्यों से भ्रष्ट हो गया था।

3. राजा, सामंत और सामान्य जनता :

आदिकाल का युग राजाओं और सामंतों का युग था। उस युग के राजाओं का जीवन विलासमय था। ऐश्वर्यभिभूत नृपति वर्ग का अधिकांश समय अन्त:पुर में अपनी महिषियों, उपपत्नियों तथा रक्षिताओं के साथ रंगरलियों में बीतता था। राजा बहुपत्नीक थे। स्वयंवर जैसे धार्मिक कृत्यों पर खून की नदियाँ बह जाया करती थी। चारों ओर युद्धों का वातावरण था। सामान्य जनता में मनोबल की कमी थी। हिंदू समाज जन्मगत, स्थानगत, व्यवसायगत, सम्प्रदायगत और वंशगत जातियों एवं उपजातियों में बँट गया था। जिससे परस्पर संगठन एवं सहानुभूति का अवसर उत्पन्न नहीं हो पाता था। हर तरफ युद्धों का वातावरण था।

4. नारी के प्रति दृष्टिकोण :

इस युग में नारी की अवस्था बहुत ही बिकट थी। उसके प्रति समाज में उदात्त दृष्टिकोण नहीं था। नारी को सिर्फ भोग का साधन समझा जाता था। उस युग में बालविवाह, पर्दापद्धत, तथा सती प्रथा का भी बोलबाला था। नारी को कोई सामाजिक महत्त्व नहीं था। उसे सिर्फ भोग का साधन समझा जाता था। सिर्फ नारी की प्राप्ति के लिए अनेक राजाओं में युद्ध भी होते थे।

5. विवाह एवं उत्सव :

उस समय विवाह लगभग सभी करते थे और गृहस्थ आश्रम एक ऐसे मर्यादित आश्रम के रूप में माना जाता था जिसके द्वारा अर्थ और काम की प्राप्ति हो सकती थी। स्मृतियों में गिनाए गए ब्राहम, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गांधर्व, असूर, पिशाच और राक्षस ये आठ प्रकार के विवाह सैद्धान्तिक दृष्टि से मान्य थे। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से ब्राम्ह विवाह का अधिक प्रचार था। तो निम्नवर्ण में आसूर विवाह की प्रथा थी। स्वयंवर की प्रथा सिर्फ राजपूतों तक ही सीमित थी। मुस्लिमों के आक्रमण के पश्चात् बालविवाह की प्रथा भी रुढ़ हो गई। उस समय विधवा विवाह का निषेध था।

इस काल में समाज के विभिन्न वर्गों में विविध प्रकार के उत्सवों और वस्त्राभूषणों के प्रति प्रेम प्रचलित था। आखेट, मल्ल-युद्ध, घुड़सवारी, द्यूत-क्रीड़ा, संगीत, नृत्य आदि मनोरंजन के साधन थे और कवियों का विशेष आदर था।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काव्य में संगठित सामाजिक व्यवस्था की आशा नहीं कि जा सकती थी। धार्मिक अराजकता के बीच सामाजिक जीवन आडम्बरपूर्ण बनता जा रहा था। अधिकांश क्षत्रियों में राष्ट्रीय भावना का ऱ्हास हो गया था । समाज जाति-पाति, गोत्र आदि के झगड़े में पड़कर ऐक्य की भावना भूल गया था । इस सामाजिक अवस्था का चित्र तत्कालीन हिन्दी साहित्य में पूर्ण रूप से चित्रित हुआ है ।

1.3.2.2 आदिकाल की राजनीतिक परिस्थिति :

१) अव्यवस्था और पराजय का युग :

भारतीय इतिहास का यह युग राजनीति की दृष्टि से अव्यवस्था, गृह-कलह और पराजय का युग था। इस काल से भारतीय राजनीतिक जीवन के विश्रृंखल होने का इतिहास प्रारम्भ होता है । ईसा की सातवी आठवी शताब्दी से बारहवी शताब्दी के राजनीतिक घटना चक्र ने हिन्दी साहित्य को भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया था । एक ओर मुसलमानों के आक्रमण पर आक्रमण हो रहे थे, तो दूसरी ओर देश के देशी राजे आपस में लड़ते रहे थे। गृह-कलह के कारण राजाओं की शक्ति नष्ट हो गई थी । उन्हें परकियों से पराजित होना पड़ा ।

२) केंद्रीय सत्ता का ऱ्हास :

सम्राट हर्षवर्धन (सन् 606 से 643) के निधन के पश्चात मानों एक प्रकार से उत्तरी भारत से केंद्रीय सत्ता का ऱ्हास हो गया और राजसत्ता पूर्ण रूप से डाँवाडोल हो गई । 9 वीं शताब्दी में प्रतिहार मिहिर भोज ने उसे फिर समेटा तो उधर दक्षिण को राष्ट्रकूटों के साम्राज्य ने सम्भाल रखा था । उधर अरब में नवोदित इस्लाम ने अफगाणिस्थान तक अपने पैर पसारने चाहे उस समय अफगाणिस्थान भारत के अंतर्गत ही था । अब मुस्लिमों ने सिंध को प्रवेशद्वार बनाया और सन् 710 - 11 में सबसे पहले मुहम्मद बिन कासिम के नेतृत्त्व में सिंध पर धावा किया । सिंध का राजा दाहिर और उसके बेटे तिल-तिल भूमि के लिए लड़े लेकिन अंत में उन्हें पराजित होना पड़ा। फिर 739 ई. में तत्कालीन अरब सेनापति ने सिंध से कच्छ, दाक्खिनी मारवाड, उज्जैन और उत्तरी गुजरात को ध्वस्त कर दक्षिण गुजरात में प्रवेश किया। लेकिन चालुक्य सेनापति ने अरब सेना को सिंध तक ही सीमित रखा । उस समय कश्मिर में सम्राट ललितादित्य का शक्तिशाली राज्य था।

ग्यारहवीं - बारहवीं शताब्दी में दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान और कन्नौज में गाहडवाण के शक्तिशाली राज्य बने। उस समय बीसलदेव चौहान ने तोमरों से दिल्ली ले ली और हिमालय तक अपने राज्य का विस्तार किया। इस तरह तीनों आपस में लड़ते रहें उन्होने कभी एकत्रित होकर विदेशी आक्रमणों का सामना नहीं किया । अत: एक-एक करके वे पराजित होते गये ।

३) महमूद गजनवी और शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण :

मुसलमानों ने सिंध को प्रवेशद्वार बनाकर उत्तरी भारत पर आक्रमण करके उत्तरी भारत पर अपना कब्जा किया। उस समय देशी राजाओं में मनोबल की कमतरता और अपने राजाओं के प्रति उदासीनता होने की वजह से वे विदेशियों से हरते चले गए। 10 वीं शताब्दी के अंत में गजनी का राज्य महमूद गजनवीं के हाथ में आ गया था । उसने भारत पर अनेक बार आक्रमण किए थे। जिससे उत्तरी भारत पूर्ण रूप से उध्वस्त हो चूका था। उसने अपने राज्य विस्तार के लिए सोमनाथ, कन्नौज और कालिंजर के समृध्द मंदिरों में जमा अपार धनराशि को लूटा था । बाद में गजनी का राज्य शाहबुद्दीन गौरी के हाथ में आया। उसने पृथ्वीराज चौहान

पर अनेक बार आक्रमण किए। गौरी को पृथ्वीराज से अनेक बार पराजित होना पड़ा । अंत में कन्नौज के राजा जयचन्द के षड्यंत्र के परिणामस्वरूप पृथ्वीराज मुहम्मद गौरी से पराजित हुआ और मारा गया । फिर कन्नौज और कालिंजर का भी पतन हुआ और दिल्ली में तुर्की सल्तनत का झंडा फहरने लगा । इस तरह उत्तर भारत में मुस्लिमों की सता का उदय हुआ ।

५) संकुचित राष्ट्रीयता की भावना :

उस युग में राजा अपने दस पच्चास गांवों को ही अपना राष्ट्र समझते थे। उन्होंने व्यापक रूप में समूचे भारत को अपना राष्ट्र नहीं समझा था । हिन्दुओं में अपना राज्य फैलाने की लालसा लिये अनेक वीर थे किन्तु आक्रमण के समय पड़ोसी राज्य से उदासीन रहते थे । उनमें संकुचित राष्ट्रीयता थी । इसी कारण उन्होंने विदेशी आक्रमणों का एक होकर सामना नहीं किया था । सभी राज्य के राजा आपस में लड़ते रहें और एक एक करके पराजित होते रहें । वैयक्तिक वीरता होते हुए भी उन्हें दूसरों से पराजित होना पड़ा । वे यदि सम्मिलित रूप से विदेशी आक्रमणों का सामना करते तो निश्चित रूप से भारत का मानचिह्न आज कुछ और होता।

उपर्युक्त राजनीतिक परिस्थितियों के सर्वेक्षण के पश्चात यह कहा जा सकता है कि आदिकाल का युग भारतीय इतिहास का पतन काल है । इस युग में पारस्परिक फूट, कलह, विलासिता के कारण भारतीय शक्ति ध्वस्त हुई थी । ईस्लाम एक ओर तो भेद भाव जर्जर भारत वर्ष में समानता का मन्त्र लेकर आया और दूसरी ओर कृपाण की शक्ति और समानता के मन्त्र ने भारतीय दलितों में ऊपर उठने का संकल्प उत्पन्न किया। इसी वजह से भी हिन्दू सत्ता धीरे धीरे समाप्त होकर मुसलमान सत्ता का उदय हुआ । इस युग के राजनीतिक परिस्थितियों का आदिकाल के साहित्य पर प्रभाव दिखाई देता है ।

1.3.3 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएँ :

पृथ्वीराज रासो एवं बीसलदेव रासो का सामान्य परिचय ।

प्रस्तावना :

आदिकाल का संक्रमणकालीन साहित्य विषय वस्तुगत नाना प्रवृत्तियों तथा काव्य रूपगत सम्पदा की विविध पध्दतियों की दृष्टि से वस्तुत: विविधमुखी है। काव्य एवं शिल्पविधान के दृष्टिकोन से इस काल का साहित्य अपने समकालीन संस्कृत साहित्य से निश्चयत: आगे रहा है। राजस्थान के चारण कवियों ने चरित-काव्य लिखे। जिन्हें 'वीरगाथाएँ' अथवा 'रासोंकाव्य' कहा गया । आदिकाल के साहित्य में नाना सम्प्रदायगत धर्म व वैराग्य का साहित्य भी लिखा गया । जैसे जैन साहित्य, नाथसाहित्य एवं बौध्द साहित्य। इस युग में अपभ्रंश भाषाओं में हिन्दी विकसित हो रही थी। अत: हिन्दी भाषा का स्वरूप स्पष्ट नहीं था। आदिकालीन साहित्य की प्रतिनिधि रचनाएँ पृथ्वीराज रासो तथा बीसलदेव रासो हैं । इस इकाई के अंतर्गत इन प्रतिनिधि रचनाओं की विस्तार से चर्चा करेंगे -

1.3.3.1 पृथ्वीराज रासो :

पृथ्वीराज रासो एक विशालकाय ग्रन्थ है । जिसमें महाकाव्य के सभी लक्षण विद्यमान हैं। पृथ्वरीराज रासो आदिकाल की प्रतिनिधि रचना है। कवि चंदबरदायी को इसका रचयिता माना जाता है। ऐसा प्रसिध्द है कि ये पृथ्वीराज के साथ वि. सं. 1206 में पैदा हुए थे। ये जगाति गोत्र के भट्ट ब्राह्मण थे और इनका जन्म लाहौर में हुआ था। जालन्धरी इनकी इष्टदेवी थी जिनकी कृपा से चन्द अदृश्य काव्य तक का भी निर्माण कर सकते थे। कवि चंदबरदायी पृथ्वीराज चौहान के राजकवि, सामंत और सखा थे। पृथ्वीराज के दरबारी कवि थे। दोनों बचपन से साथ रहते थे। कवि चंदबरदायी ने ही पृथ्वीराज रासो की रचना की है। बाद में कवि चंद और उसकी रचना 'पृथ्वीराज रासो' का अस्तित्व विवादस्पद बन गाया। देखा जाये तो पृथ्वीराज रासो में राष्ट्रीय जीवन पूर्णत: प्रतिबिंबित होता है। इसमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मूल से परिचय प्राप्त हो जाता है साथ ही उसमें भारतीय जीवन का सार दिखाई देता है। इसलिए कहा जाता है कि तत्कालीन राष्ट्रीय आदर्शों का प्रतिनिधित्व करने की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' एक श्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है।

'पृथ्वीराज रासो' जितना अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ है उतना ही उसके संबंध में संदेह भी है। ऐतिहासिक घटनाओं और विवरणों, तिथियों, पाठ आदि की दृष्टि से उसमें अनेक संदिग्ध स्थल हैं । फिर भी काव्य सौंदर्य की दृष्टि से यह अनुपम काव्य है। सभी आलोचकों ने इसके काव्य सौंदर्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है । इस ग्रंथ के 60 से भी अधिक संस्करण प्राप्त हुए हैं। इनमें से चार संस्करण निम्नप्रकार से हैं –

1) बृहत रूपांतर – 16306 छंद ।
2) मध्यम रूपांतर – 7000 छंद ।
3) लघु रूपांतर – 3500 छंद ।
4) लघुत्तम रूपांतर – 1300 छंद ।

पृथ्वीराज रासो का उद्धरण कार्य :

पृथ्वीराज रासों के उद्धरण कार्य में तीन व्यक्तियों का नाम लिया जाता है – १) झल्लर (जल्हन) २) चन्दसिंह ३) अमरसिंह ।

1) झल्लर (जल्हन) :

झल्लर या जल्हन कवि चंदबरदायी का पुत्र था । गजनी जाते समय चन्द अपने पुत्र जल्हन को रासो को पूरा करने का आदेश दे गये थे –

''पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज'' । इस पंक्ति से साबित होता है कि चंदबरदायी जल्हन को रासो को पूर्ण करने का आदेश दे कर गजनी चले गये थे ।

2) चन्दसिंह :

रासो के लघुरूपांतर में 'चन्दसिंह उद्धरिय हम' यह पाठ उपलब्ध होता है। डॉ. उदयनारायण तिवारी

ने अपनी पुस्तक 'वीरकाव्य संग्रह' में चन्दसिंह को महाराजा मानसिंह के छोटे भाई तथा अकबर के सेनापति सूरजसिंह के पुत्र को माना है। इस प्रकार चन्दसिंह मानसिंह का भतीजा था। डॉ. तिवारी के मतानुसार पृथ्वीराज रासो के लघु रूपांतरकार चन्दसिंह थे।

3) अमरसिंह :

अमरसिंह द्वितीय रासो के उर्द्धता माने जाते हैं । इनका शासन काल सं. 1775 से 1808 माना जाता है। इसके उद्धार कार्य को प्रमाणित करने के लिए निम्न दोहा उपस्थित किया जाता है :-

''छन्द प्रबन्ध कवित यति, साटक शाह दुहत्थ ।
लघु गुरू मंडित खंडि यह पिंगल अमर भरत्थ ।।''
इस प्रकार पृथ्वीराज रासो के उद्धरण कार्य में तीनों का नाम लिया जाता है ।

'पृथ्वीराज रासो' जितना अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, उतना ही उसके संबंध में सन्देह भी है। इसका अध्ययन करने पर ऐतिहासिक घटनाओं और विवरणों, तिथियों, पाठ आदि की दृष्टि से उसमें अनेक संदिग्ध स्थल हैं। पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता के संबंध में विद्वानों के चार वर्ग हैं -

1) प्रथम वर्ग के विद्वान 'पृथ्वीराज रासो' को प्रामाणिक रचना मानते हैं ।
2) द्वितीय वर्ग के विद्वान इस रचना को अप्रामाणिक मानते हैं ।
3) तृतीय वर्ग के विद्वान इसे अर्ध प्रामाणिक मानते हैं ।
4) चतुर्थ वर्ग के विद्वान इसे फुटकर रचना मानते हैं ।

- **पृथ्वीराज रासो की संक्षिप्त कथा –**

पृथ्वीराज रासो आदिकाल का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें 69 सर्ग हैं। उनमें उस समय प्रचलित लगभग सभी छन्दों का प्रयोग हुआ है । जहाँ तक कथा से संबंध है 'पृथ्वीराज रासो' में मंगलाचरण के बाद क्षत्रियों की उत्पत्ति, अजमेर के सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के अनंगपाल (तोमर) की पुत्री कमला के साथ, पृथ्वीराज का जन्म, अनंगपाल की द्वितीय पुत्री सुन्दरी का विवाह कन्नौज के राठौर विजयपाल के साथ, जयचन्द का जन्म, अनंगपाल का पृथ्वीराज को गोद लेना, जयचन्द को बुरा लगना, राजसूय यज्ञ, पृथ्वीराज द्वारा संयोगिताहरण, पृथ्वीराज का भोगविलास में लीन होना, शहाबोद्दीन का आक्रमण, पृथ्वीराज को बन्दी बनाकर गजनी ले जाना, चंद और पृथ्वीराज का एक दूसरे को कटार मार कर मर जाना, इस प्रकार पृथ्वीराज के अनेक युध्दों और विवाहों तथा आखेटों आदि का वर्णन है। ग्रन्थ में वीर रस की प्रधानता के साथ श्रृंगार रस की भी प्रचुरता है ।

- **पृथ्वीराज रासो की काव्य – सौंदर्य –**

'पृथ्वीराज रासों' एक विशालकाय ग्रंथ है, जिसमें महाकाव्य के सभी लक्षण विद्यमान हैं। इसका कथानक भारतीय शूर सामन्तों की वीरता, शौर्य सम्पन्न विजय एवं पराक्रमपूर्ण गौरव गाथा से अनुस्यूत है।

इसका नायक हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान क्षमा, दया, गांभीर्य, रूप-सौंदर्य, यौवन, उत्साह, ओज, तेज, स्वाभिमान आदि गुणों से विभूषित उच्चकुलोद्भव तथा क्षत्रिय वंश का गौरव है । काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से यह रचना उच्च कोटि की रचना है। वस्तुवर्णन, चरित्र-चित्रण, प्रकृति चित्रण, भाव एवं रसवर्णन, अलंकार, छंद योजना, भाषाशैली आदि सभी दृष्टियों से यह अनुपम काव्य है।

1) वस्तुवर्णन –

'पृथ्वीराज रासो' विभिन्न प्रकार के वस्तु वर्णनों से विभूषित है। वस्तुवर्णनों में भिन्नता के साथ साथ सरसता, विविधता और विद्ग्धता भी है। नगर, वन, उपवन, सेना, राजदरबार की शान व शौकत का विस्तृत वर्णन अनुपम बन पड़ा है। कवि ने अपने इस वस्तु वर्णनों में से सबसे अधिक तीन वर्णनों को महत्त्व प्रदान किया है – आखेट वर्णन, युद्धवर्णन और विवाह वर्णन।

2) चरित्र-चित्रण –

'पृथ्वीराज रासो' एक विशालकाय महाकाव्य है। इसमें अनेक पात्र आए हैं। उनमें से तीन पात्र प्रमुख हैं- पृथ्वीराज चौहान, कवि चंदबरदायी और संयोगिता । सारे पात्र चारित्रिक विशेषताओं से ओतप्रोत हैं। पृथ्वीराज एक पराक्रमी, उत्साही और दृढ़ योद्धा है। उसके चरित्र में राजपुताना वीरता की झलक देखने को मिलती है। वह जहाँ भी जाता है विजय का झंडा फहराता है। चंदबरदायी का व्यक्तित्व पृथ्वीराज से भी अधिक प्रभावशाली साबित हुआ है। चंद साहसी गंभीर वक्ता, ओजस्वी, दूरदर्शी और कल्पनाशक्ति का कवि है। संयोगिता को अपूर्व अद्वितीय सुंदरी के रूप में दिखाया है।

3) प्रकृति-चित्रण –

प्रकृति वर्णन भी कवि ने बड़े विस्तार से किया है। प्रकृति के उद्दीपन रूप में कवि ने षट्-ऋतुओं का वर्णन बड़े मनोयोग के साथ किया है। कवि के इस प्रकृति चित्रण में सांस्कृतिक विशेषता के साथ साथ स्थानगत विशेषताएँ भी विद्यमान हैं। सभी प्रकृति वर्णन भारतीय सुषमा के अलौकिक रूप को प्रस्तुत करते हैं और उत्तरी भारत के नैसर्गिक प्राकृतिक सौंदर्य से मण्डित हैं।

4) भाव एवं रस वर्णन –

'पृथ्वीराज रासो' एक युद्धप्रधान वीरकाव्य है। इसमें वीर और श्रृंगार रस का अपूर्व समन्वय है। जितनी तन्मयता से वीर रस का निर्वाह हुआ है उतनी ही रसमयता से श्रृंगार के चित्र भी उतारे हैं। पृथ्वीराज युद्धवीर और प्रेमवीर है। श्रृंगार वर्णन में पहले पहल वय: सन्धि या नख-शिख का स्थान आता है। इस दृष्टि से राजकुमारी इंदिनी, शशिव्रता, पद्मावती और संयोगिता के वर्णन अत्यधिक मार्मिक बन पड़े हैं। संयोगिता का प्रेम-प्रसंग, सौंदर्य, यौवनकालीन छटा आदि का मनोहर वर्णन मिलता है।

भावाभिव्यंजन में भी कवि की कुशलता दिखाई देती है। प्रथम मिलन में नायिका का भावशबल और भी मनोहर है। पद्मावती की दृष्टि जैसे ही पृथ्वीराज पर पड़ती है, वैसे ही वह उस पर मुग्ध हो जाती है। पर लज्जावश तत्काल ही मुँह पर घूँघट डाल देती है। कवि ने उसकी इन मनोदशा का चित्र बहुत ही सजीव प्रस्तुत किया है। कवि ने इसी कौशल से अन्य सभी रसों की अभिव्यक्ति की है।

5) अलंकार एवं छंदयोजना –

'पृथ्वीराज रासो' में अलंकार एवं छंद योजना पूर्णतया रसानुकूल दिखाई देती है। इसमें परम्परागत सभी अलंकार मिलते हैं। कवि की छन्द योजना अनुपम है। आदिकाल में एक भी ऐसा कवि नहीं जो इस क्षेत्र में चंद के सामने आ सके। उसने उस युग में प्रचलित सभी छन्दों दूहा, कवित, कुंडलिया, भुजंगी, साटक, त्रोटक, अरिहल, मोतियदाम, रसावला, पहद्धरी, भ्रमरावली, नाराय, गाथा, आर्या और अनुष्टुप आदि का प्रयोग किया है। अलंकारों में रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिश्योक्ति, उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

6) भाषा –

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा विवादास्पद है। अनेक विद्वानों ने इसकी भाषा पिंगल मानी है। इस समय पिंगल प्राचीन ब्रजभाषा को कहा जाता था। जो राजस्थानी भाषा का मिश्रण थी। रासो में अरबी, फारसी के बहुत सारे शब्दों का प्रयोग हुआ है। जो चन्द के समय किसी भी प्रकार प्रयोग में नहीं लाये जा सकते थे। ऐसा भी कहा जाता है कि उस समय मुसलमानों के आक्रमण आरंभ हो गये थे। अत: लाहौर का निवासी होने के कारण चन्द की भाषा में उन शब्दों का प्रयोग उचित और तर्कसंगत है। रासो में संवाद शैली प्रयुक्त हुई है। संवादों के माध्यम से कथानक का विकास हुआ है। इसमें वर्णनात्मक शैली का बहुत ही प्रभावशाली ढंग से उपयोग हुआ है। चंद की शब्द चयन योजना उत्कृष्ट है। इसलिए कहा जाता है कि भाषा की दृष्टि से चंदबरदायी षट्–भाषाओं के पंडित थे। इस संबंध में चंद स्वयं कहते हैं–

''उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवं रसं ।
षट्भाषा पुरानं च कुरानं च कथितं मया ।।''

उक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज रासो' काव्य के दोनों पक्षों अर्थात् भाव पक्ष और कलापक्ष का एक सन्तुलित निदर्शन है और ज्ञान का तो वह विशाल आकाश है ही। उसका अपने साहित्य का महत्त्व है। ऐतिहासिक घटनाओं की अप्रामाणिकता का प्रश्न उसके अलोक को मन्द नहीं कर सकता। यह एक उच्च कोटि भी रचना सिद्ध हुई है।

1.3.3.2 बीसलदेव रासो –

बीसलदेव रासो आदिकाल गेय मुक्तक परम्परा की प्रतिनिधि रचना है। आदिकाल के गेय साहित्य में इस ग्रन्थ की चर्चा विशेष रूप से की जाती है। इसलिए यह इस युग की एक विशिष्ट रचना है। विशिष्ट इस अर्थ में कि यह रचना वीरगाथा न होकर एक प्रेमकाव्य है। इसमें विवाह के उपरांत पति–पत्नी के सम्पर्क से प्रेम का विकास दिखाया गया है। यह एक विरह काव्य है। आदिकालीन उपलब्ध साहित्य में यह सबसे अधिक प्रामाणिक रचना है। आदिकाल के अन्य रासो रचना के समान इस ग्रन्थ के रचनाकाल, रचयिता और चरितनायक आदि बातें विवादास्पद हैं।

प्रस्तुत रचना का रचनाकाल का प्रश्न अत्यंत ही विवादास्पद है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने इसका रचनाकाल निम्न पद्य के आधार पर सं. 1212 स्वीकार किया है।

जैसे – बारह सौ बहोत्तरां मझारि, जेठ वदी नवमी बुधवारि ।

नाल्ह रसायण आरंभई शारदा तटी ब्रह्म कुमारि ।।

सं. 1212 में ज्येष्ठ की नवमी बुधवार को इस रचना का प्रणयन आरंभ हुआ । इसके रचनाकाल के संबंध में अनेक विद्वानों के अनेक मत होते हुये भी संवत 1212 समोचीत है। बीसलदेव रासो का चरित्र नायक विग्रहराज चतुर्थ है। अजमेर और सांभर के चौहान वंश में विग्रहराज नाम के चार राजा हो गए। उन सभी को बीसलदेव कहा जाता है। इनमें से कौन से विग्रहराज का वर्णन है, यह बात भी विवादास्पद है।

इस ग्रन्थ का रचयिता विग्रहराज चतुर्थ का समकालीन कवि नरपति नाल्ह (1212) है। इसके रचयिता के संदर्भ में भी अनेक विद्वानों के मत मिलते हैं फिर भी अजमेर के नरपति नाल्ह का समय 1212 ही है। इससे साबित होता है कि बीसलदेव रासो के रचयिता नरपति नाल्ह ही है।

- **बीसलदेव रासो की संक्षिप्त कथा :**

बीसलदेव रासो आदिकाल की विशिष्ट रचना है। यह रचना प्रबंध काव्य न होकर मुक्तक काव्य में है। यह प्रेम काव्य के साथ विरह काव्य है। इसमें चार खंड और 125 छंद हैं । जैसे –

खंड 1 – मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती से सांभर के बीसलदेव का विवाह होना।

खंड 2 – बीसलदेव का राजमती से रूठकर उड़ीसा की ओर प्रस्थान करना तथा वही एक वर्ष रहना।

खंड 3 – राजमती का विरह वर्णन तथा बीसलदेव का उड़ीसा से लौटना ।

खंड 4 – भोज का अपनी पुत्री को अपने घर ले जाना तथा बीसलदेव का वहाँ जाकर राजमती को फिर चितौड़ लाना ।

इस प्रकार पूरी कथा ललित मुक्तकों में वर्णित है। यदि इस कहानी को हटा दिया जाय तो भी इस प्रेम काव्य के मुक्तकों की एकसूत्रता में कोई अंतर नहीं आता। बीसलदेव रासो के आरंभ में विवाह के गीत हैं साथ ही बीसलदेव के परदेस जाने का प्रसंग भी वर्णित है। यह ग्रन्थ विरह के स्वाभाविक चित्रण, संयोग और विप्रलंभ श्रृंगार की सफल उद्भावना और साथ ही प्रकृति के रूप चित्रों से परिपूर्ण है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विविध घटनाओं के वर्णनों के होते हुए भी इस काव्य में इतिवृत्तात्मक नहीं है।

राजमती का विवाह बीसलदेव के साथ बड़ी शान व शौकत से होता है कहा जाता है कि भोज ने बीसलदेव को डालीमार, कुंडार, झंडोअर, गुजरात, सौरठ, साँभर, टोक, तोड, चितौड आदि प्रदेश दहेज में दिए थे। लेकिन यह कवि की अतिरंजित कल्पना का भाग कह सकते हैं। इस रासो में बहुत से ऐसी घटनाएँ हैं जो काल विरूद्ध और इतिहास विरूद्ध हैं जिनका समाधान नहीं हो सकता। बीसलदेव बहुत प्रतापशाली राजा था, और स्वयं संस्कृत का अच्छा कवि भी था। उसने अपना 'हरकेलिविजय' नाटक शिलापट्टों पर खुदवाया था। उसके राज–कवि सोमदेव ने 'ललित विग्रह' नाम का काव्य लिखा था जो राजपूताना म्युजियम में सुरक्षित है। बीसलदेव के और भी बहुत से शिलालेख प्राप्त हैं। उनसे बीसलदेव प्रतापी राजा सिद्ध होता है, उसका कोई भी सबूत नहीं है कि बीसलदेव ने कभी उड़ीसा पर चढ़ाई की थी या उसे जीता था । इस प्रकार अनेक घटनाओं का कवि ने वास्तविक वर्णन न कर कल्पित कहानी का वर्णन किया है। इसलिए इस ग्रंथ की संदिग्धता बढ़ती जाती है । ग्रंथ में बारबार लिखा है कि उसने रासो का गान किया था । जैसे –

''गायो हो रास सुनै सब कोई ।

यउइ हरिष गायण कइ गाइ ।।''

इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना गाने के लिए युक्त है।

- **काव्यसौंदर्य :**

बीसलदेव रासो एक विरह काव्य है। इसमें चार खण्ड हैं तथा सवा सौ छन्द हैं। इसमें छोटी सी प्रेमकथा मुक्तकों में बताई गई है। इसमें अजमेर के राजा बीसलदेव और रानी राजमती के प्रेम, विवाह और पुनर्मिलन की कथा बताई है। इसमें प्रमुख रूप से राजमती के विरह का वर्णन किया है।

1) विरह वर्णन :

बीसलदेव रासो हिन्दी साहित्य का एक उत्कृष्ट विरह काव्य है। कवि न राजमती के विरह का स्वाभाविक चित्रण किया है। साथ ही संयोग और वियोग की सफल उद्‌भावना और साथ ही प्रकृति के रूप चित्रों से परिपूर्ण है। विवाह के उपरांत बीसलदेव राजमती को छोड़कर 12 वर्षों तक उड़ीसा चला जाता है। पति के वियोग में राजमती 12 वर्षों तक तड़पती रहती है। राजमती राजा का राजकीय अभिमान सहन नहीं करती और उसे खरी बात कह देती है। राजा बीसलदेव जलभून जाता है और वह रूठकर उड़ीसा जाने का संकल्प करता है। इस पर राजमती लाख अनुनय विनय करती है। उस समय के रानी के वचन अत्यंत मार्मिक बन पड़े हैं–

''हेड़ाऊ का तुण्यि जिंउ ।

हाथ न फेरइ सउसउ बार ।।''

अर्थात मैं हार के उस घोडे के समान उपेक्षित हूँ जिस पर घोडेवाला सौ सौ दिन तक हाथ नहीं फेरता। आगे चलकर वह कहती है कि ताजा घोडा यदि उसांसे लेता है तो उसे दागा जाता है, चरता हुआ मृग भी मोहित जा सकता है, किन्तु हे सखि ! अंचल में पिया को बांधा कैसे जा सकता है? पति की नीरसता पर झल्लाकर यहां तक कहती है कि

'राउ नहीं सषि भइस पीडार'

राजमती जबान की तेज है तो क्या? आखिर वह भारतीय नारी थी। पति के विरह में उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है। उसे अपने स्त्री जीवन पर रोना आता है। वह विधाता से कहती है कि तुमने मुझे स्त्री का जन्म क्यों दिया? देने के लिए तो तुम्हारे पास और भी अनेक जन्म थे। तुमने मुझे जंगल का जन्तु क्यों नहीं बनाया। यदि जंगल की काली कोयल भी बनाते तो मैं आम और चम्पा की डाल पर बैठती, अंगूर और बीजोरी के फल खाती। इस प्रकार यहाँ राजमती के द्‌वारा मध्ययुगीन नारी की आत्मा का करुण क्रन्दन एवं चीत्कार है। आगे वह क्हती है की यदि तुमने मुझे नारी ही ना बनाना था तो राजरानी न बनाकर जाटनी क्यों नहीं बनाया? मैं अपने भरतार के साथ खेत कमाती, अच्छी लोमपटी पहनती, तुंग तुरंग के समान अपना गात स्वामी के गात से भिड़ाती। कितनी बड़ी विवशता है कि किसी राजा की रानी होना। पति के वियोग में राजमती 12 वर्षों तक तड़पती है। उसका यह विरह बारह मासा पद्‌धति पर चित्रित किया है। प्रकृति के

माध्यम से विरह वर्णन प्रस्तुत किया है। इसमें संयोग वर्णन नहीं है। राजमती के रूप में नारी हृदय की व्यथा मार्मिक रूप से व्यक्त हुई है।

2) चरित्र चित्रण :

बीसलदेव रासो का नायक विग्रहराज चतुर्थ है। जिन्हे बीसलदेव कहा जाता था। विग्रह राज का विवाह मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती से होता है। राजमती की खरी बात पर रूठकर वह 12 साल तक उड़ीसा चला जाता है ।

बीसलदेव रासो में एक ही प्रमुख चरित्र है – वह है रानी राजमती का । पूरे ग्रंथ में राजमती का वर्णन सजीव और विलक्षण बन पड़ा है। कवि ने इस ग्रंथ में नारी के चरित्र का गुणगान किया है। यहाँ केंद्रीय पात्र राजमती है। बीसलदेव तो पूरक पात्र के रूप में आता है। कवि ने नारी जीवन के प्रति गहरी सहनुभूति दिखाई है। कवि ने राजमती के माध्यम से नारी जीवन की कोमलता, दीनता और विवशता का परिचय दिया है । राजमती का चरित्र बड़ा ही सजीव तथा विलक्षण बन पड़ा है। उसके चरित्र में एक कुलीन नारी का स्वाभिमान है। राजा बीसलदेव एक दिन राजकीय अभिमान में राजमती से कहता है कि 'मेरे समान दूसरा भूपाल नहीं। राजमती राजा का झूठा अभिमान सहन नहीं कर पाती । वह कहती है,'आप से अनेक श्रेष्ठ राजा इस धरती पर हैं।' उड़ीसा का राजा तुमसे धनी है। जिस प्रकार तुम्हारे राज्य में नमक निकलता है, उसी तरह उसके घर में हीरे की खानों से हीरा निकलता है।'' राजा राजमती का व्यंग्य सहन नहीं कर पाता और रूठकर 12 साल तक उड़ीसा चला जाता है। एक आलोचक ने राजमती के संबंध में कहा है–''मध्ययुग के समूचे हिन्दी साहित्य में जबान की इतनी तेज और मन की इतनी खरी नायिका नहीं दीख पड़ती है।'' राजमती के रूप में नारी जीवन की वेदना और विवशता को प्रस्तुत किया है। राजमती 12 सालों तक पति के विरह में तड़पती रहती है। वह विधाता से कहती है कि मुझे स्त्री जन्म देने की अपेक्षा सामान्य स्त्री बनाया होता। मैं अपने पति के साथ सुख से रहती। इस तरह राजमती के रूप में नारी जीवन की चिरंतन व्यथा का चित्रण हुआ है।

3) कलापक्ष :

'बीसलदेव रासो' बीसलदेव और राजमती की एक छोटी सी प्रेमकथा है। पूरी कथा मुक्तक काव्य में वर्णित है। इसमें चार खंड और 125 छंद है। इस रचना में आदि से अंत तक एक ही छंद का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण रचना गेय है। प्रत्येक छंद स्वतंत्र गीत है और केदार राग में गाये जाने के लिए लिखा गया है। यह रचना नृत्यगीत के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है। गीति काव्य के सभी गुण इस रचना में मिलते हैं। पूरी कथा में कहीं कहीं स्थानों पर अस्वाभाविकता, नीरसता और भौंड़ापन देखने मिलता है, फिर भी अपनी गेयता और संक्षिप्तता के कारण यह रचना प्रभावशाली बनी है।

4) भाषा :

बीसलदेव रासो की भाषा को उस युग की भाषा का संधिस्थल कह सकते हैं। भाषा में एक ओर अपभ्रंशपन है, तो दूसरी ओर हिंदीपन है। भाषा का यह रूप वस्तुत: उसे सं. 1212 की रचना सिद्ध करता

है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इसकी भाषा राजस्थानी है। जैसे 'भाषा की परीक्षा करके देखते हैं तो वह साहित्यिक नहीं, राजस्थानी है।.....' इस ग्रंथ से एक बात का आभास मिलता है। वह यह कि श्लिष्ट भाषा में ब्रज और खड़ी बोली के प्राचीन रूप का ही राजस्थान में व्यवहार होता था। साहित्य की सामान्य भाषा हिन्दी थी। जो पिंगल भाषा कहलाती थी। बीसलदेव रासो में बीच बीच में बराबर इस साहित्यिक भाषा (हिन्दी) को मिलाने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है।''

उसी तरह डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार, यह अपभ्रंश से विकसित हिन्दी का ग्रंथ है। इसकी भाषा आदिकालीन हिन्दी का स्वरूप स्पष्ट करती है ।

इस तरह बीसलदेव रासो आदिकाल का एक श्रेष्ठ काव्य है। आदिकालीन साहित्य की एक प्रामाणिक रचना है। जो आज भी पाठकों को प्रभावित करती है।

1.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 अ) निम्नलिखित वाक्यों में के नीचे दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) सबसे पहले हिन्दी साहित्य का इतिहास ..... ने लिखा ।

1. जार्ज ग्रियर्सन 2. शिवसिंह सेंगर 3. गार्सा द तासी 4. आ. शुक्ल

2) मिश्रबन्धुओं ने अपनी पुस्तक 'मिश्र बन्धुविनोद' में हिन्दी साहित्य के इतिहास को ..... कालखंडों में विभाजित किया ।

1. चार 2. आठ 3. पाँच 4. सात

3) राहुल सांकृत्यायन ने आदिकाल को ..... नाम से पुकार है ।

1. वीरगाथा काल 2. चारणकाल 3. सिद्ध सामंत युग 4. शृंगार काल

4) 'वीरगाथा काल' यह नामकरण ..... ने किया है।

1. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी 2. रामकुमार वर्मा 3. आ. शुक्ल 4. राहुल सांकृत्यायन

5) आदिकालीन समाज में स्वयंवर की प्रथा सिर्फ ..... जाति तक ही सीमित थी।

1. क्षत्रिय 2. ब्रहमण 3. राजपूत 4. मुस्लिम

6) मुस्लिमों ने ..... को प्रवेशद्वार बनाकर उत्तरी भारत पर आक्रमण किए।

1. दर्रे–खैबर 2. सिंध 3. कच्च 4. पठानकोट

7) सन् 710–11 में सबसे पहले ..... के नेतृत्त्व में सिंध पर धाबा बोल दिया था।

1. मुहम्मद गजनी 2. मुहम्मदबीन कासिम 3. शहाबुद्दीन गोरी 4. बाबर

8) ..... के षड्यंत्र के परिणामस्वरूप पृथ्वीराज चौहान को मुहम्मद गौरी से पराजित होना पडा।

1. राजा दहिर 2. राजा बीसलदेव 3. राजा जयचन्द 4. राजा परमार

9) रासो–काव्यों में ..... का सजीव वर्णन है।

1. शृंगार 2. युद्धों 3. प्रकृति 4. राजनीति

10) पृथ्वीराज रासो के रचयिता ..... है।

1. दलपति विजय 2. अमीर खुसरो 3. चंदबरदायी 4. नरपति नाल्ह

11) संयोगिता ..... रासो की प्रमुख नायिका है।

1. परमार रासो 2. बीसलदेव रासो 3. खुमान रासो 4. पृथ्वीराज रासो

12) पृथ्वीराज रासो में ..... सर्ग हैं।

1. 70 2. 69 3. 79 4. 50

13) चंदबरदायी ने गझनी जाते समय अपने पुत्र ..... को रासो पूरा करने का आदेश दिया था।

1. चन्दसिंह 2. अमरसिंह 3. कर्तारसिंह 4. झल्लर (जल्हन)

14) पृथ्वीराज रासो की भाषा ..... है।

1. अवधी 2. हिन्दी 3. ब्रज 4. पिंगल

15) बीसलदेव रासो ..... काव्य है।

1. शृंगार 2. विरह 3. वीर 4. हस्य

16) बीसलदेव रासो की नायिका ..... है।

1. राजमती 2. पद्मावती 3. मृगावती 4. नागमती

17) आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने बीसलदेव रासो का रचना काल ..... स्वीकार किया है।

1. सं.1212 2. सं.1214 3. सं. 1211 4. सं. 1216

18) बीसलदेव रासो में चार खंड और ..... छंद हैं।

1. 125 2. 130 3. 100 4. 107

19) राजा बीसलदेव रानी राजमती से रूठ कर ..... चला जाता है।

1. गुजरात 2. लाहौर 3. उडीसा 4. आसाम

20) हिन्दी साहित्य के सं. 1050 से सं. 1375 तक के कालखंड को ..... कहा जाता है।

1. भक्तिकाल 2. रीतिकाल 3. आदिकाल 4. आधुनिक काल

प्रश्न 1 आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक–एक वाक्य में लिखिए।

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम लेखक कौन हैं ?
2. 'मिश्र बंधु विनोद' यह रचना किस की है ?

3. आ. शुक्ल जी ने आदिकाल का प्रारंभ कहाँ से माना है ?
4. डॉ. रामकुमार वर्मा ने आदिकाल को किस नाम से पुकारा है ?
5. 'बीजवपन काल' यह नाम किसने दिया है ?
6. किसके निधन के पश्चात् उत्तरी भारत में केंद्रीय सत्ता का ऱ्हास हो गया ?
7. 10 वी शताब्दी के अंत में गजनी का राज्य किसके हाथ में आया ?
8. शक्तिशाली राजा पृथ्वीराज चौहान पर अनेक बार किसने आक्रमण किए ?
9. सोमनाथ का समृद्ध मंदिर किसने लूटा ?
10. मध्यकाल की सबसे जबान की तेज नायिका किसे कहा जाता है ?
11. संयोगिता किस रासो की प्रमुख नायिका है ?
12. 'बीसलदेव रासो' के रचयिता कौन हैं ?
13. 'बीसलदेव रासो' के पद किस राग में गाने के लिए लिखे हैं ?
14. कवि चंदवरदायी किस राजा का दरबारी कवि था ?
15. पृथ्वीराज रासो के नायक कौन है ?
16. 'बीसलदेव रासो' के नायक कौन हैं ?
17. 'बीसलदेव रासो' में कितने छंदों का प्रयोग हुआ है ?
18. उडीसा के राज्य में कौन सी खानें थी ?
19. आदिकाल का कालखंड कहाँ से कहाँ तक माना जाता है ?
20. पृथ्वीराज रासो में प्रमुख रूप से कौन से दो रासों का चित्रण है ?

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

विवादास्पद : जिस पर विवाद किया जा सकता है या झगडा।

पूर्ववर्ती : पहले का, पहले रह चुका हो।

परवर्ती : बाद में का, बाद में हुआ हो।

अपभ्रंश : प्राकृत भाषाओं का परवर्ती स्वरूप।

जौहर : राजपूत नारियाँ पति युद्ध क्षेत्र से पत्नी मोह से वापस न लौटे इसलिए आग के कुंड में अपने आप को समर्पित करती थी।

राजसूय यज्ञ : एक यज्ञ जो सम्राट पद के अधिकारी राजा करते थे।

अनुस्यूत : सिला, गूँथा या पिराया हुआ।

रासो : पुरानी हिंदी का काव्य, जिस में राजा का चरित, प्रेम और युद्धों का वर्णन हो।

पीठिका : आधार, आसन, छोटा पीढा, परिच्छेद, भूमिका।

नृपति वर्ग : राजा का वर्ग।

1.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

प्रश्न 1. अ)

1. गार्सा–द–तासी	2. पाँच	3. सिद्ध–सामंत युग	4. आ. शुक्ल
5. राजपूत	6. सिंध	7. मुहम्मदबीन कासिम	8. राजा जयचन्द
9. युद्धों	10. चंदबरदायी	11. पृथ्वीराज रासो	12. 69
13. झल्लर (जल्हन)	14. पिंगल	15. विरह	16. राजमती
17. सं. 1212	18. 125	19. उडीसा	20. आदिकाल

प्रश्न 1. आ)

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम लेखक गार्सा–द–तासी हैं।
2. 'मिश्रबंध विनोद' यह रचना मिश्रबन्धुओं की है।
3. आ. शुक्लजी ने आदिकाल का प्रारंभ सं. 1050 से माना हैं।
4. डॉ. रामकुमार वर्मा ने आदिकाल को 'चारणकाल' इस नाम से पुकारा है।
5. आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आदिकाल को 'बीजवपन काल' नाम दिया है।
6. सम्राट हर्षवर्धन के निधन के पश्चात् उत्तरी भारत में केंद्रीय सत्ता का ऱ्हास हो गया।
7. 10 वीं शताब्दी के अंत में गजनी का राज्य मुहम्मद गझनी के हाथ में आया।
8. शक्तिशाली राजा पृथ्वीराज चौहान पर शहाबुद्दीन गौरी ने अनेक बार आक्रमण किए।
9. सोमनाथ का समृद्ध मंदिर महमूद गजनवी ने लूटा।
10. मध्यकाल की सबसे जबान की तेज नायिका राजमती को कहा जाता है।
11. संयोगिता 'पृथ्वीराजरासो' की प्रमुख नायिका है।
12. 'बीसलदेव रासो' के रचयिता नरपति नाल्ह हैं।
13. 'बीसलदेव रासो' के पद केदार राग में गाने के लिए लिखें हैं।
14. कवि चंदबरदायी पृथ्वीराज चौहान राजा का दरबारी कवि था।
15. 'पृथ्वीराज रासो' का नायक पृथ्वीराज चौहान है।
16. बीसलदेव रासो का नायक विग्रहराज चतुर्थ है।
17. 'बीसलदेव रासो' में एक ही छंद का प्रयोग हुआ है।
18. उडीसा के राज्य में हीरे की खानें थी।
19. आदिकाल का कालखंड सं. 1050 से सं. 1375 तक माना जाता है।
20. पृथ्वीराज रासो में प्रस्तुत रूप से वीर और शृंगार रसों का चित्रण है।

1.7 सारांश :

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रारंभिक कालखंड को 'आदिकाल' कहा जाता है।
- हिन्दी साहित्य के इतिहास का सर्वप्रथम लेखक एक फ्रेंच विद्वान गार्सा-द-तासी है।
- हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन और नामकरण का मौलिक प्रयास आ. रामचंद्र शुक्ल ने किया। उनका काल-विभाजन और नामकरण सर्वमान्य है।
- सामाजिक दृष्टि से आदिकाल जाति-व्यवस्था के कठोर बंधनों और रूढियों तथा अंधविश्वासों का था।
- राजाओं और सामंतों का जीवन विलासमय और भोगप्रधान था। राजा बहुपत्नीक थे। चारों ओर युद्धों का वातावरण था।
- आदिकाल के समाज में नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोन नहीं था। नारी को भोग और विलास की सामग्री समझा जाता था। उसे कोई सामाजिक महत्त्व नहीं था।
- राजनीतिक दृष्टि से आदिकाल का युग अव्यवस्था गृह कलह और पराजय का युग था ।
- मुस्लिम सिंध को प्रवेशद्वार बनाकर भारत पर आक्रमण पर आक्रमण करते रहें, तो दूसरी ओर देश के राजा आपस में लड़ते रहें ।
- उस युग में तीन शक्तिशाली राज्य थे- दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहान और कन्नौज में गाहड़वाण। ये तीनों आपस में लड़ते रहें। उन्होंने एकत्रित होकर विदेशी आक्रमणों का सामना नहीं किया।
- आदिकाल का युग भारतीय इतिहास का पतनकाल है। हिंदू सत्ता के धीरे धीरे समाप्त होने और मुसलमान सत्ता के उदय होने की गाथा है। यह युग अव्यवस्था गृह कलह और पराजय का युग है।
- आदिकालीन साहित्य की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं - पृथ्वीराज रासो और बीसलदेव रासो ।
- रासो-काव्यों में युद्ध वर्णन, संकुचित राष्ट्रीयता, वीर और शृंगार रस, डिंगल और पिंगल भाषा आदि प्रमुख विशेषताएँ देखने को मिलती हैं।
- 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता चंदबरदायी हैं। कवि चंद और उनकी रचना पृथ्वीराज रासों दोनों का अस्तित्व विवादास्पद है।
- 'पृथ्वीराज रासो' एक विशालकाय महाकाव्य है। इसमें वीर और शृंगार रस का अपूर्व समन्वय है।
- 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता विवादास्पद होते हुए भी यह एक उच्च कोटि का महाकाव्य है।
- बीसलदेव रासो आदिकाल की एक विशिष्ट रचना है।
- बीसलदेव रासो नरपति नाल्ह की एक लघु रचना है। यह मुक्तक काव्य की रचना है। प्रमुख रूप से रजामती के विरह वर्णन की कहानी है। कवि ने इस की कथा ललित मुक्तकों में बताई है।

- संपूर्ण रचना गेय है। गीतिकाव्य के सभी गुण इस रचना में मिलते हैं।
- इसके चित्रण में अनेक स्थानों पर अस्वाभाविकता है, नीरसता है; फिर भी अपनी गेयता और संक्षिप्तता के कारण यह रचना प्रभावशाली बनी है।
- इसकी भाषा संधिकाल की भाषा है। भाषा में एक ओर अपभ्रंशपन है, तो दूसरी ओर हिंदीपन है। इस तरह बीसलदेव रासो आदिकालीन साहित्य की एक प्रामाणिक रचना है।

1.8 स्वाध्याय :

1) हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन और नामकरण का परिचय दीजिए ।
2) आदिकाल के नामकरण की समस्या पर प्रकाश डालिए ।
3) आदिकालीन सामाजिक परिस्थितियों को स्पष्ट कीजिए ।
4) आदिकालीन राजनीतिक परिस्थितियों को स्पष्ट कीजिए ।
5) पृथ्वीराज रासो के काव्य सौंदर्य पर प्रकाश डालिए ।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

- अपने देश की प्राचीन हस्तलिखित रचनाओं को प्राप्त करके उसकी सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितयों का अध्ययन कीजिए ।
- पृथ्वीराज रासो तथा बीसलदेव रासो को प्राप्त करके उनका अध्ययन कीजिए ।
- अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध कवि तथा लोक गाथाओं का संग्रह कीजिए ।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिवकुमार शर्मा
2) हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास : राजनाथ शर्मा
3) हिन्दी साहित्य का इतिहास : आ. रामचंद्र शुक्ल
4) हिन्दी साहित्य उद्‌भव और विकास : हजारीप्रसाद द्विवेदी
5) हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
6) हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डॉ. ईश्वर दत्त शील

●●●

इकाई 2

भक्तिकाल

अनुक्रम

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय विवेचन

2.3.1 भक्तिकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

2.3.2 भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ

2.3.3 भक्तिकालीन कवियों का सामान्य परिचय

2.3.3.1 संत नामदेव

2.3.3.2 संत रविदास

2.3.3.3 संत मीराबाई

2.3.3.4 गुरू नानक

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

26 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. भक्तिकालीन राजनीतिक परिस्थिति से परिचित होंगे।
2. भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थिति से परिचित होंगे।
3. भक्तिकालीन कवि नामदेव, रविदास, मीराबाई तथा गुरूनानक जी के व्यक्तित्व एवं साहित्य से परिचित होंगे।

2.2 प्रस्तावना :

'भक्तिकाल' हिंदी साहित्य के इतिहास का सुवर्ण युग माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में भक्तिकाल का समय वि. सं 1375 (सन् 1375) से वि. सं 1700 (सन् 1643) तक माना है। कालखंड के समय को लेकर विद्वानों में मतभेद मिलते हैं परंतु आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा दिए गए कालखंडों के समय को अधिकतर विद्वानों ने स्वीकार किया हैं। 'भक्ति' की प्रमुख प्रवृत्ति को देखकर यह नामकरण किया गया और सभी ने इस नामकरण को स्वीकार किया है। तत्कालीन कालखंड में 'भक्ति' केवल ईश्वर की उपासना का मार्ग नहीं, तो यह एक जन आंदोलन है। इस आंदोलन के प्रवर्तक रामानंद जी रहें है।

अतः यह प्रश्न निर्माण होता है कि ऐसी कौन–सी परिस्थितियाँ निर्माण हुई कि भक्ति आंदोलन का उद्भव हुआ। इस प्रश्न पर विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रस्तुत किए हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मानना है कि मुस्लिम शासकों का राज्य स्थापित होने के कारण हिंदू जनता में जो हताशा फैल गयी थीं, उसी के कारण भक्ति साहित्य के माध्यम से भक्ति आंदोलन का उद्भव हुआ। उन्हीं के शब्दों में, ''देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मंदिर गिराए जाते थे, देवमूतियाँ तोडी जाती थी और पूज्य पुरूषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो गया तब परस्पर लडनेवाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रहीं। अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था? ''इस पर भी अनेक मत मतांतर रहें, परंतु इतना जरूर है कि भक्ति आंदोलन तत्कालीन परिस्थितियों का परिणाम हैं। जिसमें सगुण और निर्गुण दोनों भक्त कवियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा हैं। अतः प्रस्तुत इकाई में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थिति का अध्ययन करेंग और भक्तिकालीन संत कवि नामदेव, रविदास, मीराबाई, गुरू नानक इनका सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।

2.3 विषय विवेचन :

2.3.1 भक्तिकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँः–

'राजनीतिक परिस्थिति का अध्ययन अर्थात तत्कालिन राजनीतिक परिवेश का अध्ययन करना। जिसमें

तत्कालिन शासन व्यवस्था तथा उनकी शासन नीति का अध्ययन समाविष्ट कर सकते है। इस दृष्टि से भक्तिकाल की राजनीतिक परिस्थिति का जब अध्ययन करते है, तब एक बात समझ में आती है कि राजनीतिक दृष्टि से यह काल विक्षुब्ध, अशांत और संघर्षमय काल था। कारण 10 वीं – 11 वी शताब्दी के लगभग विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारत पर अपने आक्रमण प्रारंभ किए थे। भक्तिकाल तक आते–आते लूट का प्रमाण बढ़ गया था। इस कालखंड में दिल्ली पर जिन राजवंशों ने राज्य किया उनमें 1. गुलाम वंश (1206-1290 ई.), 2. खिलजी वंश (1290-1320 ई.), 3. तुगलग वंश (1320-1414 ई.), 4. सैयद वंश (1414-1451 ई.), 5. लोदी वंश (1451-1526) ई.), और 6. मुगल वंश (1526-1757 ई.) प्रमुख हैं। मुगल वंश के बाबर, हुमायुँ, अकबर, जहाँगीर, तथा शाहजहाँ ने राज्य किया।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल राजनीतिक इतिहास की कहानी अलाउद्दीन खिलजी (1295 ई.) से प्रारंभ होती है। उसने उत्तर भारत के बाद दक्षिण – विजय का अभियान प्रारंभ किया और दूर–दूर तक अनेक राजवंशों को परास्त किया। यदि वह राजपूताने का दक्षिण भाग जीत लेता तो संपूर्ण उत्तर पथ और दक्षिण पथ उसका अधिकार हो जाता। पर राणा हम्मीर ने उसके स्वप्न को पूरा न होने दिया। उसके बाद मुहम्मद तुगलक (1325-1351 ई.) ने दक्षिण पर आधिपत्य का प्रयास किया, पर उसे भी अभीष्ट सफलता नहीं मिली, अपितु हुआ उसकें विपरीत ही। उसके शासन को दुर्बल पाकर अनेक मुस्लिम सुबेदार गुजरात, मालवा, और जौनपुर आदि में स्वतंत्र हो गए। इसी समय मध्य एशिया के बादशाह तैमूरलंग ने दिल्ली पर आक्रमण (1398 ई.) किया। उसने दिल्ली को बूरी तरह लूटा। परिणाम यह हुआ कि तुगलक वंश के अंतिम बादशाह सुलतान महमूद शाह के मृत्यु के बाद 1412 ई. में सैयद वंश का खिज्र खाँ दिल्ली की गद्दी बैठा। इस राजवंश का शासन 1411 ई. तक रहा। उसके चार शासकों में कोई भी उल्लेखनीय न हुआ। स्वतंत्र हुए सरदारों में जौनपुर के शर्की सुलतानों में इब्राहीम शाह (1402-1436 ई.) का नाम उल्लेख योग्य है। इसने जौनपुर की सीमा कालपी, कन्नौज, बुलंदशहर और संभल तक पहुँचा दी। उसने जौनपुर के प्रसिद्ध अटाला मस्जिद का निर्माण कराया, नगर को कला, साहित्य और संस्कृति का केंद्र बना दिया। गुजरात दूसरा स्वतंत्र हुआ राज्य था। सन् 1401 ई. में सुबेदार जफर खाँ ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। यहाँ का वास्तविक शासक अहमदशाह हुआ, जिसने अहमदाबाद बसाया। इसी का पोता अहमद शाह 'महमूद बघरी' नाम से महशूर हुआ। यह इतना पेटू था कि जलपान के लिए एक प्याला शहद, एक प्याला घी, और डेढ़ सौ सुनहले केले लिया करता था। सैयद वंश के बाद लोदी वंश दिल्ली की गद्दी पर बैठा। बहलोल लोदी (1479 ई.) के समान उसका लड़का सिकंदर लोदी (१४८८–१५१७ ई.) भी वीर और प्रतापि हुआ। सोलहवीं सदी के प्रारंभ (1523 ई.) में जब बाबर ने भारत पर आक्रमण किया तो लोदी वंश की शक्ति क्षीण हो चुकी थी और राजपूताने में राणा सांगा का उद्य हुआ। उसने अपने राज्य की सीमा आगरे तक बढ़ा ली।

प्रारंभ में दिल्ली से दूर होने से मुस्लिम आक्रमणकारी बंगाल में अपना स्थायी शासन स्थापित न कर सके। अलाउद्दीन हुसेन शाह (1493-1519 ई.) पहला मुस्लिम शासक था जो जनता में लोकप्रिय हुआ। हिंदू–मुस्लिम एकता के उद्देश्य से उसने 'सत्यपीर' नामक संप्रदाय भी चलाया। इस वंश के बाद शेरशाह सूरी ने इस प्रदेश पर अपना प्रभुत्व जमा लिया।

मुहम्मद बिन तुगलक के समय में हसन गंगू 'जॅफर खाँ' पदवी धारण कर बहमनी राज्य का शासक बना और उसने अपनी राजधानी दौलताबाद (देवगिरि) से हटाकर गुलबर्गा में स्थापित की। 1518 ई. में यह राज्य विनष्ट हो गया। फलस्वरूप दक्षिण में पाँच स्वतंत्र मुस्लिम राज्य – (क) बरार का इमादशाही, (ख) बीजापुर की आदिलशाही, (ग) अहमदनगर का निजामशाही, (घ) गोलकुण्ड़ा की कुतुबशाही और (ड) बीदर की वरीदशाही – स्थापित हुए।

सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में दिल्ली का पठाण राज्य (लोदी वंश) अत्यंत कमजोर हो चुका था। उस समय भारत मे राणा सांगा (मेवाड़) और कृष्णदेव राय (विजयनगर) ये दो प्रमुख शासक थे।

तैमूर लंग की पाँचवी पीढ़ी में उत्पन्न जहरूद्दीन मुहम्मद बाबर ने 1526 ई. में भारत पर आक्रमण कर पानीपत की पहली लढ़ाई में विजय प्राप्त की। दिल्ली पर अधिकार कर जैसे ही वह आगे बढ़ा उसका मेवाड़ के राणा कुंभा से संग्राम हुआ। बाबर के पास तोपखाना और बंदूक आदि आग्नेयास्त्र थे, जिनसे वह रूसी तुर्किस्तान से भाग कर भी काबुल विजय करता हुआ दिल्ली आ पहुँचा था। राणा सांगा भी उसके आगे न टिक सका। चंदेरी का किल्ला आदि क्षेत्र उसके हाथ से निकल गए। बाबर यदयपि तुर्क था पर संयोग से उसे मुगलों का पूर्व–पुरूष बनना पड़ा। फलतः उसका वंश मुगलवंश कहलाया। कहा जाता है कि सैदापुर की एक लड़ाई में गुरू नानक देवजी भी उसके सामने पकड़कर लाए गए थे। बाबर का अपना शासन सुव्यवस्थित करने का अवसर न मिला। अचानक उसका पुत्र हुमायूँ बीमार पडा। उसने उसकी स्वास्थ्य – कामना से उसकी शय्या की तीन परिक्रमाएँ कीं। कहतें है कि उस दिन शहजादा स्वस्थ होने लगा और बाबर बीमार पड़ गया। इसी बीमारी में उसकी 1530 ई. में मृत्यु हो गयी और उसकी मृत्यु के तीसरे दिन ही हुमायूँ बादशाह बन गया। इसे एक शेर खाँ नामक वीर कन्नौज की लड़ाई में परास्त कर दिया और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। हुमायूँ जान बचाकर इराण भाग गया। शेर खाँ शेरशाह सूरी नाम से ही दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, पर शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। फलस्वरूप ईरान के शाह तहमास्प की सहायता से हुमायूँ ने पुनः भारत पर आक्रमण कर दिल्ली का हस्तगत कर लिया। एक दिन 1556 ई. में वह पुस्तकालय की सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था, उसके कानों में अजान की आवाज पड़ी। आवाज सुनकर वह एकाएक झुक गया और पैर फिसल जाने से मौत का शिकार हो गया। इस समय उसका लड़का जलालुद्दीन तेरह वर्ष का बालक था। सेनापति बैरम खाँ के संरक्षण में वह अकबर नाम से गद्दी पर बैठा। बैरम खां ने जौनपुर को साम्राज्य में मिला लिया। किंतु अकबर ने शीघ्र ही उसे दायित्व से मुक्त कर शासन की बागड़ौर संभाल ली और बंगाल, बिहार और गुजरात को जीतकर कश्मीर को भी अपने शासन में ले लिया। इसके बाद उसने फतेहपुर सीकरी का निर्माण कराया। उसने संपूर्ण उत्तर भारत पर अधिकार कर दक्षिण में भी अपने राज्य का विस्तार किया। केवल महाराणा प्रताप ने मेवाड़ का सिर सदा उन्नत रखा और कभी भी उसकी अधीनता स्वीकार नहीं की।

भारत के मुस्लिम शासको में अकबर का सर्वोच्च स्थान है। स्वयं कम पढ़ा होने पर भी उसने साहित्य, संगीत और कला के क्षेत्र को पूर्ण विकसित होने का अवसर प्रदान किया। हिंदू–मुस्लिम एकता के प्रतिपादन के लिए उसने 'दीन–ए–इलाही' नामक मत भी चलाया। अपने दरबार में उसने बीरबल, तानसेन, रहीम जैसे नव

रत्न भी रखें। उसका काल भारत में सुख, शांति और विकास का काल कहलाता है। सूर और तुलसी जैसे महाकवि उसी के काल में हुए। वह स्वयं उनके दर्शनों के लिए उनके पास गया था। उसने हिंदुओं को भी उच्च पदों पर नियुक्त किया। जो पौधा बाबर ने लगाया था, उसकी जड़ अकबर ने सींच कर उसे एक ऐसे विशाल वृक्ष का रूप दे दिया, जिसकी छाया दक्षिण में गोदावरी नदी तक पहुँचती थी। अकबर के दो उत्तराधिकारियों – जहाँगीर (मृत्यु 1627 ई.) और शाहजहाँ (मृत्यु 1666 ई.) ने न मुगल साम्राज्य को अधिकाधिक विस्तृत और दृढ़ बनाया, वरन अकबर की नीति को बहुत कुछ बनाए रखा। अकबर के समय से लेकर शाहजहाँ के समय तक उत्तर भारत में शांति और सुव्यवस्था बनी रहीं – यद्यपि स्वतंत्र होने का प्रयत्न करनेवाले राज्यों से कभी-कभी संघर्ष छिड़ जाता था। शाहजहाँ के शासन के अंतिम दिनों में बुंदेलखंड में चंपतराय और महाराष्ट्र में शिवाजी की स्वतंत्रता की चेष्टाएँ प्रगट हुई।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति युग में राजनीतिक परिस्थितियाँ विषम थी, किंतु राजपूत, मराठे तथा अन्य हिंदू शासक विदेशियों का प्रतिरोध करते रहें और स्वतंत्रता की प्रवृत्ति सदैव जागृत रहीं। उनमें किसी प्रकार की कायरता एवं निराशामय पराजित मनोवृत्ति नहीं थी। अतः भक्ति साहित्य को निराशामय राजनीतिक परिस्थितियों की उपज कहना भ्रामक है। इस युग के मुस्लिम शासकों ने हिंदू जनता पर महान अत्याचार किए, किंतु वे परस्पर भी लड़ते रहे। मुगल सम्राट भी सिंहासन प्राप्ति के लिए अपने भाई एवं पिता का वध करने में नहीं चूके। मुगल शासक एकदम अनुदार एवं असहिष्णु भी नहीं कहे जा सकते हैं क्यों कि बहुत से मुस्लिम शासकों ने संस्कृत एवं देशी भाषाओं के साहित्य, संगीत और कला को प्रोत्साहन दिया।

कोई भी साहित्य परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता हैं किंतु भक्तिकालीन साहित्य इस बात का अपवाद है। भक्तिकाल के प्रमुख चार कवियों – कबीर, जायसी, तुलसी और सूर की वर्ण्य सामग्री युग के राजनीतिक वातावरण के प्रतिकूल है। उन्हें न तो सीकरी से काम था और न प्राकृत जन गुण-गान से सरोकार था। इन भक्तों की वाणी धर्म और शांति प्रधान रहीं।

2.3.2 भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ :

भक्तिकाल में राजनीतिक वातावरण से हमें यह आकलन होता है कि जहाँ राज्य को हडपने के लिए अपने ही लोग अपनों का खून करते है, वहाँ सामाजिक परिस्थिति कैसी हो सकती है। चौदवीं तथा पद्रहवीं शतीं में हिंदू-मुसलमानों में जीव के प्रत्येक क्षेत्र में आदान-प्रदान किया जाता था। उस समय हिंदू और मुसलमानों के व्यावहारिक संबंधों के भेद को प्रकट करने के लिए यहाँ के निवासियों को 'हिंदू' कहा। इस शब्द का प्रथम उल्लेख विजयनगर के राजाओं के पंद्रहवीं शताब्दी वाले शिलालेखों में उपलब्ध है। इसके पूर्व कदाचित इस शब्द का प्रयोग नही हुआ था। एक ही परिवार के व्यक्ति कुछ हिंदू बने रहें और कुछ मुसलमान बन गए। उस समय तक हिंदू-मुसलमानों में परस्पर विवाह हो जाते थे किंतु शनैः शनैः जाति-पाति के बंधन कठोर होते जा रहे थे। कबीरदास आदि संतों ने इसका विरोध किया और हिंदू – मुसलमान दोनों में धार्मिक दृष्टि से समन्वय करने का प्रयास किया । किंतु सत्य है कि इस युग में हिंदुओं में ऊँच-नीच का भेद आया, पर्दे तथा बालविवाह का प्रचलन हुआ। फलस्वरूप जातियों उपजातियों की संख्या बढती गयी और उनके बीच के व्यवहारों में आत्मीयता

नहीं रहीं थी। वर्णव्यवस्था में आस्था न रखनेवालों में भी किसी न किसी प्रकार का आपसी भेदभाव बना हुआ था। इन दिनों दास प्रथा भी प्रचलित थी। हम देखते है कि प्रारंभिक मुस्लिम सुलतान गुलाम वंश से संबंधित थे।दासप्रथा का जैसा मुस्लिम संघटन देशों में रहा, वैसा भारत में नहीं रहा था। भारत में मुस्लिम सत्ता के कारण दासों की माँग बढ़ गयी थी। ''इस काल में मुस्लिम देशों के बाजारों में भारतीय दासों की ब्रिकी बहुत बड़ी मात्रा में हुई थी। भारत में दास का मूल्य फिरोज तुगलक के काल आठ टंक था। इस काल में बकरे का मूल्य तीन टंक था। फिरोज अपने मनसबदारों से कर के रूप में दासों की मांग करता था।'' उसके काल में दिल्ली में पचास हजार दास थे। हिंदू कन्याओं को संपन्न मुसलमान अधिकाधिक संख्या में क्रय करके अपने घरों में रख लिया करते थे। कुलीन नारियों का अपहरण करके अमीर लोग अपना मनोरंजन का साधन बनाकर रखते थे। मुहम्मद तुगलक ने चीन के सम्राट के पास भारतीय काफीरों में से एक-एक सौ स्त्री-पुरूषों को सौगात के रूप में भेजा था। इसके साथ ही हिंदू राजाओं का भी अभाव न था। जो मुस्लिम महिलाओं, विशेषतः सय्यद स्त्रियों को दासी के रूप में अपने यहाँ लाकर, नृत्य, गीत की शिक्षा दिलवाये करते थे। अर्थात तत्कालीन कुछ शासकों में रूप लिप्सा और काम-लिप्सा का आधिपत्य था। वे हिंदूओं के साथ कठोर व्यवहार करते थे। अल्लाउद्दीन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। उसने दोआब के हिंदुओं से उपज का 50 प्रतिशत भाग कर के रूप में बड़ी कठोरता से वसूल किया था। मुगल शासक अधिक चतुर और दूरदर्शी थे। उन्होंने अपने शासन को दृढ़ करने के लिए धार्मिक पक्षपात को दूर कर हिंदुओं को साम्राज्य के ऊँचे-ऊँच पदों पर नियुक्त किया किंतु औरंगजेब इस परंपरा को बनाए न रख सका और मुगल साम्राज्य के पतन का कारण बना।

इस समय मुस्लिम समाज की अवस्था भी हिंदुओं से भिन्न नहीं थी। आक्रमणकारी मुसलमानों के वंशजों में भी कालांतर में सद्भाव और सहिष्णुता का भाव उदित होने लगा। इस प्रवृत्ति को सूफी साधकों द्वारा आश्रय प्राप्त हुआ। उन दिनों इस्लाम की यह विशेष बात बन गयी थी कि तलवार द्वार आतंक उत्पन्न करने के बाद प्रेम की पट्टी बांध दी जाए। उस समय सुलतान का पद सर्वोपरी था और उमेला तथा उमरा का स्थान बाद में आता था। इसमें द्वितीय वर्ग के अंतर्गत ईराण, तुर्कस्थान, अफगानिस्थान तथा अरब के मूल निवासियों के नाम लिए जा सकते है। जिन्हें क्रमशः शेख, मुघल, पठान और सैय्यद की संज्ञा दी जाने लगी। इन्हें अपनवालों से बाहर संबंध प्रस्थापित करना स्वीकार नहीं था।

इस युग के आर्थिक विपन्नता का चित्र खींचते हुए तारिखे फिरोजशाही के लेखक बर्नीयर ने लिखा है, ''उन हिंदूओं के पास धन संचित करने के लिए कोई साधन नहीं गए थे और उनमें से अधिकांश को निर्धनता, अभावों और आजीविका के लिए निरंतर संघर्ष में जीवन बिताना पड़ता था। प्रजा के रहन-सहन का स्वर बहुत निम्न कोटी का था। करों का सारा भार उन्हीं पर था। राज्यपद उन्हें अप्राप्य थे।'' अर्थात तत्कालीन समाज में दो वर्ग निर्माण हो गए थे। इस संदर्भ में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में, ''दैनिक जीवन, रीति-रस्म, रहन-सहन, पर्व-त्यौहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन समाज सुविधा-संपन्न और असुविधाग्रस्त इन दो वर्गो में विभक्त था। प्रथम वर्ग में राजा-महाराजा, सुल्तान, अमीर, सामंत और सेठ-साहूकार आते थें जिनमें मनमाने ढंग से वैभव प्रदर्शन की उल्लासपूर्ण प्रवृत्ति पाई जाती थी। द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक, राज-कर्मचारी

और घरेलू उद्योग-धंदों में लगी सामान्य जनता थी जो प्रथा-परंपरा का पालन कर संतोष की सॉस ले लिया करती थी।'' अमीर और सामंत सूती, रेशमी अथवा कामिक (कढ़े हुए) वस्त्र पहनते थे एवं बहुमूल्य नगींनों से जड़ी सुनहली अँगूठियाँ धारण करते थे। उनकी पत्नियाँ रत्न जटित सुनहले कंकण तथा मूँगाजटित केयूर धारण करती थी। रूसी व्यापारी अफनेसियन (1470 ई.) के अनुसार बहमनी राज्यों के सुयोग्य वजीर महमूद गाँवा (1405-81 ई.) के समय शासकीय व्यवस्था प्रशंसनीय थी। भूमि की पैदावार प्रचुर थी, सडके लुटेरों के आतंक से रहित थी तथा राजधानी भव्य नगर के रूप में खुशहाल दिखायी देती थी। पुर्तगाली वारवासा (1500-16 ई.) के अनुसार जहाँ उमरा और बादशाह महलों में निवास करते थे, वहाँ कुछ लोग गलियों में निर्मित मकानों में रहते थे, जिनके सामने थोडी खुली जगह भी रहती थी। शेष जनता के भाग्य में झोपडियों में रहना बदा था। मुगलों के शासन - काल के विषय में पेलसपार्ट नामक लेखक ने लिखा है कि उस समय समाज के भीतर तीन ऐसे वर्ग -श्रमिक, नौकर, दुकानदार थे जिन्हें न तो स्वेच्छापूर्वक कार्य करने का अवकाश था, न यथेष्ट पारिश्रमिक ही मिला करता था। दुकानदारों को अपनी चीजें छिपा कर रखनी पडती थीं कि कहीं क्रूर राज-कर्मचारियों की दृष्टि न पड़ जाय। तत्कालीन साधु समाज पर भी पाखंड की काली छाया मँडराने लगी थी। गोस्वामी तुलसीदास कृत 'कवितावली' की निम्नलिखित पंक्तियों से तत्कालीन स्थिति का स्पष्ट परिचय मिलता है-

''खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि।
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।।
जीविका विहिन लोग सीद्यमान सोच बस।
कहँ एक एकन सौं, कहाँ जायें, का करी।।''

इस प्रकार सामंती संस्कृति में समाज शोषक और शोषित वर्ग में बेंठ गया है। भक्तिकालीन कवियों ने समाज के आर्थिक पहलू का निरूपण नहीं किया। उनका ध्यान धार्मिक और सामाजिक ऊँच-नीच के भेद-भाव पर गया क्योंकि वे स्वयं इन असमानताओं से पीड़ित थे। कबीरदास ने निम्न वर्ग में व्याप्त दीनता की भावना को दूर करके, उन्हें सहज अक्खडता का आध्यात्मिक उपदेश दिया। उन्होंने एक समान युग धर्म की स्थापना की और सामाजिक रूढ़ियों का खंड़न किया। हिंदू-मुस्लिम एकता का संतों का यह प्रयास मुगलकाल में संगीत, कला आदि क्षेत्रों में दोनों संस्कृतियों के समन्वय में देखा जा सकता है।

2.3.3 भक्तिकालीन कवियों का सामान्य परिचय :

2.3.3.1 संत नामदेव :

संत नामदेव मराठी साहित्य के प्रमुख भक्त कवि थे। परंतु बहुत से इनके पद हिंदी में भी हैं, जिनका संकलन 'गुरूग्रंथ साहिब' में है। नामदेव प्रथम सगुणोपासक थे, बाद नाथपंथी वारकरी संप्रदाय में दीक्षित हो गए। इसलिए बाद में इनका झुकाव निर्गण भक्ति की ओर होता गया। परंतु वे मूलतः मराठी साहित्य के भक्त कवि होने के कारण हिंदी साहित्य के निर्गुण भक्तिधारा के प्रवर्तक के रूप में उनका स्थान नहीं आता। फिर भी हिंदी में भी उनके पद मिलते है, इसलिए हिंदी साहित्य के भक्त कवि के रूप में उनका सामान्य परिचय निम्नांकित रूप में देख सकते है।

2.3.3.1.1 जीवनवृत्तांत :

नामदेव का जन्म महाराष्ट्र के परभणी जिले में नरसीबामणी गाँव में शके 1192 अर्थात 1270 ई. में एक दर्जी परिवार में हुआ था। तो कुछ विद्वान सतारा जिले में कऱ्हाड के पास नरसीबामणी गाँव में हुआ ऐसा कहते है। परंतु 'केशवराव कोरटकर' ने अपने अध्ययन से यह सिद्ध किया है कि नामदेव जी का जन्म स्थल परभणी जिले का नरसीबामणी गाँव है। नामदेव की माँ का नाम गोणाई और पिता का नाम दामाशेटी था। नामदेव के पिताजी विठ्ठल भक्त थे। प्रति वर्ष वे पंढरपुर की वारी करते थे। अतः बचपन से ही नामदेव के मन में विठ्ठल भक्ति संचरित हो गयी थी। नामदेव की पत्नी का नाम राजाई था। उन्हें नारा, विठा, गोंदा और महादा ये चार पुत्र थे। नामदेव की बहिन का नाम आऊबाई और पुत्री का नाम लिंबाई था। परंतु नामदेव जी का मन सांसारिक जीवन में नहीं लगा था। वे पंढरपुर में बसकर ही विठ्ठल की सेवा करते रहें थे। वहीं पर उनकी भेट ज्ञानेश्वर और उनके भाई बहनों से हुई थी। ज्ञानेश्वर की प्रेरणा से ही उन्होंने विसोबा खेचर से दीक्षा ली थी। इनके गुरू के बारे में कोई विवाद नहीं है। उनकी गुरू से हुई पहली भेंट के बारे में एक रोचक आख्यायिका है– एक बार संतों के समूह में गोरा कुम्हार ने नामदेव को 'कच्चा मटक' कहा। मुक्ताबाई ने गोरा कुम्हार के मन में पैदा हुए भक्ति के गर्व को पहचाना व उसका उपहास कर बात समाप्त करने का प्रयत्न किया । तब नामदेव ध्यानस्थ हो गए थे और बाद में ज्ञानदेव के कथनानुसार विसोबा खेचर के पास गए थे। विसोबा था विक्षिप्त पर ज्ञानी भी था। नामदेव उसके पास पहुँचे तब वह शिवसिंग पर पैर रखकर सो रहा था। यह देखकर नामदेव को बड़ा आश्चर्य हुआ व क्रोध भी आया। उन्होंने विसोबा से कहा – ''शिवजी पर से पैर हटाओ।'' इस पर विसोबा ने उत्तर दिया – 'जहाँ भगवान नहीं हो, उस जगह पर मेरे पैर रख दे।' ये शब्द सुनते ही नामदेव को सत्य का साक्षात्कार हो गया। उनकी आँखे खुल गई। इसके बाद विसोबा से नामदेव ने गुरू मंत्र लिया था।

इस प्रकार नामदेव सगुणोपासना से हटकर नाथपंथी निरंजन की साधना में प्रवृत्त हुए थे। ज्ञानदेव की समाधी के बाद नामदेव महाराष्ट्र छोड़कर हरिद्वार होते हुए गुरूदासपुर जिले के घुमान गाँव में जा बसे। वहां इनके हिंदू और सिख दोनों अनुयायी थे। 'घुमान' में आज भी नामदेव का मंदिर है। वहाँ पर उन्हें गुरूद्वारा बाबा नाम देवजी 'कहा जाता है। अतः वहाँ के नामदेव भक्तों की मान्यता है कि नामदेव की समाधि 'घुमान' में ही है। परंतु नामदेव द्वारा पंढरपुर में समाधि लेने का उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप से लाड़ाई के अभंगों में मिलता है। अतः नामदेव ने 80 वर्ष की आयु में शके 1272 अर्थात 1350 ई. में पंढ़रपुर के विठ्ठल मदिर के महाद्वार पर समाधी ली।

2.3.3.1.2 व्यक्तित्व :

किसी भी कवि या लेखक का साहित्यिक व्यक्तित्व उसके लौकिक व्यक्तित्व के जितना ही सत्य तथा महत्वपूर्ण होता है। नामदेव की मराठी तथा हिंदी रचनाओं से उनके दो व्यक्तित्वों का परिचय मिलता हैं। आत्मनेपरख शैली में लिखे उनके अभंगों में उनके आचरण तथा व्यवहार का बड़ा ही मनोज्ञ चित्र अंकित हुआ है। जनाबाई ने नामदेव के बाहय रूप का वर्णन इसप्रकार किया है, ''रस्सी की करधनी और चिथड़ो की लँगोटी पहने नामदेव चंद्रभागा के रेतीले मैदान पर कीर्तन करते है।'' संत नामदेव सीधे–साधे, निष्कपट तथा परम भावुक

थे। वे स्वभाव से बहुत ही क़जु अर्थात उनकी वृत्ति सरल, निरागस और नम्र थी। वे भ्रमणशील, बहुश्रुत तथा वाक्पटु थे। हिंदी रचनाओं के आधार पर नामदेव एक भावुक भक्त नहीं रहते। वे एक विचारशील संत ज्ञात होते है। विसोबा खेचर से निर्गुण-निराकार का उपदेश पाकर नामदेव में महान परिवर्तन हुआ।

2.3.3.1.3 नामदेव की रचनाएँ (कृतित्त्व) :

कहा जाता है कि नामदेव ने शतकोटी अभंग बनाने की प्रतिज्ञा की थी। इससे लगता है कि इनकी रचनाएँ बहुत अधिक होगी। परंतु इनकी 'शतकोट' का अर्थ प्रचुर मात्रा में लेना ही समीचिन हैं। आज नामदेव के अभंगों के पाँच छपे़ हुए गाथा उपलब्ध हैं, जिनमे लगभग ढ़ाई हजार अभंग इनके नाम पर मिलते हैं, परंतु नामदेव के नाम से प्रचलित सभी अभंग नामदेव के नहीं हैं। छपे़ हुए गाथाओं में से ऐसे भी पद पाए जाते है, जिनमें कबीर और कमाल का उल्लेख है, जो नामदेव के बाद के है।

इन पॉच गाथाओं में जो ढ़ाई हजार अभंग मिलते हैं उनमें से छह - सात सौ अभंग ही नामदेव के होंगे, शेष सभी प्रक्षिप्त है। डॉ. तुलपुले के अनुसार नामदेव की गाथा में विष्णुदास नामा के अभंगों की जो प्रचुर मात्रा में खिचड़ी हुई है उसमें से नामदेव के अभंग अलग करने की कोई तरकीब नहीं है। डॉ. भगीरथ मिश्र भी तुलपुले के मत का समर्थन करते है।

अ) मराठी गाथा की प्रतियाँ :

1. नामदेव आणि त्यांच्या कुटुंबातील व समकालीन साधूंच्या अभंगाची गाथा – संकलन तुकाराम तात्या धरत। यह गाथा 'तत्व विवेक प्रेस' मुंबई से 1864 ई. में प्रकाशित हुई है। इसके पृष्ठ 645 से 677 तक 'हिंदुस्तानी भाषेन अभंग' शीर्षक के अंतर्गत नामदेव के 106 हिंदी पद है।

2. नामदेवांची गाथा (आवृत्ति दूसरी) – रा. से गोधलेकर जगद्धितेच्छु छापखाना, पुणे 1889 ई.

3. 'श्री नामदेवांची गाथा' – इसके संकलन कर्ता ह. भ. परायण विष्णु नरसिंह जोग है। यह गाथा शके 1897 में पूना के 'चित्रशाला' प्रेस से प्रकाशित हुई है। इसके चौथे भाग में पृ. 455 से 473 तक 'हिंदुस्तानी पदे' शीर्षक के अंतर्गत 102 पद हिंदी के है।

4. श्री नामदेव महाराज यांच्या अभंगांची गाथा – इसका संपादन श्री ष्यंबक हरी आपटे ने किया। शके 1830 में यह गाथा इंदिरा प्रकाशन पूना से प्रकाशित हुई है। गाथा के आठवें भाग में पृ. 678 से 700 तक 'हिंदुस्तानी पदे' शीर्षक में 102 पद हिंदी के हैं।

5. श्री. नामदेव रायांची सार्थ गाथा – इसके संकलन कर्ता श्री प्रल्हाद सोताराम सुबंध है। अब तक इसके छह भाग प्रकाशित हो चुके है। गाथा के पाँचवें भाग में नामदेव के 61 हिंदी पद हैं। ये सभी पद 'श्री गुरूग्रंथ साहब' के ही है।

6. पंजाबातील नामदेव – शंकर पुरूषोत्तम जोशी ने 'गुरूग्रंथ साहब' के इस पदों का मराठी में अनुवाद किया है।

7. शिखांच्या आदि ग्रंथातील नामदेव – अ. का. पियोलकर इस पुस्तिका में 'श्री गुरू ग्रंथसाहब' के 61 पदों का मूल सहित भी मेकातिरू द्वारा किया हुआ अँग्रेजी अनुवाद तथा उनका मराठी भाषांतर दिया गया है।

आ) हिंदी की रचनाएँ :

अपने जीवन के उत्तरार्ध में भारत की यात्रा करते हुए, नामदेव ने हिंदी में कुछ.पदों की रचना की है। वास्तविक यह बात है कि संत नामदेव की रचनाओं का हिंदी साहित्य को अभी तक पता ही नहीं था। 'गुरूग्रथ साहब' के 61 पद ही अभी तक नामदेव की संपूर्ण हिंदी रचना समझी जाती थी। आ. विनमोहन शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिंदी को मराठी संतो की देन' में 11 और पद दिए है। जो 'गुरूग्रंथ साहब से भिन्न है। इसके अतिरिक्त संत नामदेव की गाथा में 103 हिंदुस्तानी पद है, जिसमें कुछ.'गुरूग्रंथ साहब में है, तो कुछ और है। किंतु नामदेव की हिंदी रचनाएँ इतनी ही नहीं।

इस संदर्भ में नारायण मौर्य का कथन दृष्टव्य है, ''मुझे विभिन्न प्रकाशित और हस्तलिखित प्रतियों से कुल 300 पद नामदेव के प्राप्त हुए हैं। हस्तलिखित प्रतियाँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सेंट्रल पब्लिक लायब्ररी, पटियाला, बाबा नामदेव जी का गुरूद्वार घुमान, पंढ़रपुर, पूना विश्वविद्यालय आदि स्थानों से प्राप्त हुए है। कुछ.प्रतियाँ जयपुर में भी है। रज्जब की 'सर्वंगी' में नामदेव के 30 के ऊपर पद संग्रहित है और भी संत वाणियों के अनेक संग्रह में नामदेव के पद मिलते है। अतः नामदेव की रचनाओं पर आधारित ग्रंथ इसप्रकार –

1. संत नामदेव की हिंदी पदावली – पूना विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित – संपादन – डॉ. भगीरथ मिश्र और डॉ. राजनारायण मौर्य।

2. 'गुरूग्रंथ साहब' – गुरू अर्जुनदेव द्वारा १९०४ ई. संपादन, ६१ पद मिलते हैं।

3. 'हिंदी को मराठी संतों की देन' – आ. विनयमोहन शर्मा।

4. संत सुधा सार – श्री वियोगी हरी द्वार संकलित, संत बाणी संग्रह भाग 2 – वेडलियर प्रेस द्वारा प्रकाशित, संत काव्य संग्रह – पुरूषोत्तम चर्तुवेदी द्वारा संग्रहित इसमें भी नामदेव के पद मिलते है।

इ) नामदेव की काव्य का भाव पक्ष :

नामदेव की काव्य के भावपक्ष का सौदर्य अपने आप बन पडा है। अपनी सहज भाषाशैली में अपने काव्य के दार्शनिक पक्ष तथा सामाजिक पक्ष को भक्तिरस से सराबोर किया है। अतः नामदेव के काव्य रचनाओं का काव्यसौदर्य की दृष्टि से निम्नांकित रूप में विवेचन कर सकते है।

1. निर्गुण ब्रह्म की उपासना :

यह भावना तो उपनिषद काल से चली आई है। नामदेव ने भी इसे अपनाया है। वे ऐसे भगवान की आराधना करते है जो न तो मंदिर में है, न मस्जिद में है। जैसे नामदेव कहते है–

''पाती तोडी पूँजू देवा। देवलि देव न होई।
नामा कहें मैं हरी को सरना। पुनरपि जनम न होई।।"

2. गुरू महिमा :

संत साहित्य में गुरू को सर्वश्रेष्ठ स्थान है, उसी प्रकार नामदेव ने भी गुरू का स्थान सर्वोपरी माना है। जैसे नामदेव कहते है- 'गुरू को शब्द बैकुंठ निरसन'।

3. मूर्ति पूजा तथा बाह्यांडबर का खंडन :

यद्यपि प्रथम नामदेव विठ्ठल मूर्ति के उपासक थे। परंतु बाद में अपने दीक्षा गुरू विसोबा खेचर से निर्गुण निराकार ब्रह्म का उपदेश पाकर गद्गद् हो गए। उनकी भक्ति में जो भाव था, वह दूर हो गया। पत्थर की मूर्ति बातें करती है, ऐसा कहनेवाले भक्त को वे मूर्ख कहने लगे। अतः मूर्तिपूजा का खंडन करते हुए नामदेव कहते है - एक पत्थर पूजा जाता है और दूसरा ठुकराया जाता है। यदि एक में देवत्व की अनुभूति है, तो दूसरे में क्यों नहीं? जैसे-

''एकै पाथर कीजै भाऊ। दूजे पाथर धरीए पाउ।।
जै ओहु देउ तै ओहु भी देवा। कहि नामदेऊ हम हरी के सेवा।।''

4. एकेश्वरवाद का प्रतिपादन :

'एकेश्वरवाद' का प्रतिपादन अर्थात बहुदेववाद का विरोध। 'वारकरी संप्रदाय में एक देवोपासना का ही महत्व है। नामदेव ने बहुदेववाद का विरोध किया है और एकेश्वरवाद का प्रतिपादन। अपने गोविंद का परिचय देते हुए उन्होंने कहा है, ''वह एक है और अनेक भी है, वह व्यापक है और पूरक भी है, मै जहाँ देखता हूँ, वहाँ पर वहीं दीख पड़ता है।'' जैसे- नामदेव के शब्दों में -

''एक अनेक विआपक पूरन जत देखउ तत खोइ।।
माइआ चित्र विचित्र विमोहित बिरला बुझै कोई।।
सभु गोविंद है सभु गोंविंद है गोविंद बिनु नहिं कोई।।''

5. कथनी और करनी में एकरूपता :

संतो को मानना है कि जब तक अंतकरण शुद्ध नहीं तब तक ध्यान, जप करने से कुछ भी लाभ नहीं होगा। जैसे नामदेव कहते है-

''काहे कू कीजै ध्यान जपना। जो मन नाही सुध अपना।।
साँप काँचली छाँडे विष नाहि छाँड़े।।''

6. भक्ति और ऐहिक कार्य में एकता :

भक्ति और सांसारिक कार्य को संतों ने अलग-अलग नहीं समझा। नामदेव की भक्ति भी भाव भक्ति है। वे भी भक्ति और ऐहिक कार्य की एकता पर बल देते है। भाव भक्ति का प्रतिपादन करते हुए नामदेव कहते है-

अभि अतर नहीं भाव, नाम कहै हरि नाम सू।।
नीर विहूणी नाव, कैसे तिरिबौ केसबे।।''

7. सत्संग की प्रधानता :

सत्संगगति को भक्ति का प्रमुख साधन माना जाता है। इस साधन को नामदेव ने विशेष महत्त्व दिया है। जैसे नामदेव कहते है–

का करौ जाती का करौ पाती । राजाराम सेऊँ दिन राती।।
सुइने को सुई रूपे का धागा। नामे का चितु हरि सु लागा।।''

8. सहज साधना :

संतों के अनुसार जिस साधना के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता वही साधना सहज साधना है। नामदेव सहज साधना को ईश्वर प्राप्ति का सबसे उत्तम मार्ग बताते है। सहज से अभिप्राय उस निष्काम भक्ति में था जो बिना किसी साधना और कर्म के तथा बिना पाखंड़ के सच्चे और सरल हृदय से की जाती है।

9. हठयोग :

हठयोग की भावना संतों में बहुत पहले से चली आयी है। संतों में हठयोग का क्लिष्ठ रूप नहीं मिलता। ऐसा प्रतित होता है कि हठयोग के जटिल रूप का वर्णन केवल परंपरा निर्वाह मात्र है। यथार्थ में तो मन, वायु तथा बिंदु की साधना में किसी एक ही साधना को जब नाथ पंथियों ने स्वीकार कर लिया, तब संतों ने चंचल मन को प्राणायाम की क्रियाओं से अपने अधिन करने के लिए योग की मूल स्थिति को स्वीकार कर लिया। योग की परिभाषा भी चित्तवृत्तियों की निरोध को लेकर चलती है। अतः नामदेव ने भी इसे अपनाया। योगी विसोबा खेचर ये दीक्षा लेने के उपरांत प्रतित होता है कि नामदेव कुंडलिनी योग साधना में प्रवृत्त हो गए और तभी से उनकी पदों तथा अभंगों में उसका उल्लेखा होने लगा। जैसे नामदेव कहते है–

''जह अनहत सूर उजारा। तह दीपक जलै छंछारा।
गुरू परसादी जानिआ। जनु नामा सहज समानिआ।।''

10. सामाजिक एकता का प्रतिपादन :

नामदेव वारकरी पंथ के थे। अपनी भक्ति मार्ग का सहारा लेते हुए उन्होंने समाज में फैले ऊँच–नीच का भेदभाव कम करने का प्रयास किया है। जाति भेद मिटाने के लिए उन्होंने भजन–कीर्तन का प्रचार किया। वे स्पष्ट रूप में कहते है–

'पाखंड़ी भगति राम नहीं रिझें।'

अर्थात नामदेव ने हरि कीर्तन के माध्यम से सामाजिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया।

ई) नामदेव की काव्य का कला पक्ष :

नामदेव के हिंदी पद 'गुरूग्रंथ साहब' और मराठी के पद 'नामदेवाची गाथा' तथा अन्य मराठी संग्रहों में

संकलित है। नामदेव की भाषा में कृत्रिमता नहीं है। उनकी भाषा में संस्कृत वर्णामाला के सभी स्वर और व्यंजन विद्यमान है। जिस प्रांत में जिन व्यक्तियों के संपर्क में आए, उनके शब्दों को ग्रहण किया। खडीबोली, ब्रज, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, पंजाबी आदि भाषा के शब्दों का समावेश हैं। मातृभाषा की झलक स्वाभाविकता से दिखायी देती है। कारण उनके पदों में 'आरती' और 'अभंग' आदि छंदों का सहज प्रयोग हुआ है। नामदेव के हिंदी पदों में संगीत की विभिन्न राग-रागिनियों का प्रयोग उपलब्ध होता है। आसावरी, तिलंग, गुजरी, कानड़ा, पानासरी, प्रभाती, भैरवी, मल्हार, रामकली, सारंग, बिलाबल, तोडी, मार, सोरटी, भालीगौडा आदि राग रागिनियाँ हैं।

संतों के लिए काव्य साधन था, साध्य नहीं। फिर भी नामदेव के काव्य कलापक्ष पुष्ट है। उनके काव्य में अनुप्रास का बाहुल्य है। उन्होंने अपनी अध्यात्मिक अनुभूतियों को बोधगम्य बनाने के लिए दृष्टांतों का प्रचुरमात्रा में प्रयोग किया है। उनका दूसरा प्रिय अलंकार रूपक है। नामदेव की कविता में भक्ति और शांत रस प्रधान है।

संक्षेप में कह सकते है कि नामदेव मध्ययुगीन जागरण के प्रणेता है। उन्होंने महाराष्ट्र के साथ उत्तर भारत में अपने क्रांतिकारी विचारों से युगांतर उपस्थित किया वहीं हिंदी साहित्य की दृष्टि से खड़ीबोली के पद्य को विभिन्न राग-रागिनियों की पद्यशैली प्रदान की। सचमुच नामदेव युगप्रवर्तक थे।

2.3.3.2 संत रविदास का सामान्य परिचय :

भक्तिकाल के अंतर्गत निर्गण भक्तिधारा एक प्रमुख शाखा मानी जाती है। इस भक्तिधारा के अंतर्गत नामदेव, कबीर , जायसी जैसे संत कवियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इनमें रामानंद की शिष्य परंपरा में ही आनेवाले रैदास (रविदास) का भी स्थान महत्वपूर्ण माना जा सकता है। हिंदी साहित्य के इतिहास पर आधारित रैदास जी का सामान्य परिचय निम्नांकित रूप में देख सकते है।

2.3.3.2.1 जीवनवृत्त :

संत रविदास को कभी संत रैदास, रविदास, रायदास, रयदास, रूईदास, रयिदास, रोहितास रमादास, रामदास, हिरदास और रूहिदास भी कहा जाता था। रविदास के जन्म तिथि तथा जन्म स्थान को लेकर विद्वानों में विभिन्न मत भेद हैं। परंतु संत करमदास नामक संत कवि ने उनके जन्म तिथि को लेकर एक दोहा लिखा है -

''चौदह सौ तैतीस की, माघ सुदी पंदरास,
दुखियों के कल्याण हित, प्रगटे श्री रविदास।।''

इसके अनुसार संत रविदास का जन्म रविवार, माघ पूर्णिमा संवत 1433 काशी में चमार परिवार में हुआ। इन्होंने स्वयं अपनी जाति बताई है - ''कह रैदास खलास चमारा।'' या ऐसी ''मेरी जाति विख्यात चमार।हृदय राम गोविंद गुन सार।'' इनके पिता के नाम रघु, राघु, रघुनंदन, रघुराम, राहू तो माता का नाम घुरबिनिया, कर्मा आदि विभिन्न नाम विभिन्न विद्वानों द्वारा बताए गए हैं। परंतु रविदास ने अपनी बानी में पिता का नाम संतोखदास और माता का नाम कलशीदेवी बताया है। जैसे-

''संतोखदास जी जिसके तात।
कलशी देवी जी है मात।।
संवत् चौदह तैंतीस,
प्रगट हुए जगत के ईश।''

रविदास जब बड़े हुए तो इनका मन कार्य-व्यापार की अपेक्षा साधु-संगति में अधिक रमता था। पिता ने तंग आकर इन्हें घर से अलग कर दिया। अतः रविदास घर के पिछवाड़े झोपड़ी ड़ालकर पत्नी लोनादेवी के साथ रहने लगे। इनके पुत्र का नाम विजयदास है। लोनादेवी का देहांत पुत्र बड़ा होने के बाद कुछ दिन में हो गया। इस घटना के बाद रविदास पूर्णतः सामाजिक कार्य में जुड़ गए और रविदास केवल एक जगह पर ही नहीं रहें, तो विभिन्न प्रांतों में भ्रमणयात्रा के लिए चल पड़े।

रविदास के गुरू रामानंद थे, परंतु रविदास ने अपने काव्य में अंत तक परमात्मा को गुरू के रूप में बताया है। जैसे-

''रविदास मानुष जन्म महं, हौ चिंतउं गुरू एक।
आद अंत मेरो सदगुरू, राखै सबन की टेक।।''

रविदास के ज्ञान के देखा जाए ता वे अनपढ़ बिल्कुल नहीं थे। लेकिन उन्होंने किसी गुरूकुल में जाकर ज्ञान प्राप्त नहीं किया है। अतः उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह जीवन के अनुभव और सत्संग के आधार पर ही। अतः ऐसे संत महात्मा की मृत्यु संवत 1584 वि. चैत्र कृष्ण चतुर्दशी के दिन काशी में हुई।

2.3.3.2.2 व्यक्तित्व :

इनमें संतों सहज सरलता, उदारता, निस्पृहता, संतुष्टि और तितिक्षा आदि गुण थे। ये भगवद् प्राप्ति के लिए अहंकार की निवृत्ति को आवश्यक मानते थे। कबीर के समान इनके भी ईश्वर निराकार थे। इन्होंने भी कबीर की भाँति निराकार को हरि आदि शब्दों से पुकारा है, किंतु इनके ईश्वर सगुण न होकर निर्गुण हैं। इनकी भक्ति प्रेम भाव की है। कबीर का माधुर्य भी इन्हें अभीष्ट है। अतः प्रारंभ में रैदास बहुत ही परोपकारी और दयालु व्यक्ति थे और दूसरों की सहायता करना उनका स्वभाव बन गया था। रैदास अनपढ़ थे किंतु संत साहित्य के ग्रंथों और 'गुरू ग्रंथ साहब' में इनके पद पाए जाते हैं।

रैदास वचन बद्धता में माहिर थे। एक बार गंगासक्नान के लिए आग्रह किया। तो उन्होंने कहा 'गंगा सक्नान को मैं आवश्य चलता किंतु एक व्यक्ति को आज ही जूतें बनवाकर देने का मैंने वचन दे रखा है। मैं जूते नहीं दे सका तो वचन भंग होगा मन यहाँ लगा रहेगा तो पुण्य कैसे मिलेगा? मन सही है तो इसी कटौती के जल से ही गंगा सक्नान का पुण्य हो सकता है। कहा जाता है कि इस प्रसंग के बाद ही कहावत प्रचलित हो गयी, 'मन चंगा तौ कटौती में गंगा।'

2.3.3.2.3 कृतित्व :

रैदास की अमृतवाणी को देखा जाए तो उनकी बाणी हर मनुष्य के लिए कदम-कदम पर आज भी

मार्गदर्शक है। रविदास यह चमार जाति अर्थात अछूत वर्ग में जन्में थे लेकिन उनका काव्य भी उसी वर्ग तक बिखरा पड़ा था। रविदास यह भी कबीर जैसे ही अनपढ़ थे, फिर जो काल था उस काल में अपनी बाणी लोगों तक पहूँचाने का कार्य किया। ऐसे रविदास को विश्व के प्रकाश स्तंभ भी कहें, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अतः रविदास ही इस अनन्य बाणी का साहित्य हमें विभिन्न लेखकों द्वारा ही मिल रहा है। जिसका परिचय निम्नांकित –

1. 'गुरूग्रंथ साहिब' – 40 पद संकलित।

2. रविदास के काव्य का संग्रह 'रवि दर्शन ' नाम से आ. पृथ्वीसिंह आजाद ने किया है।

3. विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों का संकलन 'जगत गुरू रविदास अमृत बाणी' (सटिक) के रूप में 'डेरा सच्च खंडबल्ला' जालंदर ने किया। इसके चार भाग है।

4. रैदास की बाणी – यह संकलन वेडलियर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित। यह रविदास के 83 पद और 6 साखियों का संग्रह है।

5. रविदास वचन सुधा – यह संकलन डॉ सरनादास भनोत ने किया। लाकसंपर्क हरियाणा द्वारा प्रकाशित

6. संत सुधासार – वियोगी हरि – 1996 ई.

7. संत रविदास – इंद्रराज सिंह – 1988 ई.

8. संत रैदासः कृतित्व, जीवन और विचार – डॉ. योगेंद्रसिंह 112 पद और 8 साखियाँ संकलित हैं।

9. गुरू रविदास शब्दावली – श्री रविदास गद्दी ऊण – 1971 ई. प्रकाशित।

10. संत गुरू रविदास वाणी – डॉ. बेनीप्रसाद शर्मा ने संकलन किया। इसमें रविदास के 177 पद और 41 साखियाँ है।

11. संत रविदास और उनका काव्य – स्वामी रामानंद शास्त्री ने संकलन किया। संवत् 2012 वि. में प्रकाशन हुआ।

2.3.3.2.4 रैदास के काव्य का भावन पक्ष :

रैदास की वाणी भक्ति की सच्ची भावना, समाज के व्यापक हित की कामना, मानव प्रेम से ओत-प्रोत होती थी। अतः रैदास के काव्य का भावपक्ष भी कबीर की भाँति मानवतावादी रहा है। रैदास ने ऊँच-नीच की भावना तथा ईश्वर- भक्ति के नाम पर किए जानेवाले विवाद को सारहिन तथा निरर्थक बताया। और सबको परस्पर मिल जुलकर प्रेमपूर्वक रहने का उपदेश दिया। वे स्वयं मधुर तथा भक्तिपूर्ण भजनों की रचना करते थे। उनका विश्वास था कि राम, कृष्ण, करीम, राघव आदि सब एक ही परमेश्वर के नाम हैं।

अपने एक ही ईश्वर के माध्यम समाज में जो वर्णा श्रम धर्म व्यवस्था थी, उसे समूल नष्ट करने का प्रयास रैदास जी ने किया। अतः जाति-पाति विरोध करतें हुए रैदास कहते है-

''जन्म जात मत पूछिये, का जात अस पात,
रविदास पुत संभ प्रण के कोउ नहि जातकुजात।''

इसप्रकार रैदास ने भी अपनी वाणी के माध्यम से मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि बाहय विधानों का विरोध कर आंतरिक साधना पर बल दिया है।

2.3.3.2.5 रविदास के काव्य का कलापक्ष :

'गुरूग्रंथ साहब' तथा अन्य कई संग्रहों में रैदास के पद बिखरें मिलतें है। उससे पता चलता है कि इनकी भाषा काफी सरल और सुगम है। इनकी वाणी में फारसी के शब्दों की बहुलता है। संभवतः फारसी भाषा उस समय तक राज-सम्मान प्राप्त कर चुकी थी और जनसाधारण में भी उसका प्रवेश हो गया था। आचार्य द्विवेदी इनकी कविता की विशेषता बताते हुए लिखते हैं - ''साधारणतः निर्गुण संतों में कुछ-न-कुछ सुरति, निरति और इंगला, पिंगला का विचार आ जाता है। ''रैदास के कुछ भजनों में वे भी स्पष्ट आए हैं, परंतु रैदास की वाणियाँ इन उलझनदार बातों से मुक्त हैं। यद्यपि उनमें अद्वैत वेदांतियों के परिचित उपमानों तथा नाथों और निरंजनों के सहज, शून्य आदि शब्द भी आ गए हैं, फिर भी उनमें किसी प्रकार की वक्रता या अटपटरन नहीं है और न ज्ञान के दिखावे का आडंबर ही है। आगे चलकर वे लिखते हैं - ''आडंबरहीन सहज शैली और निरीह आत्मसमर्पण के क्षेत्र में रैदास के साथ कम संतों की तुलना की जा सकती है। यदि हार्दिक भावों की प्रेषणीयता काव्य का उत्तम गुण हो तो निःसंदेह रैदास के भजन इस गुण से समृद्ध हैं।''

जैसे -

प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग-अंग बास समानी।
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।।
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती।।
प्रभु जी तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहि मिलत सुहागा।।
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भगति करै रेदासा।।

2.3.3.3 संत मीराबाई का सामान्य परिचय :

भगवान कृष्ण की अन्यय उपासिका और कृष्ण काव्य धारा की महान कवयित्री मीराबाई भक्ति-काल की उन विभूतियों में हैं, जिनके पद गुजरात, राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, और बंगाल तक भक्तों द्वारा भावविभोर होकर गाए जाते हैं। ऐसी कृष्ण भक्त मीरा का सामान्य परिचय इसप्रकार-

2.3.3.3.1 मीराबाई का जीवनवृत्त :

मीराबाई राजस्थान के जोधपुर राज्य के अंतर्गत मेड़ता के राठौर रतनसिंह की बेटी, राव दूदा जी की पोती और जोधपुर बसाले वाले राव जोधा जी की प्रपौत्री थी। इनका जन्म वि. संवत 1561 श्रावण सुधी शुक्रवार काव गॉव चोकड़ी (कुकड़ी) में हुआ था, जो इनके पिता के जागीर में था। इनके पिता का नाम रत्नसिंह तो

माता का नाम कुसुम कुमारी था। वह अपने पिता की एक लौती संतान थी। मीरा जब दो वर्ष की थी तभी माता का देहांत हो गया था। वि. संवत 1584 में पिता वीरगति को प्राप्त हुए।

उनके पिता रत्नसिंह ज्यादातर युद्ध में व्यस्त रहते थे, इसलिए उनका बचपन रावदूदा के यहाँ मेड़ते मे बीता था। दूदाजी परम वैष्णव भक्त थे इसलिए उनके संस्कारों में पली-बढ़ी मीराँ पर भी भक्ति का प्रभाव स्वभाविक था। बचपन की और एक बात का उल्लेख लगभग सभी ग्रंथो में मिलता है। पड़ोस में जब मीरा ने विवाह, बारात देखी तब माँ से पूछा, ''मेरा दूल्हा कौन है?'' मॉ ने उत्तर दिया 'तेरा दूल्हा तो गिरीधरलाल है।' मीराँ ने माँ के इस बात से अंत तक कृष्ण को ही अपना पति माना। फिर भी इस लौकिक जगत में उनकी शादी महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज से उम्र के बारहवें वर्ष में हुई। परंतु दो-चार वर्ष के बाद ही भोजराज की मृत्यु हो गयी। पति के मृत्यु के बाद मीराँ ने सांसारिक जीवन का त्याग किया और साधु-संगति में रहकर केवल श्रीकृष्ण की दिवानी बनकर श्रीकृष्ण का ही गुण-गान गाती रहीं। इसके लिए उसे अनेक पारिवारिक यातनाओं को सहन करना पडा था। उनके देवर ने उन्हें विष देकर भी मारने का प्रयास किया था, परंतु श्रीकृष्ण की कृपा से वह सभी यातनाओं को सहन कर गई। ऐसी कृष्ण की प्रेम दिवानी मीराँ की मृत्यु वि. संवत 1610 या 1613 बतायी जाती है।

मीरा के गुरू के बारे में विभिन्न मतभेद हैं। अधिकतर विदवानों ने रैदास को मीरा का गुरू माना है, परंतु इस संदर्भ में मतैक्य नहीं है। डॉ. प्रभात ने इस संदर्भ में लिखा है, ''मीराँ तो वैष्णव मार्गी थी और रैदास निर्गण मार्गी थे। वैष्णव, सैन्यासी से दीक्षा नहीं लेते। वह भी रैदास ज्ञानमार्गी है और मीराँ प्रेममार्गी है।'' इन बातों से स्पष्ट होता है कि मीराँ ने किसी से भी दीक्षा नहीं ली थी। वह तो एकमात्र गिरिधर को ही अपना सबकुछ. मानकर चली थी । अतः वही उसके गुरू हैं।

2.3.3.3.2 मीराबाई का व्यक्तित्व :

मीराँ का व्यक्तित्व कृष्णमय रहा है। वह कृष्ण की प्रेम दिवाणी है। कृष्ण की प्राप्ति के लिए उसने जीवन में अनेक संकटों का सामना किया है। अर्थात मीराँ का व्यक्तित्व सहनशील रहा है। मीरा के व्यक्तित्व के संबंध में डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने लिखा है, ''जहाँ तक मीरा के व्यक्तित्व की बात हैं - उनमें हम अद्भुत साहस, अद्भुत धैर्य, एवं अद्भुत सहजता पाते हैं। वे अपने लक्ष्य के प्रति इतनी अधिक आस्थावान एवं दृढ़ हैं कि विषपान की स्थिति भी उन्हें विचलित नहीं कर पाती। पारिवारिक विरोध, सामाजिक भर्त्सना एवं लोकनिंदा भी उनके तेजस्वी व्यक्तित्व को तनिक भी छू नहीं पाती। यही कारण है कि वे अपनी आत्मा की आवाज को, अपने हृदय के क्रंदन को, अपने मन के उल्लास को, अपनी भावनाओं के आवेग को और अपनी अनुभूतियों के प्रवाह को निर्बांध रूप में व्यक्त कर पाई।''

मीरा का हृदय प्रेम और भक्ति से परिपूर्ण था। यही कारण है कि पदावली कृष्ण के प्रति प्रणय-निवेदन से भरी हुई है। कृष्ण के प्रति वे पूर्ण रूप से समर्पित हैं। वे अपने आराध्य को प्रेमी ही नहीं, अपितु पति के रूप में स्मरण करती हैं।

''मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरों न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।।''

2.3.3.3.3 मीराबाई का कृतित्व :

मीराँ के नाम निम्नलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध हैं–

1. गीत गोविंद की टीका : इसमें मीराँ ने गोविंद संबंधी पद और गीत लिखे हैं। महाराणा कुंभा ने 'गीत–गोविंद' पर 'रसिक प्रिया' नामक टीका लिखी थी। बहुत खोज के बाद यह सिद्ध हुआ है कि यह मीरा की रचना नहीं है।

2. नरसी जी का मायरा अर्थात माहेरो : गुजरात और राजस्थान में प्रचलित कौटुंबिक रीति–रिवाजों को 'माहेरा' कहते है। यह चौपाई–दोहों में लिखा गया ग्रंथ है। जिसमें विषय – वर्णन मीराँ की किसी मिथुला नामक सखी को संबोधित करके किया गया है।

3. राग सोरठ का पद संग्रह : इसके केवल पाँच पृष्ठ मिलते हैं। डॉ. प्रभात का अनुमान है कि राग सोरठ नामक अलग ग्रंथ की रचना नहीं की।

4. राग मल्हार : मीराँबाई का मल्हार कोई स्वतंत्र काव्य रचना नहीं है। यह एक राग विशेष है जो मीराँ से रचित मल्हार राग पदों का संग्रह हैं।

5. राग गोविंद : इस ग्रंथ में मीराँ ने इस नाम से 'कविता का एक ग्रंथ' रचा था।

6. मीराँ की गरबी : 'गर्बा' गीत रासमंड़ली के गीत की भाँति रचित माना है। मीराँबाई के ऐसे गीतों को 'मीराँनी गरबी' कहा जाता है।

7. फुटकर पद : इसे 'मीराँ की पदावली' भी कहा जाता है। मीराँबाई की रचनाओं में सबसे अधिक निश्चित पदों का ही पता चलता है। इनकी संख्या दो सौ की समझी जाती थी। पदों मे कुछ. की भाषा गुजराती है। इन फुटकर पदों के अंतर्गत मीराँबाई निर्मित समझी जानेवाली रचनाएँ पूर्णतः लोकगीत–सी बन गयी है।

मीराबाई की रचनाओं में 'मीराँ की पदावली' ही सबसे अधिक प्रामाणिक मानी जाती है। इनके पदों में श्रीकृष्ण की विविध लिलाओं का वर्णन हैं। उनमें बाललीला, वंशी वादन लीला, नाग लीला, चीरहरणलीला, मिलन लीला, पनघट लीला, फाग लीला, दधि बेचन लिला आदि । इसके अतिरिक्त ब्रजभूमि, मथुरा गमन, शबरी, सुदामा, उद्धव संवाद आदि का भी वर्णन है।

2.3.3.3.4 मीराबाई के काव्य का भावपक्ष :

मीराँ कृष्णभक्ति शाखा की सगुणोपासिका की भक्त कवयित्री है। इनके काव्य का एकमात्र विषय नटवर नागर श्रीकृष्ण का मधुर प्रेम हैं। अर्थात मीराँ की भक्ति माधुर्य भाव की भक्ति है।

1. वेदनानुभूति :

मीरा के काव्य में वेदना प्रमुख तत्व बनी हुई हैं। कारण उन्होंने कृष्ण का अपना पति मान लिया था। कृष्ण के वियोग में वह इतनी विह्वल हैं कि जब तक वैद्य सँवरिया से भेंट नहीं होगी, उनकी पीर मिटने वाली नहीं। जैसे मीरा कहती है –

हेली री, मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरो दरद न जाणै कोय।
घायल की गति घायल जाणै, की जिण लाई होय।।
छरद की मारी बन बन ड़ोलूँ, बैद मिल्या नहिं कोय।
मीरा की प्रभु पीर तबै मिटैगी, जब बैद सँवरिया होय।।

कृष्ण के प्रति इस अनन्य अनुराग के अतिरिक्त मीरा के पदों में कबीर जैसे संतों की प्रणय भावना और रहस्यवाद के दर्शन भी होते हैं। योगियों और नाथपंथियों का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है और गुरू की महत्ता का प्रतिपादन भी मिलता हैं।

2. निराकार के प्रति अनुराग :

भक्तों का भगवान के प्रति उदात्त, अशरीरी और अलौकिक प्रेम हुआ करता है। ईश्वर को मिलने के लिए मीरा व्याकूल हो उठती है तथा उसकी यह तड़प भक्ति गीतों के माध्यम से मुखर हुई है। जैसे –

''जाको नाम निरंजन कहिए, ताको ध्यान धरूँगी।''

3. रहस्यवाद :

मीराबाई कर्मानुसार प्राप्त मानस शरीर का आवरण धारण किए हुए जीवात्मा के रूप में अपना जीवनयापन कर रहीं थीं। परंतु कभी–कभी इस दैनिक व्यवहार के अंतर्गत ही परमात्मा के साथ तादात्म्य कर उसके साथ एकरूप हो जाती थी। इसीकारण उनके पदों में अनेक स्थलों पर रहस्यवाद की झलक दिखाई पड़ती थी। जैसे–

''सतगुरू भेद बताइया खोली भरम की किवारी हो।
सब घट दीसै आत्मा, सब ही सूँ न्यारी हो।।''

4. प्रकृति तथा संस्कृति का दर्शन :

मीराँ ने विरह वर्णन में 'बारहमासा' के अंतर्गत प्रकृति का चित्रण किया है। प्रियतम से दूर मीराँ को प्रकृति के सारे उपादान मोर, पपीहा, कोयल कोई भी अच्छा नहीं लगता। वसंत ऋतु के आगमन के बाद मीरा का मन बैचेन हो जाता है –

''अजहूँ नहिं आयो मूरारी,
बाजत झॉझ मृदुंग मुरलिया बाज रही इकतारी
आयो बसंत कंत घर नहिं तन में जर भया भारी।।''

इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति तथा व्रत-त्यौहारों का चित्रण भी मीराँ के पदों मिलता है। नाथपथी विचारों का प्रभाव भी मीराँ के काव्य में दिखाई देता है।

2.3.3.3.5 मीराँ के काव्य का कला पक्ष :

मीराँ के काव्य की भाषा ब्रजी है जिसमें राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, भोजपुरी आदि भाषाओं के शब्द हैं। मीरा की भाषा भावों की अनुगामिनी हैं। उनमें एकरूपता नहीं है फिर भी स्वाभाविकता, सरसता और मधुरता कूट-कूटकर भरी हुई हैं। मीरा के पदों में शृंगार के दोनों पक्ष, संयोग और वियोग का बड़ा मार्मिक वर्णन हुआ है। जैसे मीराँ कहती है-

''आवत मोरी गलियन में गिरीधारी,
मैं तो छुप़ गयी, लाज की मारी।।''

इसके अतिरिक्त शांत रस का भी बड़ा ही सुंदर समावेश हुआ है। मीराँ का संपूर्ण काव्य गेय पदों में है जो विभिन्न राग-रागनियों में बँधे हुए हैं। अलंकारों का प्रयोग मीरा की रचनाओं में स्वाभाविक ढ़ंग से हुआ है। विशेषकर वे उपमा, रूपक, दृष्टांन आदि अलंकारों के प्रयोग से बडे. ही स्वाभाविक हुए है।

संक्षेप में कह सकते है मीरा के काव्य में निर्गंण, निराकार से रिश्ता बनाकर अलौकिक प्रेम का वर्णन है, जहाँ प्रियतम ईश्वर है। मीरा काव्य अध्यात्मिक शृंगार का काव्य है। मीराँ के काव्य में शृंगार रस के साथ-साथ शांत रस भी है।

2.3.3.4 गुरूनानक देव का सामान्य परिचय :

गुरू नानक सिख धर्म के संस्थापक थे । उनके संबंध में अनेक विवरण और जन्म साखियाँ हैं, जिनसे उनके जीवन पर प्रकाश ड़ाला जा सकता है। वह निम्नांकित रूप में हैं-

2.3.3.4.1 जीवनवृत्त :

गुरूनानक का जन्म संवत् 1526 कार्तिक पूर्णिमा के दिन तिलवंड़ी ग्राम-जिला लाहौर में हुआ। इनकी माता का नाम तृप्ता और पिता का नाम कालूचंद था, जो जाति के खत्री थे। वे किसान और पटवारी थे और साथ ही कुछ.महाजनी भी करते थे। अतः नानक का बचपन प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में व्यतीत हुआ। छुट्पन से ही नानक मौन रहते थे और विचारों में डूबे रहते थे। कभी-कभी तो ये साधु और फकीरों का संग भी करते थे जिससे इनके पिता इनसे बहुत रूष्ट रहते थ। जो काम इनसे करने के लिए कहा जाता वहीं इनसे बिगड़ जाता था, क्योकि ये अपने ध्यान में डूबे रहते थे। एक बार इनके पिता इन्हें बीस रूपये रोजगार करने के लिए दिए, पर वे उन्होंने सब साधु और फकीरों पर खर्च कर दिये। इनके पिता को इस उच्छृंखलता पर बहुत क्रोध आया और उन्होंने इन्हें सुलतानपुर (जालंधर) नौकरी करने के लिए भेजा, जहॉ इनकी बहन जानकी के पति जयराम रहते थे। इसी बीच (संवत् 1545) इनका विवाह गुरूदासपुर के मूलचंद खत्री की कन्या सुलक्षणी से हुआ था। लगभग अठारह वर्ष की उम्र में उनका विवाह कर दिया था। सुलक्षणी से इनके दो पुत्र श्रीचंद और लक्ष्मीचंद

हुए। श्रीचंद आगे चलकर उदासी संप्रदाय के प्रवर्तक हुए। जब तक इन्होंने नौकरी की ये बड़े सतर्क और आज्ञाकारी रहें। कमाये हुए धन का बहुत –सा भाग इस समय भी साधुओं की सेवा में समाप्त होता था। ये दिन भर काम करतें थे और को गीत बनाकर गाया करतें थे। इनका एक गायक मित्र था जो तलवंड़ी से आया था। उसका नाम था मरदाना। जब नानक गाया करते थे तो मरदाना रबाब बजाया करता था।

एक बार वेन नदी में स्नान करते समय इन्हें आत्म–ज्ञान हुआ और इन्होंने ईश्वर की दिव्य विभूति देखी। इसी समय से इन्होंने नौकरी छोड़कर पर्यटन प्रारंभ किया। चारों दिशाओं में इन्होंने मरदाना के साथ बड़ी–बड़ी यात्राएँ की और अपने सिद्धातों को गा–गाकर प्रचारित किया। अंत में संवत् 1595 में करतारपुर आकर इन्होंने अपनो परिजनों के बीच महाप्रस्थान किया।

2.3.3.4.2 व्यक्तित्व :

गुरू नानक भविष्यद्रष्टा थे। उन्होंने आध्यात्मिकता और नैतिकता से प्रेरित संश्लिष्ट कर्मयुक्त जीवन का स्वप्न देखा था और ऐसे समाज की कल्पना की थी जो एक ओर स्वार्थी पुरोहित वर्ग से मुक्त हो, दूसरी ओर निरंकुश राजाओं और उनके अत्याचारी चाटुकारों से। वे एक महान शिक्षक थे। उनकी सर्जनात्मक दृष्टि का परिणाम उनकी शिक्षाओं से पैदा होनेवाला, क्रांति की आग में दमकता हुआ वह सिख धर्म था। वे बचपन से ही चिंतनशील प्रकृति थे। उन्होंने घर पर रहकर ही संस्कृत, फारसी तथा बहीखाता लिखने की शिक्षा ली थी। उनका मन सांसारिकता में नहीं रमा, तो आध्यात्मिकता में उनका मन अधिक रमा था। अतः बचपन से ही गुरू नानक में आध्यात्मिक, विवेक और विचारशील जैसी कई खूबियाँ मौजूद थी।

गुरूनानक जी का व्यक्तित्व असाधारण था। उनमें पैगंबर, दार्शनिक, राजयोगी, गृहस्थ, त्यागी, धर्म–सुधारक, समाज – सुधारक, कवि, संगीतज्ञ, देशभक्त, विश्वबंधु सभी के गुण उत्कृष्ठ मात्रा में विद्यमान थे। उनमें विचार शक्ति और क्रिया शक्ति का अपूर्व सामंजस्य था। उनके महान व्यक्तित्व के बारे में भाई गुरूदास ने कहा है,

''सतिगुरू नानकु प्रगटिआ मिटि धुंधु जग चानणु होआ।''

अर्थात उनके आने से संसार से अज्ञान की धुंध समाप्त होकर ज्ञान का प्रकाश फैला है।

2.3.3.4.3 कृतित्व :

गुरू नानक जी के रचनाओं का परिचय निम्नांकित रूप में दे सकते हैं–

1. 'गुरूग्रंथ साहब' – 947 पद है।

2. 'जपुजी' – अर्थात ईश्वर चिंतन – 'गुरूग्रंथ साहब' में 38 श्लोक है, जिसे 'जपुजी' कहा जाता है। जिसकी रचना पंजाबी भाषा में हुई है। इसे सिक्खी शब्दावली में 'अमृतवेला' कहा गया है। ब्राह्म मुहूर्त में इसका पाठ करने का नियम है। विश्वास है कि इसके निरंतर पाठ से साधक को मुक्ति का वरदान मिलता है।

3. 'आसा दी वार' – यह एक प्रबंधात्मक कविता है, जिसमे २४ पद और बीच-बीच में श्लोक बिखरे हुए है। जो परब्रह्म की धारणा का आख्यान करते हैं। ब्राह्म मुहूर्त में इसके भी पाठ का प्रावधान है।

4. 'राग मांझ' – यह रचना आध्यात्मक जीवन के सच्चे स्वरूप के साक्षात्कार के प्रति मन को प्रबुद्ध करनेवाली है।

5. 'राग रामकली दखणी' – यह एक लंबी पद्यबद्ध कविता है। इसमें निबंद्ध ओंकार को चित्राक्षरी में इस रूप में ढ़ाला है कि उससे गहन दार्शनिक और नैतिक शिक्षा मिलती है।

6. 'सोहले' – इसके अंतर्गत 'राग मारू' में भी ऐसी ही शिक्षा दी है।

7. 'सिद्ध गोसटि' – जो राग रामकली में रचित है। इसमें 73 पद हैं, जिनमें 'योगाभ्यास' का गूढ़ विवेचन किया गया है।

8. 'बारहमाह' – बारह महिनों का गीत है, जो राग तुखारी में रचित है।

9. 'राग आसा और तैलंग' – जिसमें बाबर की फौजों द्वारा पंजाब के लोगों पर किये गये अत्याचारों और भारतीय स्त्रियों के अपमान पर गुरूनानक की अंतर्वेदना व्यक्त हुई है।

10. 'राग वड़हंस' – अलाहनियाँ मृत्यु के विषय पर लिखी गई मर्म स्पर्शी कविताओं की कड़ी है।

2.3.3.4.4 गुरू नानक के काव्य का भावपक्ष :

नानक के दार्शनिक सिद्धांत अधिकांश कबीर से मिलते हैं। जिसमें एकेश्वरवाद, हिंदू-मुसलमानों में अभिन्नता तथा मूर्तिपूजा का प्रमुखता से उल्लेख कर सकते हैं। अर्थात गुरू नानक की रचनाओं में मानवता का स्वर मुखरित हुआ है। जिसमें समन्वय भावना, परब्रह्म की उदात्त संकल्पना, सामाजिक विवेक, नैतिकता का संदेश आदि विभिन्न विषयों पर विचार व्यक्त हुए हैं। परब्रह्म के प्रति विचार इस प्रकार-

''मोती त मंदर उसरहि रतनी त होहि जड़ाउ।
कसतूरी कुंगू अगरि चंदन लीपि आवै चाउ।
मतु देखि भूला बीसर तेरा चिति न आवै नाऊ।
हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ।।''

अर्थ – मोती के घर बनाए गए हो और उनमें रत्न जडे.गये हों। कस्तूरी, केशर, अगर और चंदन आदि से इस प्रकार लिपें हों, जिससे मन में प्रसन्नता प्राप्त होती हो। ऐसे में कहीं भूलावें और धोखे में न पड़ जाउं, जिससे तेरा नाम भूल जाए और तेरे चित्त में न आयें। हरि प्रेम कं बिना यह जीव नष्ट हो जाएं।

जीव, अहिंसा, मूर्तिपूजा, बाहयाचार आदि का निर्भीकता से खंड़न किया है। जैसे-

''रैन गवाई सोइ कै, दिवसु गंवाइया खाय।
हीरे जैसा जन्मु है, कउड़ी बदले जाय।।''

इस प्रकार गुरू नानक जी ने अपने साहित्य में निर्गुण बह्म की उपासना, संसार की क्षणभंगुरता, माया की शक्ति, नाम जप की महिमा, आत्मज्ञान की आवश्यकता, गुरूकृपा का महत्व, सात्विक कर्मो की प्रशंसा आदि विषयों का प्रतिपादन किया हैं।

2.3.3.4.5 गुरू नानक के काव्य का कलापक्ष :

नानक का अधिकांश साहित्य पंजाब भाषा में लिखा हुआ है। उनकी भाषा में प्रवाह और सहजता है। अलंकारों का सहज प्रयोग हुआ है। उपमा, रूपक और अनुप्रास नानक जी के प्रिय अलंकार हैं। नानक जी ने छंद्रों का प्रयोग नहीं किया हैं। उनके पद राग-रागिणियों में रचित हैं।

प्राचीन हिंदी कविता से संबंध अनेक काव्यात्मक परंपराओं और पंजाब के लोक-गीतों को 'वाणी' में ग्रहण किया हैं। समस्त वाणी लयबद्ध है ताकि स्मृति में संजोने और पाठ करने में आसानी रहें। गुरू नानक की कविता का बिंब-विधान रोजमर्रा की जिंदगी के अनुभवों से गृहित है जिससे मनुष्य की कल्पना और उसके अंतर्मन के धरातल जागृत हो जाते हैं। गुरू नानक ऐसे के अनेक पद ऐसी सूक्तियों के तौर पर कहावतों के रूप में पंजाब में मान्य हो चुके हैं जिनसे जन-मन प्रकाशित हो उठें। ब्रह्म ज्ञान की व्याख्या करते हुए भारतीय दर्शन की शब्दावली का उन्होंने कुशलता और गहरी समझदारी के इस्तेमाल किया है।

इस प्रकार एक महान आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षण के अतिरिक्त गुरू नानक एक महान कवि है, जिन्होंने लोक-परंपरा की भाषा को पूरे अधिकार से, कारगर तरीके से प्रयुक्त किया और भारते के अनेक भागों में, व्यापक पैमाने पर आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण किया।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 अ) निम्नलिखित वाक्यों में से नीचे दिए गए पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) हिंदी साहित्य के भक्तिकाल के राजनीतिक इतिहास की कहानी .....से प्रारंभ होती है।

अ) शहाबुद्दीन गौरी ब) मुहमद बिन तुगलक क) अलाउद्दीन खिलजी ड) बाबर

2) सैयद वंश के बाद दिल्ली की गद्दी पर ..... वंश बैठा।

अ) लोदी वंश ब) तुगलक वंश क) मुगल वंश ड) खिलजी वंश

3) पानीपत की पहली लड़ाई में ..... ने विजय प्राप्त की थी।

अ) अकबर ब) बाबर क) हुमायूँ ड) शाहजहाँ

4) जलालुद्दीन ..... नाम से गद्दी पर बैठा था।

अ) अकबर ब) बाबर क) हुमायूँ ड) शाहजहाँ

5) बाबर के पुत्र का नाम..... हैं।

अ) अकबर ब) बाबर क) हुमायूँ ड) शाहजहाँ

6) भारत के मुस्लिम शासको में ..... का सर्वोच्च स्थान है।

अ) अकबर ब) बाबर क) हुमायूँ ड) शाहजहाँ

7) ..... ने अपने दरबार में बीरबल, तानसेन, रहीम जैसे नव रत्न रखें थें।

अ) अकबर ब) बाबर क) हुमायूँ ड)शाहजहाँ

8) शाहजहाँ के शासन के अंतिम दिनों में बुंदेलखंड में ..... की स्वतंत्रता की चेष्टाएँ प्रगट हुई।

अ) राणा सांगा ब) चंपतराय क) शिवाजी ड) शाहजहाँ

9) महाराष्ट्र में .....की स्वतंत्रता की चेष्टाएँ प्रगट हुई।

अ) राणा सांगा ब) चंपतराय क) शिवाजी ड) शाहजहाँ

10) भक्तिकालीन समाज में ..... वर्ग निर्माण हो गए थे।

अ) एक ब) दो क) तीन ड) चार

11) नामदेव के हिंदी पद ..... में संकलित हैं।

अ) नामदेवाची गाथा ब) नामदेवांचे अभंग क) गुरूग्रंथ साहब ड) नामदेवांची वाणी

12) नामदेव नाथपंथी .....संप्रदाय में दीक्षित हो गए थे।

अ) वारकरी ब) अद्वैत क) निम्बार्क ड) द्वैतवाद

13) नामदेव के पिताजी ..... भक्त थे।

अ) शंकर ब)राम क) विठ्ठल ड) कृष्ण

14) नामदेव का जन्म..... परिवार में हुआ।

अ) चमार ब) दर्जी क) नाई ड) ब्राह्मण

15) नामदेव की माँ का नाम .....था।

अ) गोणाई ब) राजाई क) लिंबाई ड) आऊबाई

16) नामदेव की पिता का नाम .....था।

अ) रामाशेटी ब) दामाशेटी क) राजशेटी ड) शामाशेटी

17) नामदेव की पत्नी का नाम .....था।

अ) गोणाई ब) राजाई क) लिंबाई ड) आऊबाई

18) नामदेव की बहन का नाम .....था।

अ) गोणाई ब) राजाई क) लिंबाई ड) आऊबाई

19) नामदेव की पुत्री का नाम ..... था।

अ) गोणाई ब) राजाई क) लिंबाई ड) आऊबाई

20) नामदेव ने से .....दीक्षा ली थी।

अ) विसोबा खेचर ब) विठोबा खेचर क) विनोबा खेचर ड) विरोबा खेचर

21) संत रविदास का जन्म रविवार, माघ पूर्णिमा संवत 1433 काशी में .....परिवार में हुआ।

अ) चमार ब) दर्जी क) नाई ड) ब्राह्मण

22) संत रविदास के पिता का नाम .....हैं।

अ) संतोषदास ब) संतोखदास क) धरमदास ड) करमदास

23) संत रविदास की माता का नाम ..... हैं।

अ) कलशीदेवी ब) सुलक्षणादेवी क) मन्नादेवी ड) धर्मादेवी

24) मीराँ का जन्म .....गॉव में हुआ था।

अ) सुकडी ब) कुकड़ी क) रूकडी ड) मेडते

25) मीराबाई के पिता का नाम .....हैं।

अ) रत्नसिंह ब) भोजराज क) रावदूदा ड) राणा सांगा

26) मीराबाई के माता का नाम .....हैं।

अ) कमल कुमारी ब) कुसुम कुमारी क) सुमन कुमारी ड) मीना कुमारी

27) मीराँ ..... की प्रेम दिवाणी थी।

अ) शंकर ब) राम क) विठ्ठल ड) कृष्ण

28) मीराबाई की रचनाओं में ..... सबसे अधिक प्रामाणिक मानी जाती है।

अ) मीरानी गरबी ब) नरसी जी माहेरा क) मीरा की पदावली ड) राग सोरठ

29) मीराँ की भक्ति ..... की भक्ति है।

अ) दास्य भाव ब) माधुर्य भाव क) सख्य भाव ड) विनय भाव

30) मीरा के काव्य में ..... प्रमुख तत्व बनी हुई हैं।

अ) वेदना ब) प्रेम क) सख्य ड) दास्य

31) मीरा के काव्य की भाषा .....है।

अ) अवधी ब) ब्रज क) संस्कृत ड) मारवाडी

32) गुरू नानक के .....संस्थापक थे।

अ) शीख धर्म ब) मुस्लिम धर्म क) बौद्ध धर्म ड) हिंदू धर्म

33) गुरूनानक की माता का नाम .....था।

अ) तृप्ता ब) मुक्ता क) सुलक्षणी ड) पूर्णिमा

34) गुरूनानक की पिता का नाम .....था।

अ) मूलचंद ब) कालूचंद क) मनीचंद ड) प्रेमचंद

35) गुरू नानक का विवाह .....से हुआ था।

अ) तृप्ता ब) मुक्ता क) सुलक्षणी ड) पूर्णिमा

प्रश्न 1 आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

1) बाबर ने भारत पर आक्रमण किया तो किस वंश की शक्ति क्षीण हो चुकी थी?

2) कौन - सा पहला मुस्लिम शासक था, जो जनता में लोकप्रिय हुआ?

3) बरार में कौन-से मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी?

4) बीजापुर में कौन-से मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी?

5) अहमदनगर में कौन - से मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी?

6) गोलकुण्ड़ा में कौन - से मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी?

7) बीदर में कौन - से मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी?

8) उस समय में भारत में कौन-से दो प्रमुख शासक थे?

9) नामदेव के मराठी के पद किसमें संकलित हैं?

10) ''रस्सी की करधनी और चिथड़ो की लँगोटी पहने नामदेव चंद्रभागा के रेतीले मैदान पर कीर्तन करते है।'' नामदेव के बारे में यह कथन किसका हैं?

11) नामदेव का जन्म कहाँ और कब हुआ?

12) नामदेव ने कहाँ पर समाधि ली थी?

13) 'श्री नामदेव महाराज यांच्या अभंगांची गाथा' इस ग्रंथ का संपादन किसने किया हैं?

14) 'गुरूग्रंथ साहब' इस ग्रंथ का संपादन किसे किया था?

15) संत रविदास की पत्नी का नाम क्या है?

16) रविदास के काव्य का संग्रह 'रवि दर्शन' नाम से किसने किया है?

17) 'रविदास वचन सुधा' इस काव्य का संकलन किसने किया?

18) मीराबाई का बचपन कहाँ बीता था?

19) राव दूदाजी कैसे भक्त थे?

20) मीराँ का व्यक्तित्व कैसा रहा हैं।

21) गुजरात और राजस्थान में प्रचलित कौटुंबिक रीति-रिवाजों को क्या कहते है।

22) गुरूनानक का जन्म कब और कहाँ हुआ?

23) श्रीचंद आगे चलकर किस संप्रदाय के प्रवर्तक हुए?

24) गुरूनानक के पुत्रों के नाम क्या हैं?

25) गुरूनानक जी का देहावसन कहाँ पे हुआ?

26) 'जपुजी' इस रचना को सिक्खी शब्दावली में क्या कहा गया है?

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. सगुण - परमात्मा का वह रूप जिसमें सत्व, रज और तीनों हो।

2. निर्गण - जो गुण रहित होता है, उसे निर्गण कहते है।

3. सीकरी - तत्कालीन शासन की राजधानी।

4. दोआब - किसी स्थान पर परस्पर मिलनेवाली दो नदियों के बीच में स्थित मैदानी भाग को दोआब कहा जाता है।

5. उमरा - इस्लामी तीर्थयात्रा है, जिसका अर्थ है एक आबादीवाले स्थान पर जाना।

6. कामिक - जिसकी कामना की जाय।

7. केयूर - बाँह पर पहनने का एक गहना।

8. बदा - भाग्य में लिखा हुआ।

9. सीद्यमान - पीडित, दुःखी।

10. वारकरी - भगवान विठ्ठल के भक्त को वारकरी कहते है।

11. ऋजु – ईमानदार और सच्चा।

12. प्रक्षिप्त – फेंका हुआ।

13. तितिक्षा –सरदी–गरमी दुःख आदि सहन करने की शक्ति।

14. सुरति, निरति .– प्रेम और वैराग्य।

15. इंगला – हठयोग में इड़ा नामक नाडी, जिससे बाईं साँस चलती है।

16. पिंगला – हठयोग में चर्चित एक नाड़ी, सूर्या नाडी।

17. अद्‌वैत – आत्मा – परमात्मा में अभिन्नता।

2.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

प्रश्न 1. अ)

1. अलाउद्‌दीन खिलजी	2. लोदी वंश	3. बाबर	4. अकबर
5. हुमायूँ	6. अकबर	7. अकबर	8. चंपतराय
9. शिवाजी	10. दो	11. गुरूग्रंथ साहब	12. वारकरी
13. विठ्‌ठल	14. दर्जी	15. गोणाई	16. दामाशेटी
17. राजाई	18. आऊबाई	19. लिंबाई	20. विसोबा खेचर
21. चामर	22. संतोखदास	23. कलशीदेवी	24. कुकडी
25. रत्नसिंह	26. कुसुम कुमारी	27. कृष्ण	28. मीरा की पदावली
29. माधुर्य भाव	30. वेदना	31. ब्रज	32. शीख धर्म
33. तृप्ता	34. कालूचंद	35. सुलक्षणी	

प्रश्न 1. आ)

1. बाबर ने भारत पर आक्रमण किया तो लोधी वंश की शक्ति क्षीण हो चुकी थी।
2. अलाउद्‌दीन हुसेन शाह पहला मुस्लिम शासक था जो जनता में लोकप्रिय हुआ।
3. बरार में इमादशाही मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी।
4. बीजापुर में आदिलशाही मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी।
5. अहमदनगर निजामशाही मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी।
6. गोलकुण्ड़ा में कुतुबशाही मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी।
7. बीदर में वरीदशाही मुस्लिम राज्य की स्थापना हुई थी।
8. उस समय भारत मे राणा सांगा और कृष्णदेव राय ये दो प्रमुख शासक थे।

9. नामदेव के मराठी के पद 'नामदेवाची गाथा' तथा अन्य मराठी संग्रहों में संकलित है।
10. ''रस्सी की करधनी और चिथड़ो की लँगोटी पहने नामदेव चंद्रभागा के रेतीले मैदान पर कीर्तन करते है।'' नामदेव के बारे में यह कथन जनाबाई का हैं।
11. नामदेव का जन्म महाराष्ट्र के परभणी जिले में नरसीबामणी गाँव में शके 1192 अर्थात 1270 ई. में हुआ था।
12. नामदेव ने पंढ़रपुर के विठ्ठल मंदिर के महाद्वार पर समाधि ले ली थी।
13. 'श्री नामदेव महाराज यांच्या अभंगांची गाथा' इस ग्रंथ का संपादन श्री ष्यंबक हरी आपटे ने किया हैं।
14. 'गुरूग्रंथ साहब' इस ग्रंथ का संपादन गुरू अर्जुनदेव किया था।
15. संत रविदास की पत्नी का नाम लोनादेवी हैं।
16. रविदास के काव्य का संग्रह 'रवि दर्शन' नाम से आ. पृथ्वीसिंह आजाद ने किया है।
17. रविदास वचन सुधा इस काव्य का संकलन डॉ सरनादास भनोत ने किया।
18. मीराबाई का बचपन रावदूदा के यहाँ मेड़ते मे बीता था।
19. राव दूदाजी परम वैष्णव भक्त थे।
20. मीराँ का व्यक्तित्व कृष्णमय रहा है।
21. गुजरात और राजस्थान में प्रचलित कौटुंबिक रीति-रिवाजों को 'माहेरा' कहते है।
22. गुरूनानक का जन्म संवत् 1516 कार्तिक पूर्णिमा के दिन तिलवंड़ी ग्राम-जिला लाहौर में हुआ।
23. श्रीचंद आगे चलकर उदासी संप्रदाय के प्रवर्तक हुए।
24. गुरूनानक के पुत्रों के नाम श्रीचंद और लक्ष्मीचंद हैं।
25. गुरूनानक जी का देहावसन करतारपुर में हुआ।
26. 'जपुजी' इस रचना को सिक्खी शब्दावली में 'अमृतवेला' कहा गया है।

2.7 सारांश :

- भक्ति युग में राजनीतिक परिस्थितियाँ विषम थी, किंतु राजपूत, मराठे तथा अन्य हिंदू शासक विदेशियों का प्रतिरोध करते रहें और स्वतंत्रता की प्रवृत्ति सदैव जागृत रहीं।
- भक्तिकालीन सामाजिक परिस्थिति में तत्कालीन लोगों के जीवन और संस्कृति का परिचय मिलता है।
- नामदेव मध्ययुगीन जागरण के प्रणेता है। उन्होंने महाराष्ट्र के साथ उत्तर भारत में अपने क्रांतिकारी विचारों से युगांतर उपस्थित किया वहीं हिंदी साहित्य की दृष्टि से खड़ीबोली के पद्य को विभिन्न राग-रागिनियों की पद्यशैली प्रदान की।

- रैदास ने अपनी वाणी के माध्यम से मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा आदि बाहय विधानों का विरोध कर आंतरिक साधना पर बल दिया है।
- मीरा के काव्य में निर्गुण, निराकार से रिश्ता बनाकर अलौकिक प्रेम का वर्णन है, जहाँ प्रियतम ईश्वर है।
- एक महान आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षण के अतिरिक्त गुरू नानक एक महान कवि है, जिन्होंने लोक-परंपरा की भाषा को पूरे अधिकार से, कारगर तरीके से प्रयुक्त किया और भारत के अनेक भागों में, व्यापक पैमाने पर आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण किया।

2.8 स्वाध्याय :

1) भक्तिकालीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का परिचय दीजिए।
2) संत नामदेव का सामान्य परिचय दीजिए।
3) संत रविदास का सामान्य परिचय दीजिए।
4) संत मीराबाई का सामान्य परिचय दीजिए।
5) गुरूनानक का सामान्य परिचय दीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

- भक्तिकालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का विस्तार से अध्ययन कीजिए।
- संत नामदेव, मीराबाई, गुरूनानक और रविदास के विचारों को विविध उपक्रमों के माध्यम से समाज तक पहुँचाने का प्रयास कीजिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ. शिवकुमार शर्मा
2) हिंदी साहित्य का इतिहास – आ. रामचंद्र शुक्ल
3) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ. रामकुमार वर्मा
4) हिंदी साहित्य का मध्यकाल – डॉ. ईश्वर दत्त शील
5) हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ – डॉ. जयकिशन प्रसाद
6) गुरू नानक – गुरबचन सिंह तालिब
7) संत नामदेव – ल. ग. जोग

●●●

इकाई 3

निर्गुण भक्तिधारा

निर्गुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताएँ एवं प्रमुख कवि

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय–विवेचन

3.3.1 निर्गुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताएँ ।

3.3.2 कबीर : व्यक्तित्व और कृतित्व ।

3.3.3 जायसी : व्यक्तित्व और कृतित्व ।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न ।

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ ।

3.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर ।

3.7 सारांश

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

1. भक्तिकालीन विभिन्न धाराओं से परिचित होंगे ।

2. ज्ञानाश्रयी शाखा से परिचित होंगे ।

3. प्रेमाश्रयी शाखा से परिचित होंगे ।

4. निर्गुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताओं को समझा सकेंगे ।

5. संत कबीर : व्यक्तित्व तथा साहित्य से परिचित होंगे ।

6. जायसी : व्यक्तित्व तथा साहित्य के परिचित होंगे ।

3.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास के संवत 1375 से संवत् 1700 तक के कालखंड को सामान्यतः भक्तिकाल कहा जाता है । इस कालखंड में सगुण एवं निर्गुण भक्तिधारा का निरंतर विकास हुआ । भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में निर्गुण भक्तिधारा को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । निर्गुण के अंतर्गत **संत** तथा **सूफियों** का काव्य सम्मिलित है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने नामदेव एवं कबीर द्वारा प्रवर्तित भक्तिधारा को '**निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा**' की संज्ञा से अभिहित किया है । डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्ति साहित्य' तथा रामकुमार वर्मा ने 'संत काव्य परंपरा' का नाम दिया है । इस धारा के कवियों ने ज्ञान तत्त्व को सर्वाधिक महत्त्व दिया है । इसमें ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप का वर्णन किया है । निर्गुण भक्तिधारा के प्रमुख दो अंग हैं –

निर्गुण भक्तिधारा

(अ) ज्ञानाश्रयी शाखा	(ब) प्रेमाश्रयी शाखा
(संत कबीर)	(जायसी)

(अ) ज्ञानाश्रयी शाखा :

इस शाखा के अंतर्गत संत काव्य परंपरा सम्मिलित है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्तिसाहित्य' कहा है । ईश्वर को निर्गुण निराकार रूप में स्वीकार करनेवाले ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों के लिए संत शब्द का प्रयोग किया जाता है । संत कबीर निर्गुण काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं । संत नामदेव तथा संत कबीर के अलावा रैदास, धर्मादास, धन्ना, सिंगा, दलूदास, जयदेव, गुरूनानक, मलकूदास, दादूदयाल, जनगोपाल, मोहनदास, दरियासाहब, सुंदरसाहब आदि अनेक नाम संत काव्य परंपरा के अंतर्गत लिए जाते हैं ।

(ब) प्रेमाश्रयी शाखा :

हिंदी साहित्य के अंतर्गत जायसी आदि सूफी परंपरा के कवियों द्वारा प्रवर्तित भक्तिधारा को '**प्रेमाश्रयी**' शाखा कहा जाता है । हिंदी साहित्य में इसे सूफी मत अथवा सूफी काव्य के नाम से भी जाना जाता

है । यह धारा मूलतः ईरान की है । मुसलमान शासन काल में ईरान के कुछ सूफी कवि भारत आए । ईरान में इस्लाम धर्म के एक अंग के रूप में सूफी मत का उदय एवं विकास हुआ था । ये कवि हृदय से उदार एवं कोमल हृदय के होते हैं। आचार्य शुक्ल ने 'मृगावती' के रचयिता 'कुतबन' को सूफी काव्य का प्रवर्तक माना है । हिंदी साहित्य में इसका विकास प्रेमकाव्य के रूप में हुआ है । डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' को सूफी काव्य का प्रथम ग्रंथ माना है । सूफी कवियों की केंद्रीय संवेदना 'प्रेम' है इसे डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने 'रोमांसिक कथाकाव्य परंपरा' कहा है ।

सूफी मत के अनेक संप्रदाय हैं। उनमें भिन्नता है, कुछ बातों में समानता भी है । सूफी कवियों ने ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप को स्वीकार किया है । वे ईश्वर प्राप्ति का एक मार्ग प्रेम को मानते हैं। सूफी कवियों ने ईश्वर की कल्पना स्त्री के रूप में और परमात्मा की कल्पना पुरुष के रूप में की है। गत को सत्य माना है। यशप्राप्ति के लिए गुरू को महत्त्व दिया है । 'पद्मावत' के रचियता मलिक मुहम्मद जायसी सूफी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि है । 'पद्मावत' सूफी काव्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है । इनके अतिरिक्त कुतबन, मौलाना दाऊद, मंझन, उसमान, नुरमुमहम्मद आदि प्रमुख सूफी कवियों ने सूफी काव्यधारा को आगे बढाया है।

3.3 विषय–विवेचन :

3.3.1 निर्गुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताएँ –

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में निर्गुणधारा के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखाएँ आती हैं । संत कबीर तथा उनके अनुयायी कवियों के साहित्य को ज्ञानाश्रयी शाखा कहा जाता है । जायसी तथा अन्य सूफी कवियों ने जो साहित्य लिखा उसे प्रेमाश्रयी शाखा कहा जाता है । इन दोनों शाखा के कवियों ने बहुदेववाद तथा अवतारवाद का विरोध किया है । संत कवियों ने निर्गुण ईश्वर के लिए 'राम' शब्द का प्रयोग किया है। निर्गुण काव्यधारा की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1) निर्गुण ईश्वर में विश्वास : निर्गुण भक्तिधारा के सभी संत कवि निर्गुण निराकार ईश्वर में विश्वास रखते हैं । इन्होंने ईश्वर के सगुण रूप का खंडन किया है । कबीर का कहना है –

राम नाम तिहुं लोक बखाना ।
रामना का मरम है आना।।

सभी वर्णों और समूची जातियों के लिए निर्गुण एकमात्र ज्ञान गम्य है। वह अविगत है, वेद, पुराण वहाँ तक पहुँच नहीं सकती ।

निर्गुण राम जपहु रे भाई,
अविगत की गति लिखी न जाई ।''

निर्गुण रूपी भगवान सृष्टि के कन-कन में विद्यमान है । जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है और वह व्यर्थ ही उसे वन में ढूँढने के लिए भटकता फिरता है । उसी प्रकार निर्गुण रूपी राम सृष्टि के कन-कन में समाया है, उसे बाहर ढूँढने की आवश्यकता नहीं है ।

2. अवतारवाद तथा बहुदेववाद का विरोध :

निर्गुण संत कवियों ने अवतारवाद तथा बहुदेववाद का कडा विरोध किया है । इसका सबसे बडा कारण यह था कि शंकर के अद्वैतवाद का प्रभाव लोगों पर शेष था और राजनीतिक आवश्यकता भी थी। तत्कालीन मुस्लिम शासक एकेश्वरवादी थे । हिंदू मुस्लिम दोनों के जातीय संघर्ष को खत्म करके उनमें एकता स्थापित करने का प्रयास निर्गुण संत कवियों ने किया । इन्होंने बहुदेववाद का का विरोध किया ।

''यह सिर नवे न राम कूँ, नाही गिरियों टूट ।
आन देन नहिं परिसियों, यह तन जायो छूट ।।''

संतों का विश्वास है कि अवतार जन्म-मरण के बंधन में ग्रस्त है । वे भी परम ब्रह्म की भक्ति के बिना मुक्ति नहीं कर सकते । सभी संत कवियों ने ब्रह्मा, विष्णू, महेश की निंदा की है । उन्हें मायाग्रस्त कहा है । उनका भी निर्माता परम ब्रह्म है -

''अक्षय पुरुष इक पेड़ है, निरंजन बाकी डार ।
त्रिदेवा शाखा भये पात भया संसार ।।'' - कबीर

3. गुरू का महत्त्व :

निर्गुण कवि गुरु को भगवान से भी अधिक महत्त्व देते हैं । इनका मानना है कि राम की कृपा भी तभी होती है, जब गुरू की कृपा होती है । निर्गुण निराकार रूपी ब्रह्मा की प्राप्ति गुरू द्वारा दिखलाए मार्ग से ही प्राप्त होती है । गुरु के संदर्भ में संत कबीर कहते हैं -

''गुरु गोविंद दोऊ खडे काके लागू पाई ।
बलिहारी गुरु अपने जिन गोविंद दियो बताई ।।

अतः निर्गुण संत कवि सगुण भक्त कवियों की अपेक्षा गुरु को अधिक महत्त्व देते हैं ।

4. जाति-पाति का विरोध :

निर्गुण संत कवि जाति-पाँति और वर्ग-भेद की कडी आलोचना करते हैं । इनके अनुसार सभी मनुष्य प्रकृति से निर्मित प्राणी मात्र है । परंतु इसी मनुष्य ने अपने आप की जाति-पाँति, विभिन्न धर्मों में बाँट लिया । आपस में ऊँच-नीचता के नाम पर संघर्ष करते रहें । निर्गुण कवि इस जाति, धर्मों के संघर्ष को मिटाकर एक सारभौम मानव-धर्म की प्रतिष्ठापना करना चाहते थे । उनके अनुसार निर्गुण रूपी राम पर सभी का समान अधिकार है ।

जाति-पाँति पूछे नहिं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई ।।

सभी निर्गुण संत कवि निम्न जाति से संबंध रखते थे । संत कबीर जुलाहे थे, रैदास चमार थे । इसके अलावा भक्ति आंदोलन ने भी जाति भेद एवं वर्ण भेद को तुच्छ ठहराया था । इसके साथ ही संतों को हिंदू-मुसलमानों में एकता स्थापित करनी थी । इसलिए निर्गुण संत कवियों की वाणी में अत्यंत प्रखरता और कटुता दिखाई देती है । संत कबीर इन दोनों का खंडन करते हुए कहते हैं,

''अरे इन दोउन राह न पाई ।
हिन्दुअन की हिन्दुआई देखी, तुकरन की तुरकाई ।।

''तू ब्राह्मण हों काशी का जुलाहा चीन्ह न मोर गियाना ।
तू जो बामन बामनी जाया और राह क्यों नहीं आया ।।''

5. रूढियों और सामाजिक आडंबरों का विरोध :

सभी संत निर्गण कवियों ने सामाजिक आडंबरों का कड़ा विरोध किया है । कबीर ने रूढियों, मिथ्या आडंबरों तथा अंधविश्वासों की कटु आलोचना की है । ये कवि सिद्ध एवं नाथ पंथियों से प्रभावित थे । इन्होंने मूर्ति पूजा, धर्म के नाम पर हो रही हिंसा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज, आदि विविध बाह्याडंबरों जाति-पाति आदि बातों का डटकर विरोध किया है । इन कवियों ने वैष्णव संप्रदाय की छोडकर शेष सभी संप्रदायों की कटु आलोचना की है । भगवान के नाम पर निर्दोष प्राणियो की बलि चढ़ानेवाले अंधविश्वासी प्रवृत्ति के लोगों पर प्रहार करते हैं,

''बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल ।
जे जन बकरी खात है, तिन को कौन हवाल ।।''

''कांकर पत्थर जोरि के, मज्जिद लय बनाय ।
ता चढि-मुल्ला बांग दे, बहिरा हुआ खुदाय ।।''

यहाँ संत कवियों ने मुसलमानों के मस्जिद और मुल्ला पर प्रहार किया है । इसके आगे जाकर भगवान के नाम पर पत्थरों की पूजा करनेवाले हिंदू समुदाय का भी समाचार लिया है,

''पत्थर पूजै हरि मिलै तो मैं पूँजू पहार ।
ताते चक्की भली पीस खाय संसार ।।''

संत कबीर ने निर्भिक और नीडरता से हिंदू और मुसलमानों में फैली विषमता सामाजिक आडंबरों का कड़ा विरोध किया है । परिणाम के चलते तत्कालीन मुसलमान शासक सिकंदर लोधी ने भी कबीर को अनेक यातनाएँ दी थी। कबीर के इसी स्वभाव के कारण उन्हें हिंदू और मुसलमानों का सामना करना पडा । हिंदू पंडित और मुसलमानों के मौलवी कबीर को अपना शत्रु मानते थे ।

6. रहस्यवाद :

संत संप्रदाय में रहस्यवाद की प्रवृत्ति विठ्ठल संप्रदाय से आयी है । निर्गुण संत काव्य में अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है, जिसे रहस्यवाद कहा गया है । साधना के क्षेत्र में जो ब्रह्म है, साहित्य के क्षेत्र में वह रहस्यवाद है । संतों का रहस्यवाद एक ओर तो शंकर के अद्वैतवाद से प्रभावित है,

''जल में कुंभ-कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कहो गयानी ।।'

कहीं पर इनके रहस्यवाद पर योग का भी स्पष्ट प्रभाव है, इंगला, पिंगला और सहस्रदल कमल आदि प्रतिकों का प्रयोग है । इसमें विशुद्ध भावात्मक रहस्यवाद मिलता है । इसमें प्रणयानुभूति की निश्चय अभिव्यक्ति हुई है,

''आह न सकी तुझ पै, सकू न तुझ बलाइ ।
जियरा यौं ही लेहुगे, विरह तपाइ तपाशा ।।''

अतः रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा के प्रेम संबंधों का वर्णन है । निर्गुण भक्ति में जब माधुर्य भाव का समावेश होता है, तब रहस्यवाद का उदय होता है । साधना के क्षेत्र में जो ब्रह्म है, साहित्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है । निर्गुण काव्य में साधनात्मक, भावात्मक, रहस्यवाद व्यक्त हुआ है । प्रेमाश्रयी शाखा के सूफी काव्यधारा में साधनात्मक रहस्यवाद का चित्रण हुआ है।

7. भजन तथा नामस्मरण :

निर्गुण संत कवि कहते हैं, निर्गुण रूपी राम का नामस्मरण मन ही मन होना चाहिए वह प्रकट नहीं होना चाहिए। इन निर्गुण संत कवियों ने ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रेम और नामस्मरण को परमआवश्यक माना है । कबीर कहते हैं पोथी पढ़ने से कोई पंडित नहीं होता ढ़ाई अक्षर प्रेम के जो जानता है वही सही अर्थों में पंडित कहलाता है । वेद-शास्त्र आदि का ज्ञान निरर्थक है,

''पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोइ ।
ढाई आखर प्रेम के, पढे सो पंडित होई ।।''

8. विरह वर्णन :

निर्गुण संत काव्य में विरह वर्णन का सुंदर चित्रण हुआ है । इसमें श्रृंगार तथा शांत रस का अधिक चित्रण हुआ है । इसमें श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्ष का मिलाप है । संयोग और वियोग पक्ष का अत्यंत कलात्मक वर्णन हुआ है । उपदेशात्मक उक्तियों में शांत रस का चित्रण हुआ है । उपदेशों में कहीं-कहीं कठोर शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, परंतु इसके पीछे लोकसंग्रह की भावना निहित है। निर्गुण काव्य में भी सूर जैसा रस और मीरा जैसी विरह की तीव्रता पायी जाती है,

''विरहिन ऊभी पंथ सिर पंथी बूझै थाइ ।
एक शब्द कहि पीव का कबरे मिलेंगे आइ ।।''

''आइ न सकी तुझ पै, सकूं न तुझ बुलाई ।
जियरा यों ही लेहुगे विरह तपाइ-तपाई ।''

संयोग पक्ष के अंतर्गत रूपाकर्षण-जन्मानुराग, प्रिय मिलनातुरता, हर्षोल्लास, प्रथम समागम-भीता, नवोढा की लज्जा, रस रंग में एकात्कता, स्वाधीनपतिका का सहज दर्प, मिलनोत्कंठा, प्रिय-प्रतिक्षा, झूला-झूलना आदि का यथार्थ वर्णन हुआ है । निर्गुण काव्य के वियोग पक्ष में प्रिय को विदेश जाने से रोकना, विरह की दशाओं का वर्णन, पंच्छियों के माध्यम से प्रिय तक संदेश पहुँचाना आदि बातों का चित्रण मिलता है । निर्गुण संतों का श्रृंगार रस और विरह वर्णन लौकिक हो अथवा अलौकिक वह घर-गृहस्थियों के लिए आनंददायक है । संत कवियों का श्रृंगार एवं विरह, व्यक्तित्व धर्म और दर्शन के समान कुछ विलक्षण तथा निराला है । इसमें वासना नहीं है ।

अतः काव्य में संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष अधिक प्रभावशाली बन पडा है । निर्गुण संत कवियों ने प्रेम में विरह को अधिक महत्त्व दिया है । विरह की अनुभूति के बिन ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती । प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख हस्ताक्षर जायसी ने 'पद्मावत' में विरह का मार्मिक वर्णन किया है ।

9) लोकसंग्रह की भावना :

निर्गुण काव्यधारा के अधिकत्तर कवि पारिवारिक जीवन जीनेवाले थे । इसी कारण उनकी काव्य एवं वाणी में जीवनगत अनुभव की सर्वांगीणता दिखाई देती है । निर्गुण संतों के काव्य में वैयक्तिता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक दिखाई देती है । संतों ने समाज को दृष्टि में रखकर आत्म-शुद्धि को अधिक महत्त्व दिया है । नाथ संप्रदाय की साधना व्यक्तिगत और पद्धति शास्त्रीय थी वहीं दूसरी ओर निर्गुण संत कवियों की साधना सामाजिक और पद्धति स्वतंत्र थी । निर्गुण कवि एक ओर भक्ति आंदोलन के उन्नायक है, वहीं दूसरी ओर एक युगद्रष्टा समाजसुधारक भी है । आलोचकों ने कबीर को अपने युग का गांधी कहा है । निर्गुण संत कवियों ने समाज और राजनीति के प्रति आँखें मूँद नहीं रखे थे । निर्गुण संत काव्य में उस समय का समाज प्रतिबिंबित हुआ है । कर्मण्यता इनकी वानी का दूधारी तलवार है ।

10) नारी के प्रति दृष्टिकोन :

निर्गुण कवियों ने नारी को माया का प्रतिक माना है । उनके अनुसार कनक और कामिनी ये दोनों अत्यंत घटियाँ हैं । संत कबीर नारी के संदर्भ में कहते हैं,

''नारी की झाँई परत अंधा होत भुजंग ।
कबिरा तिनकी कौन गति नित नारी के संग ।।''

कबीर ने नारी के कामिनी रूप को माया माना है और इसे निंदनीय कहा है । सभी संत, निर्गुण

कवि जीवन में सत्य पक्ष के ग्रहण के पक्षपाती थे और असत्य से उन्हें घृणा थी । वे दुर्जन और स्वार्थी लोगों की कडी निंदा करते थे ।

11) माया और शैतान :

निर्गुण कवियों ने अज्ञान अविद्या, मोह आदि को माया कहा है । वे हर किसी को माया से सावधान रहने की सलाह देते हैं, क्योंकि निर्गुण रूपी ईश्वर की प्राप्ति में माया संकट बनकर खडी हो जाती है। माया महाठगिनी है । वह अपनी मधुर वाणी से सभी को जाल में फँसाती है । सूफी कवियों ने अपने काव्य में शैतान का वर्णन किया है । उनके अनुसार साधक के साधना मार्ग में बाधा डालनेवाला शैतान है।

12) हिंदू और मुसलमानों में एकता :

संत कवि समाज सुधारक थे । इन कवियों ने काव्य के माध्यम से हिंदू तथा मुसलमानों में एकता स्थापित करने का सफल प्रयास किया है । इन्होने हिंदू और मुसलमानों मे फैली विषमता, जाति-पाति, ऊँच-नीचता आदि बातों का खंडन कर हिंदूओं के पंडित और मुसलमानों के मौलवी पर कडा प्रहार किया है । एक ही ईश्वर का संदेश दिया है । दोनों धर्मों में एकता स्थापित करने का प्रयास किया है । सूफी कवि मूलतः स्वभाव से कोमल ऱ्हदय के थे । अतः एकता स्थापित करने में उन्हें अधिक सफलता मिली है।

13) भाषा एवं शैली :

निर्गुण काव्य में मुख्यतः गेय मुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है। गीति-काव्य के सभी तत्त्व-भावात्मकता, संगीतात्मकता, सूक्ष्मता, वैयक्तिकता और भाषा की कोमलता इनकी वाणी में मिलते हैं । उपदेशात्मक पदों में गीति-माधुर्य के स्थान पर बौद्धिकता आ गयी है । इनके अतिरिक्त इन्होंने साखी, चौपाई की शैली का भी प्रयोग किया है । जादातर निर्गुण कवि अशिक्षित थे, उन्होंने बोलचाल की भाषा को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । वे अपने मत का प्रचार-प्रसार करने के लिए इधर-उधर भ्रमण करते रहते थे । निर्गुण संत कवियों की भाषा खिचडी या साधुक्कडी थी । इसमें अवधी, ब्रज, खडी बोली, पूर्वी हिंदी, फारसी, अरबी, राजस्थानी, पंजाबी आदी भाषाओं का मिश्रण दिखाई देता है । इनकी भाषा में बहुत से पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी मिलता है जो कि इन्होंने अपने पूर्ववर्ती संप्रदायों से लिए हैं। उदा. शून्य, अनहद, निर्गुण, सगुण, आदि । नाथ संप्रदाय के इंगला और पिंगला आदि शब्दों का भी इन्होंने प्रयोग किया है।

निर्गुण कवियों की भाषा आडंबरविरहित है । इन्होंने इसे कहीं भी अलंकारिकता से लादने का प्रयास नहीं किया है किंतु अनुभूति की तीव्रता के कारण उसमें काव्योचित सभी गुण आये हैं।

निर्गुण काव्य सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है। निर्गुण काव्य की निर्मिति जिस युग में हुई वह युग अज्ञान, अशिक्षा और अनैतिकता का युग था। इन्हीं

बातों के खिलाफ आवाज उठाने का काम संत कवियों ने किया है । संतों की उपदेशमयी वाणी ने उसमें एक दृढ़ नैतिकता की प्रतिष्ठा की । निर्गुण कवियों ने धर्म का ऐसा स्वाभाविक, निश्चल, व्यावहारिक तथा विश्वासमय रूप जन-भाषा में उपस्थित किया जो कि विश्व धर्म बन गया । वह अब भी जन-जीवन में पुनः जागरण का पावन संदेश दे रहा है ।

काव्य की दृष्टि से भी संत साहित्य ने अपनी अलग पहचान बनायी है । अपनी अनुभूतियों को सहज स्वाभाविक भाषा में अभिव्यक्त करके उन्होंने काव्य के सच्चे स्वरूप का उद्‌घाटन किया । निर्गुण कवियों के बारे में डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त लिखते हैं, ''सच्चे कवि की वाणी में अभिव्यक्ति के साधन स्वतः प्रस्फुटित हो जाते हैं, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण इन कवियों का साहित्य है । भाषा कैसी ही हो भाव चाहिए मित की उक्ति संतकाव्य पर पूर्णतः चरितार्थ होती है ।'' निर्गुण कवियों की वाणी में जो उपदेश है वे केवल दर्शन का विषय न होकर जीवन रस से ओत प्रोत है । निर्गुण संत कवियों ने साहित्य को सत्य, सौंदर्य और शिव से संपन्न किया है।

3.3.2 कबीर : व्यक्तित्व और कृतित्व :

जीवनवृत्त : मध्ययुगीन अन्य भक्त एवं संत कवियों के समान कबीर का जीवनवृत्त अंधकारमय है। उनके जन्म, मृत्यु, निवास-स्थान वंश एवं यथार्थ नाम आदि सभी बातों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कहा नहीं जा सकता । परंतु संत कबीर सिकंदर लोधी के समकालीन थे। अनेक देश विदेश के इतिहासकारों ने इतिहास ग्रंथों में इसकी पुष्टी की है । कबीरदास के साहित्य में नामदेव और जयदेव का भी उल्लेख मिलता है, इससे स्पष्ट होता है कि कबीर जयदेव और नामदेव के बाद के कवि हैं । नामदेव का समय तेरहवीं शताब्दी का अंतिम चरण माना गया है । संत पीपा ने कबीर उल्लेख किया है। अतः हम यहाँ कह सकते है कि कबीर नामदेव के बाद के और पीपा के पहले के कवि हैं । संत पीपा का जन्म सं. 1482 माना गया है । 'कबीर चरित्रबोध' में सं. 1455 वि. ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को कबीर की जन्म तिथि स्वीकार की गई है,

''चौदह सौ पचपन साल गए चद्रावार एक ठाठ ठए ।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भए।।

डॉ. हजारीप्रसाद द्‌विवेदी, डॉ. माता प्रसाद गुप्त तथा हिंदी के अधिकतर विद्‌वानों ने संवत 1455 जेष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को कबीर का जन्म माना है । यही तिथि अधिक उपयुक्त एवं तर्कसंगत है।

गुरू :

स्वामी रामानंद कबीर के गुरू थे । कबीर का कहना है ''काशी में हम प्रगट भये, रामानंद चेताये।'' कुछ विद्‌वान शेख तकी को कबीर के गुरू मानते हैं परंतु वह तर्क संगत नहीं है । कबीर ने शेख तकी के प्रति कहीं भी श्रद्‌धा प्रकट नहीं की है। अतः स्वामी रामानंद ही कबीर के गुरू थे ।

माता–पिता :

कबीर के जन्म के संबंध में अनेक किवदंतिया प्रचलित हैं । अधिकतर विद्वानों का मानना है कि कबीर का जन्म एक विधवा ब्राह्मणी की कोख से हुआ । लोकलाज वश विधवा ने नवजात शिशु को काशी के लहरतारा नामक तालाब के निकट फेंक दिया था, जिसका पालन–पोषण निःसंतान जुलाहा दम्पति नीरू और नीमा ने किया । इस बात का समर्थन कबीर ने अपने आप को जुलाह कहकर किया है । कबीर के जन्म और माता–पिता क संबंध में अनेक विद्वानों के मतों को देखने के बाद स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि उनका जन्म सं. 1455 में काशी में हुआ और मृत्यु 1575 में मगहर में हुई ।

पत्नी :

कबीर गृहस्थी थे । इनकी पत्नी का नाम लोई था। डॉ. रामकुमार ने इनकी अन्य एक पत्नी मानी है जिसका नाम धनिया या रमजानिया था ।

पुत्र और पुत्री :

कमाल और कमाली कबीर के पुत्र और पुत्री थे । कबीर की कई उक्तियों से पता चलता है कि इनका पारिवारिक जीवन सुखी नहीं था । कुछ विद्वानों ने इनके निहाल और निहाली दो और पुत्र तथा पुत्री भी माने हैं ।

व्यक्तित्व :

संत कबीर उदार, निर्भीक, स्वतंत्रताप्रेमी, स्वाभिमानी, सत्यवादी, अहिंसा, सत्य और प्रेम के समर्थक जाति–पाति बाह्याडंबरों के विरोधी तथा क्रांतिकारी भावना से ओतप्रोत थे । वे मस्तमौला, लापरवाह एक फक्कड फकीर थे । उनमें विद्रोह की भावना कुट–कुट कर भरी हुई थी । उनमें अदम्य साहस एवं अखंड आत्मविश्वास था। वे प्रतिभावान विलक्षण व्यक्तित्व से संपन्न थे । अनेक दबावों के बावजूद भी वे कभी सिकंदर लोधी के सामने झुके नहीं । हिंदू और मुसलमानों के रोष ने उन्हें तनिक भी विचलित नहीं किया। वे योगियों के प्रभाव से आहत नहीं हुए और नाही सूफी उन्हें अपने संप्रदाय में मिला सके । उन्होंने हमेशा समाज विरोधी बातों का डटकर मुकाबला किया। उन्होंने अंत तक अपनी अटपटी वाणी से उत्तरी भारत का नेतृत्व किया । वे सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक व्यवस्था पर प्रहार करते रहें । कबीर के व्यक्तित्व के संदर्भ में डॉ. हजारीप्रसाद का मंतव्य दृष्टव्य है, ''वे सिर से पैर तक मस्त मौला, स्वभाव से फक्कड, आदत से अक्खड, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय थे । युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढता उनमें वर्तमान थी, इसलिए युग प्रवर्तन कर सके ।''

कृतित्व :

'बीजक' कबीर की प्रामाणिक रचना मानी गयी है । इसमें कबीर के उपदेशों का शिष्यों द्वारा

संकलन है । 'बीजक' के तीन भाग किए गए हैं – साखी, शब्द, रमैनी । कई विद्वानों ने कबीर के ग्रंथों की संख्या 57 से 61 मानी है । अनुराग सार, उग्र गीता, निर्भय ज्ञान, शब्दावली और रेखतों आदि पुस्तकों को कबीर द्वारा रचित माना गया है, परंतु इसके संबंध में प्रामाणिक रूप से कुछ कहना कठिन है ।

साहित्य–समीक्षा :

संत कबीर निराकारवादी हैं। कबीर का राम सृष्टि के कन–कन में समाया हुआ है । उसे बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है । उनका कहना है ''दिरदै सरोवर है अविनासी ।'' कबीर का राम दशरथ पुत्र राम न होकर परम ब्रह्मा का प्रतीक है । कबीर राम को पुकारने की आवश्यकता निश्चित रूप से महसूस करते हैं, इसलिए उन्हें कोई ना कोई नाम देना ही पडता है । कबीर कहते हैं,

''दशरथ सुत तिहू लोक बखाना ।
राम नाम का मरम है आना ।।

कबीर का ऐकेश्वरवाद मुस्लिम एकेश्वरवाद से बिल्कुल भिन्न है । कबीर का निर्गुण ईश्वर व्यापक है । वह समस्त संसार में समाया हुआ है । वह केवल शास्त्रों और पुराणों के अध्ययन एवं ज्ञान से नहीं जाना जाता है बल्कि प्रेमपूर्ण भक्ति से प्राप्त किया जा सकता है । कबीर की भक्ति अनन्य भाव से परिपूर्ण है। जिसमें कर्मकांड, बाह्याडंबरों आदि को बिल्कुल स्थान नहीं है । भक्ति के मार्ग मे माया कनक और कामिनी के रूप में व्यवधान डालती है, अतः कबीर ने इसकी कटु आलोचना की है । कबीर के भक्तिमार्ग में ऊँच–नीच, ब्रह्मण, शूद्र और स्पृश्यास्पृश्य आदि को कोई स्थान नहीं है।' वे कहते हैं,

''जाति पांति पूछै नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई ।

कबीर ने भक्ति और प्रेम के सहारे ब्रह्मा से तादात्म्य करना चाहा है । परमात्मा को पति और आत्मा को पत्नी रूप में कल्पना करके प्रेम का एक महान भारतीय आदर्श रूप उपस्थित किया है। कबीर ने इंद्रिय–साधना और मन साधना पर बल दिया है । कबीर हिंदू और मुसलमानों की साधना की जटिल क्रियाओं, आडंबरों, अंधविश्वासों का विरोध करते हैं । कबीर में वैष्णवों का प्रपत्तिवाद है, जैनों की अहिंसा और बौद्धो की बुद्धिवादिता है । कबीर को किसी भी प्रकार का भाषा शास्त्रीय ज्ञान नहीं था। उन्हें जो भी बात जिस संप्रदाय की अच्छी लगी उसे लिया । उन्हें एक सामान्य भक्तिमार्ग की स्थापना करनी थी और उसके लिए यही माध्यम उपयुक्त था। वे साधना क्षेत्र में महान युग–गुरू और साहित्यिक क्षेत्र में युगद्रष्टा है। संप्रदाय चाहे जो भी उसकी अनुमति की उसे कोई आवश्यकता नहीं थी ।

रहस्यवाद :

कबीर हिंदी साहित्य के आदि रहस्यवादी कवि हैं । इस क्षेत्र में उनका अत्यंत उच्च स्थान है । हिंदी आलोचकों ने रहस्यवाद को दो भागों में विभाजित किया है, (क) भावात्मक रहस्यवाद (ख) साधनात्मक रहस्यवाद। कबीर में रहस्यवाद के इन दोनों रूपों का दर्शन होता है कबीर के भावात्मक रहस्यवाद को अनेक अवस्थाओं में विभक्त कर दिया गया है ।

प्रथमावस्था में परमात्मा की आत्मा दिव्य ज्योति के दर्शन से आकर्षित हो जाती है । कबीर अपने प्रियतम के अलौकिक सौंदर्य पर विमुग्ध है। उनके लिए ईश्वर गूँगे के गुड़ के समान है । वे कहते हैं,

''कहत कबीर पुकार के अद्‌भुत कहिये ताहि ।''

द्‌वितीय अवस्था में परमात्मा से मिलने की आतुरता प्रकट की जाती है । इस अवस्था में विरह-मिलन, आशा-निराशा, अभिलाषा, वेदना का अत्यंत सजीव वर्णन हुआ है । कबीर ने मिलन की आतुरता का जिस कलात्मकता और विरह वेदना का जिस मार्मिकता से वर्णन किया है, वह हिंदी साहित्य अद्‌वितीय है। कबीर कहते हैं,

''आँखडिया झाँई पड़ी, पंथ निहारि-निहारि ।
जीभदियाँ छाला पड्या राम पुकरि-पुकारि ।।

''सुखिया सब संसार है खावै और सोवै
दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रोवै ।।

तृतीय अवस्था आत्मा और परमात्मा के ऐक्य की है । इस संबंध में कबीर का वर्णन अत्यंत सजीव एवं ऱ्हदयस्पर्शी बन पडा है।

''लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल ।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ।।''

कबीर के प्रितम मिलन की आतुरता संसार के किसी भी प्रेम व्यापार से अधिक तीखी है । रात्रि की समाप्ति के पश्चात चकवी के लिए चकवे से मिल सकना संभव है, परंतु कबीर के लिए दिन-रैन दोनों एक समान है,

''चकवि बिछुरी रैन की आई मिली परभाति।
जो जन बिछुरे राम से ते दिन मिलै न राति ।।''

कबीर में गंभीर रहस्यमय अनुभूतियों, विरह-व्याकुलता, आत्म-समर्पण की उत्कंठा, प्रेमपूर्ण भक्ति, आंतरिक प्रेम की निष्ठा, परमात्मा मिलन की उत्कट अभिलाषा आदि बाते सम्मिलित हैं ।''

कबीर में साधनात्मक रहस्यवाद भी देखा जाता है इनके साहित्य में इंगला, पिंगला, सुषुम्ना, षटदल, त्रिकुटी, सूर्य, चंद्र आदि हठयोग के पारिभाषिक शब्द मिलते हैं ।

कबीर के रहस्यवाद पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव था ।

''जल मे कुंभ कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तत कहौ गयानी ।।''

शंकराचार्य के समान कबीर ने भी आत्मा और परमात्मा के मिलन में माया को अवरोधक तत्त्व माना है । कहीं-कहीं शंकर के समान संसार को मिथ्या भी माना है । कबीर भावना की अनुभूति से युक्त उत्कृष्ट रहस्यवादी कवि हैं।

सामाजिक पक्ष

संत कबीर भक्त, कवि, सुधारक और युगद्रष्टा भी है । उन्होंने तमाम सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, रूढियों, सांप्रदायिक कट्टरताओं, कर्मकांडों, आडंबरों आदि पर प्रहार किया है । उन्होंने हिंदू-मुसलमानों के धार्मिक और सामाजिक बाह्याचारों का खंडन किया है । एक और हिंदुओं की मूर्तिपूजा, उपवास, नाम, जाप, तीर्थयात्रा आदि बातों पर प्रहार किया है । वहीं दूसरी ओर मुसलमानों के नमाज, रोजा, हज आदि बातों का भी कडा विरोध किया है । संत कबीर के कालखंड में हिंदू और मुस्लिम जातियों में परस्पर वैमनस्य चरम सीमा पर पहुँच गया था। दक्षिण के अलवार भक्तों का भक्ति का आंदोलन रामानंद के नेतृत्व में उत्तर भारत में पहुँच चुका था। इस आंदोलन में ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नहीं था । भक्ति में सभी जाति धर्मों के लोगों को समान अधिकार था । कबीर ने रामानंद को अपना गुरू मानकर इस मत का अनुसरण किया । हिंदुओं में फैली अंधविश्वास पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं,

''पत्थर पुजै हरि मिलै सौ मैं पूँजू पहार ।
तातै चक्की भलि पीस खाये संसार ।''

कबीर मंदिर और तीर्थस्थानों को निरर्थक बताते हैं । वे मस्जिद और हज्ज तथा नमाज की निरर्थकता सिद्ध करते हैं ।

कबीर के समय देश में धर्म की और एक धारा प्रवाहित हो रही थी, वह थी सूफी साधना की धारा । सूफी लोग मुसलमान उल्माओं की तरह कट्टर और संकीर्ण मतवादी न थे और न इन्हे मुस्लिम धर्म के कर्मकांड पर विश्वास था । उनसे परिचित कबीर ने जनता के लिए एक सामान्य मार्ग का निर्देश किया । कबीर के अनुसार भक्ति में ज्ञान महत्त्वपूर्ण है । पोथी पढ़ने से कोई पंडित नहीं होता । ढाई अक्षर प्रेम के जो जानता है वही सही अर्थों में पंडित होता है -

''पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोई ।
ढाई आखर प्रेम के, पढै सो पंडित होई ।।

कबीर ने जातिगत, वंशगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत और शास्त्रगत रूढियों और परंपरा के मायाजाल को बुरी तरह से छिन्न-भिन्न किया है । एक ओर वे पंडितों को खरी-खोटी सुनाते हैं तो वहीं दूसरी ओर मुल्ला की कटु आलोचना करते हैं । एक ओर मंदिर तथा तीर्थस्थानों को निरर्थक बताते हैं तो दूसरी और मस्जिद हज्ज-नमाज आदि पर प्रहार करते हैं । वे कहते हैं,

''अरे इन दाउन राह न पाई'
हिंन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई ।।''

वर्णाश्रम व्यवस्था पर व्यंग्य प्रहार करते हुए कबीर कहते हैं, ''तुम किस प्रकार ब्राह्मन हो और हम किस प्रकार शूद्र, हम किस प्रकार घृणित रक्त है और तुम किस प्रकार पवित्र दूध ।'' बनारस के ठग संतों का भंडा फोडने में भी कबीर हिचकिचाते नहीं हैं, ''साढ़े तीन गज की धोती पहने हुए, तिहरे तागे लपेटे हुए, गले जयमाला डाले हुए और हाथ में माला लिए हुए इन अभागों को हरि का संत नहीं कहना चाहिए ये लोग तो बनारस के ठग हैं । राज्य की न्याय व्यवस्था पर प्रहार करते हुए कबीर कहते हैं, ''काजी तुमसे ठीक तरह बोलते नहीं बना, हम तो दीन बेचारे ईश्वर के सेवक हैं, और तुम्हारे मन को राजसी बाते ही भाती है । लेकिन इतना समझ लो कि ईश्वर, धर्म के स्वामी ने कभी अत्याचार करने की अज्ञा नहीं दी ।'' कबीर ने युगानुरूप मानवीय आदर्शों की स्थापना की। कबीर का जीवन और काव्य भारत की सामंती व्यवस्था की रूढ़ियों, पाखंडों और मिथ्याचार के प्रति लडाई है । कबीर ने अनेक वर्षों से चली आर रही संकुचित वृत्ति पर प्रहार करते हुए प्रत्येक व्यक्ति का उदार बना दिया है ।

कलापक्ष :

कबीर अशिक्षित थे । उनकी वाणी को अनुयायों (शिष्यों) ने पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है । वे काव्यशास्त्र, छंदशास्त्र, भाषाशास्त्र आदि से बिल्कुल अंजान थे । उनके काव्य का कलापक्ष अव्यवस्थित और कमजोर है । अनुभूति की सच्चाई पर उनका काव्य खरा उतरता है । कबीर के काव्य के संदर्भ में डॉ. रामकुमार वर्मा का मत इस प्रकार है, ''उनकी काव्यानुभूति इतनी उत्कट थी कि वे सफलता से महाकवि कहे जा सकते हैं।'' उन्होंने बिना किसी लाग लपेट, आडंबर और कृत्रिमता के जन-जीवन संबंधी अनुभूतियों को सरल और सीधे ढंग से अभिव्यक्त किया है । कबीर के काव्य में यथेष्ठ सरसता, द्रवणशीलता और मार्मिकता है । जहाँ उन्होंने विरहिणी आत्मा के स्पंदन, हास और रूदन, मिलन और बिछडन के चित्र प्रस्तुत किए हैं । यहाँ पर उनके संत, साधक, कवि, भक्त, सुधारक और नेता समस्त रूप एक हो गए हैं। कबीर की सौंदर्यपूर्ण काव्य पंक्तियाँ प्रस्तुत है,

''नैनों अंदर आव तू नैंन झाँपि तोही लेऊँ ।
ना मैं देखू और को ना तोहि देखन देऊँ ।।''

''सपुने में साई मिले, सोबत लिया जगाय ।
आँख न खोलूँ डरपता मति सपना हो जाय ।''

भाषा :

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को 'वाणी के डिक्टेटर' कहा है । कबीर के भाषा के संदर्भ में लिखते हैं, ''भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था । वे वाणी के डिक्टेटर थे । जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया, बन गया तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर । भाषा कुछ लाचार सी कबीर के सामने नजर आती है ।'' कबीर स्वभाव से घुम्मक्कड

थे । परिणामतः उनकी भाषा में ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी आदि विविध बोलियों का मिश्रण है। इसलिए इनकी भाषा को 'खिचडी या सधुक्कडी' कहा गया है ।

शैली :

कबीर अपनी शैली के स्वयं निर्माता है । उनका समस्त काव्य साहित्य मुक्तक शैली में है । उनके व्यक्तित्व का मस्त मौलापन, अक्खडपन और मोजीपन उनकी शैली में अवतरित हो गया है । अतः कबीर की शैली मुक्तक शैली है । इस शैली में अभिव्यक्ति के सभी गुण विद्यमान है । उन्होने मुक्तक शैली के माध्यम से समाज में फैली विषमता, जाति-पाँति, सामाजिक आडंबर, धर्मांधता आदि बातों पर प्रहार किया है ।

अलंकार :

कबीर अशिक्षित थे फिर भी काव्य में उन्होंने भारी मात्रा में अलंकारों का प्रयोग किया है । उन्हें भावों को सहज में चमत्कृत कर देनेवाले अलंकारों का भी ज्ञान था । उनके काव्य में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतिवस्तुपमा, यमक, अनुप्रास, मालोपमा, विरोधाभास, निदर्शना, दृष्टांत, अर्थांतरन्यास तथा पर्यायोक्ति आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग है । रूपक अलंकार का अधिक प्रयोग हुआ है । एक उदाहरण प्रस्तुत है,

''नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाई।
पलकों की चिक डारि के पिय को लिया रिझाई ।।

प्रतीक, छंद :

कबीर काव्यशास्त्र, छंदशास्त्र, भाषाशास्त्र, आदि के ज्ञानी नहीं थे परंतु उनके काव्य में प्रतीक-छंद का अनुपम संगम हुआ है । प्रतीक योजना कबीर के काव्य की सबसे बड़ी ताकत है । उन्होंने दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति प्रतिकों के माध्यम से की है । कबीर के काव्य में दोहा, सोरठा, रमैनी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है । दोहा और सोरठा उनके अधिक प्रिय छंद हैं ।

अतः हम कह सकते हैं कि संत कबीर निर्गुण भक्तिधारा के प्रमुख हस्ताक्षर हैं । वे भक्तिकाल के प्रमुख एवं युगद्रष्टा कवि थे । कबीर साहित्य और धर्म के क्षेत्र में एक नवीन क्रांति के जनक थे । कबीर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व हिंदी साहित्य और समाज के लिए इक्कीसवी शती में भी अनमोल रत्न है ।

3.3.3 जायसी : व्यक्तित्व और कृतित्व :

मलिक महमद जायसी प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि हैं । इन्हें सूफी काव्यधारा के सबसे सफल कवि भी कहा जाता है । 'पद्मावत' उनकी सबसे महानतम् कृति है । 'पद्मावत' का स्थान हिंदी के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में है । जायसी के काव्य में सूफी काव्य की सभी विशेषताएँ मिलती हैं । जायसी को प्रेम 'प्रेम पीर' के प्रचारक भी कहा जाता है ।

जीवनवृत्त :

जायसी के जन्मतिथि के संदर्भ में निश्चित रूप से कहना कठिन है । भक्तिकालीन अन्य कवियों के समान जायसी का जीवनवृत्त भी अंध:कारमय है । अनुमान के आधार पर इस विषय के संदर्भ में कुछ कहा जा सकता है। जायसी ने अपनी रचना 'आखरी कलाम' में लिखा है,

''भौ अवतार और नौ सदी ।
तीस बस ऊपर कवि वदी ।''

अर्थात जायसी नवी सदी (900) हिजरी में जन्मे थे । तीस वर्ष की आवस्था में उन्होंने 'आखरी कलाम' लिखना आरंभ किया । जायसी ने 'पद्मावत' में शासक शेरशाह का उल्लेख किया है । इससे यह निश्चित होता है कि जायसी शेरशाह के समकालीन थे ।

जन्म :

'जायस नगर मोर अस्थानू' के अनुसार मलिक महमद जायसी का जन्म 900 हिजरी को रायबरेली में जायसनगर में हुआ । जायस नगर में जन्म होने के कारण ही इन्हें जायसी कहा गया । जायसी ने अपनी रचनाओं में अन्य किसी स्थान का उल्लेख नहीं किया है ।

डॉ. सुधाकर द्विवेदी तथा आचार्य ग्रियर्सन ने निम्नांकित पंक्तियों के आधार पर जायसी का जन्मस्थान जायस माना है,

''जायस नगर मोर अस्थानू,
तहां आइ कवि कीन्ह बखानू ।

तथा

तहा दिवस दस पाहुने आएऊँ

इन्होंने अनुमान लगाया है कि जायसी किसी दूसरे स्थान से आकर यहाँ पर बसे थे, किंतु आचार्य शुक्ल का कहना है कि ये जायस नगर के ही निवासी थे । जायसी ने अपनी रचनाओं में अन्य किसी स्थान का उल्लेख नहीं किया है ।

गुरू :

'सय्यद अशरफ' जायसी के गुरू थे । अपने गुरू के बारे में स्वयं जायसी ने लिखा है,

''सय्यद अशरफ पीर हमारा।
जेहि-मोहि पंथ वीन्ह उजियारा ।।

माता-पिता :

जायसी के पिता का नाम मलिक शेख ममरेज या मलिक राजे अशरफ था । सर्व सहमति से मलिक

शेख ममरेज को ही जायसी के पिता के रूप में स्वीकार किया गया था। जायसी जब छोटे थे तभी उनके माता-पिता का देहांत हो गया था। माता-पिता की मृत्यु के कारण उनका बचपन साधुओं और फकिरों के संगति में गुजरा । प्राप्त किवंदंतियों के अनुसार उनका विवाह भी हुआ था ।

व्यक्तित्व :

जायसी बचपन से अनाथ थे । बचपन में माता-पिता की मृत्यु होने के कारण ये साधुओं और फकिरों की संगति में रहते थे । माना जाता है कि जायसी दिखने में बहुत करूप थे । उन्हें एक आँख और एक कान नहीं था। जहाँ ईश्वर ने उन्हें कुरूप बनाया था वहीं दूसरी ओर मधुर कंठ दिया था । वे अपनी रचनाएँ गाकर सुनाते थे । जायसी कबीर की तरह बहुश्रुत थे । भ्रमण और सत्संग के आधार पर उन्होने विविध विषयों का गहरा ज्ञान प्राप्त किया था । उनकी शिक्षा अनियमित थी । वे अत्यंत होशियार और होनहार थे । उन्होंने आँखों से देखकर सुनकर विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त किया था । उन्हें भाषाओं का इतिहास, राजनीति आदि विषयों का अच्छा ज्ञान था । हिंदू, ईस्लाम आदि धर्मों की जीवन शैली, रीति-रिवाज आदि बातों का परिपूर्ण ज्ञान था । जायसी सूफी मत के फकीर कवि थे । वे स्वभाव से सरल, उदार एवं मुलायम प्रकृति के व्यक्ति थे । जायसी के गुण विशेषताओं के संदर्भ में डॉ. जयदेव लिखते हैं, ''मलिक साहब बडे सत-चरित्र, कर्तव्यनिष्ठ गुरूभक्त थे । इनकी सरलता, सन्हदयता, अनुभवशीलता एवं विलक्षणता इनके काव्य में पूर्ण रूप में प्रकट होती है ।''

साहित्य समीक्षा :

जायसी द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या को लेकर विद्वानों में मतभिन्नता है । नवनवीन अनुसंधानों के बाद उनके ग्रंथों की संख्या 24 स्वीकार की गयी है। इनमें से पांच ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं । 'पद्मावत', 'अखरावट', 'आखरी कलाम', 'महरी बाइसी', 'चित्रलेखा' आदि । 'पद्मावत' उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है । 'आखरी कलाम' और 'अखरावट' का सांप्रदायिक दृष्टि से महत्त्व है, साहित्यिक दृष्टि से कुछ महत्त्व नहीं 'आखरी कलाम' में सृष्टि के अंत तथा मुहम्मद साहब के महत्त्व का वर्णन है । इसमें बताया गया है कि सृष्टि के अंत में क्या आवस्था होती है तथा उस समय जिब्राईल आदि फरिश्ते क्या करते हैं। यह एक सूफी सिद्धांतों का ग्रंथ है । 'अखरावट' में ईश्वर, जीव, ब्रह्मा, सृष्टि निर्माण, गुरू तथा धर्माचार आदि की सैद्धांतिक विवेचना की गयी है । प्राप्त इन सभी रचनाओं में 'पद्मावत' उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है।

'पद्मावत' :

'पद्मावत' सूफी काव्य परंपरा एवं जायसी का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है । इसे हिंदी साहित्य का अनमोल रत्न भी कहा जाता है । इसमें राजा रत्नसेन और पद्मावती की लौकिक प्रेम कहानी के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की गयी है । जायसी ने पद्मावत में लोक-प्रचलित कथा में ऐतिहासिकता का भी

सुंदर समन्वय कर दिया है। 'पद्मावत' की खास विशेषता यह है कि इसमें प्रेम की साधना और सिधि दोनों अवस्थाओं का चित्रण किया गया है । सहिष्णुता, समन्वयात्मकता और संग्राहक बुद्धि का उदय उस युग की एक खास विशेषता है । इस ग्रंथ के बीच-बीच में रहस्यवाद की सुंदर सृष्टि हुई है । इस ग्रंथ का सांस्कृतिक तथा साहित्यिक दृष्टि से महत्त्व है । इसमें सिर्फ प्रेमवर्णन ही नहीं लोकपक्ष भी है।

लोकपक्ष :

कबीर की भर्त्सनामयी वाणी का प्रभाव पंडितों और मुल्लाओं पर तो नहीं पडा किंतु साधारण जनता राम और रहिम की एकता मानने लगी थी । मुसलमान हिंदुओं की राम कहानी सूनने के लिए लालायित हो उठे थे । अतः 'पद्मावत' उस युग की साधना ही सिद्ध हुई और उसके प्रतिनिधि हुए जायसी । उनका यह उद्घोष चारों ओर गुँज उठा,

''बिरछि एक लागी हुई डारा, एकहि ते नाना प्रकारा ।''
''माता के रक्त पिता के बिंदू, उपनै दुवौ तुरक और हिंदू ।''

कबीर के समान जायसी भी जन-जीवन के अधिक निकट पहुँचे थे । जायसी ने जहाँ हिंदू घराने की लौकिक प्रेम कहानी के माध्यम से अलौकिक प्रेम कहानी की अभिव्यंजना की वहाँ हिंदू मुस्लिम संस्कृतियों का भी समन्वय किया । उन्होंने हिंदू पात्रों में हिंदू आदर्शों की प्रतिष्ठा दी है । पात्रों का चरित्र-चित्रण हिंदू जीवन से साम्य रखता है । जायसी ने प्रेम की अत्यंत मनोवैज्ञानिक पद्धति के द्वारा बड़ी कोमलता और काव्यमयता के साथ हिंदू-मुस्लिम ऱ्हदयों के अजनबीपन को मिटाया ।

रहस्यवाद :

जायसी में सूफी रहस्यवाद पूर्ण रूप में पाया जाता है । किंतु वे भारत के कवि थे, उनके रहस्यवाद पर अद्वैतवाद का भी यथेष्ट प्रभाव है । जायसी ने भी अपनी प्रेम कहानी में पद्मावती को परमात्मा और रत्नसेन को आत्मा के रूप में चित्रित किया है । जायसी ने प्रकृति के सभी पदार्थों को ईश्वरीय छाया से उद्भासित कहा है । पद्मावत का प्रेम खंड रहस्यवाद का सुंदर उदाहरण है । रत्नसेन हीरामन तोते के द्वारा पद्मावत के नख-शिख के सौंदर्यमय वर्णन को सुनकर बेहोश हो जाता है । जायसी ने यद्यपि यह दिखाया है कि परमात्मा की ज्योति सर्वत्र व्याप्त है तथापि उन्होंने अपने अंतर को भी परमात्मा के प्रकाश से रहित माना है । उनका यह कथन है कि परमात्मा ऱ्हदय में निहित है, केवल उससे साक्षात्कार करानेवाले की आवश्यकता है,

''पिउ ऱ्हदय म हैं भेट न होई। को रे मिलाव कहों केहि रोई ।।

जायसी जैसी तीव्र विरह-अनुभूति बहुत कम कवियों में पायी जाती है । उनका विश्वास है कि प्रेम में ही प्रियतम निवास करता है ।

''पेमहि माँह विरह सरसा । मेन के घर वधु अमृत बरसा ।।

अतः जायसी का रहस्यवाद सूफी रहस्यवाद के अनुकूल है और साथ-साथ उसमें भारतीय अद्‌वैतवाद की भी झलक है।

पद्‌मावत का महाकाव्यत्व :

निःसंदेह पद्‌मावत हिंदी का महाकाव्य है। महाकाव्य के सभी लक्षण पद्‌मावत में विद्‌यमान हैं । कथा का पूर्वार्ध लोकप्रचिलत और काल्पनिक है तथा उत्तरार्ध ऐतिहासिक । इसका नायक राजकुल से संबंधित है । पूरी कथा 52 सर्गों में विभाजित है। कथावस्तु में वस्तु वर्णन भी अत्यंत सटिक है । इसका प्रधान रस श्रृंगार है किंतु अन्य रसों का भी समावेश है । इसमें सिर्फ एकांतिक प्रेम कहानी न होकर लोकपक्ष का भी सुंदर समन्वय हुआ है । कथा में स्वाभाविक प्रभाव है । मंगलाचरण, सज्जनप्रशंसा तथा दुर्जन निंदा आदि सभी बातें सम्मिलित हैं।

रस :

पद्‌मावत का प्रधान रस रसराज श्रृंगार है । 'पद्‌मावत' में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनें पक्षों का अच्छा परिपाक हुआ है । संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष अधिक प्रभावशाली दिखाई देता है । नागमती के माध्यम से वर्णित विप्रलम्भ श्रृंगार इनके अक्षय यश का अलोक स्तम्भ है । जायसी के विरह वर्णन में इतनी व्यापकता, तीव्रता, मार्मिकता और तन्मयता है कि समस्त जगत, जड एवं चेतन उससे द्रविभूत हो जाती है । निम्न काव्य पंक्तियों से जायसी के विरह की व्यापकता का पता चलता है।

''नैनन चली रकत है धारा, कंथा भीजि भएउ रतनारा ।
सूरज बूड़ि उठा हुइ राता, औ मजीठ टेसू बन राता ।।

पद्‌मावत के प्रेम में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है फिर भी नागमती के विरह में एक विशेष तीव्रता और मार्मिकता है । नागमती को पति-वियोग तो था ही साथ-साथ सपत्नी के प्रति ईर्ष्याभाव ने उसे और भी तीव्र बना दिया था । वह विरह में जलकर कोयला हो गयी। उसके शरीर में तोला भर मांस भी नहीं रहा उसमें रक्त तो नाममात्र भी नहीं था । इसका सुंदर वर्णन करते हुए जायसी लिखते हैं,

हाड़ नये सब किगरी, नसै मई सब तांति ।
रविं रोंब से धुनि उठे, कहीं विथा केहि भाँति ।।

नागमती एक आदर्श हिंदू महिला है । उसमें पति भक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान है । उसके प्रेम में ऐद्रियता की अपेक्षा मानसिक पक्ष की प्रधानता है । उसमें एक महान त्याग है जो उसे बहुत ऊँचा उठाता है,

''मोहि भोग सो काम न बारी, सौंह विस्टि की चाहनि हारी ।''

नागमती के विरह वर्णन में बारहमासा का एक विशेष स्थान है । प्रत्येक मास की प्राकृतिक दशा

के साथ नागमती के हृदय के शोक और हर्ष की जो अभिव्यंजना की गई है । वह वस्तुतः अनुपम है । नागमती के निम्नांकित शब्दों में कितनी स्वाभाविकता, कितना दैन्य, कितनी उत्कंठा और कितनी प्रेम-निष्ठा है, इसका एक विरह ऱ्हदय अनुमान लगा सकता है,

यह तन जारौ छार कै, कहाँ कि पवन उडाय ।
मकु तिहि मारग उड़ि परै, कंत घरै जहै पाय ।

जायसी को संयोग पक्ष में अधिक सफलता नहीं मिली है । संयोग श्रृंगार के वर्णन में षट्-ऋतु का वर्णन किया है और उसमें कुछ हास्य विनोद का भी विधान है । समागम के समय के हाव भावों के वर्णन में कहीं तो कोरी छेड़छाड़ है जो फटकार और अश्लीलता की कोटि में पहुँच जाती है ।

श्रृंगार रस के अतिरिक्त अन्य रसों का भी प्रयोग हुआ है । रत्नसेन के सिंहल-गमन, रानियों का विलाप तथा रत्नसेन की मृत्यु के प्रकरणों में करुण रस का अच्छा परिपाक हुआ है । युद्ध वर्णन में वीभत्स का अच्छा उद्रेक है । वीर रस के प्रसंग भी प्रस्तुत हैं । रत्नसेन ने वैराग्य धारण करने पर शांत रस का निर्वाह हुआ है ।

'पद्मावत' एक घटना प्रधान काव्य है । जायसी ने इसे रसात्मक बनाने के लिए वर्णनात्मक पर अत्यधिक बल दिया है । कहीं-कहीं पर वर्णनात्मकता की वृत्ति इतनी बढी-चढी हुई दिखाई देती है कि पाठक उबने लगता है ।

प्रकृति चित्रण :

प्रकृति चित्रण दो प्रकार का होता है - अतः प्रकृतिचित्रण और बाह्य प्रकृति-चित्रण । अतः प्रकृति-चित्रण की द्रष्टि से 'पद्मावत' का कोई विशेष महत्त्व नहीं है । जायसी ने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकृति का चित्रण किया है । उनकी प्रमुख शैलियों में परिगणन शैली, अतिशयोक्तिपूर्ण शैली, उपमान शैली, और रहस्यात्मक शैली आदि शैलियों का प्रयोग प्रकृति-चित्रण में किया है ।

चरित्र चित्रण

जायसी का चरित्र-चित्रण एकदेशीय है । 'पद्मावत' में 'रामचरितमानस' जैसी अनेकरूपता नहीं है। तुलसी के राम में जैसे शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है, वैसा जायसी में नहीं है । रत्नसेन एक आदर्श प्रेमी है, पद्मावती आदर्श प्रेमिका, नागमती एक आदर्श हिंदू रमणी और गोरा बादल आदर्श वीर है । जायसी ने अन्य सूफी कवियों के समान अपनी कथा को एकांतिक प्रेम कहानी होने से बचा लिया है क्योंकि जायसी ने उसमें लोकपक्ष का भी समावेश कर दिया है । जायसी ने पद्मावत में सात्विक और तामसिक दोनों प्रकार के पात्रों का चित्रण किया है । अल्लाउद्दीन तामसी पात्र है जो कामी और लोभी है । राघवचेतन छली और कृतघ्न है । 'पद्मावत' में हिंदू पात्रों का उनकी संस्कृति के अनुरूप बडी सऱ्हदयता से चित्रित किया है ।

अलंकार :

जायसी ने सादृश्यमूलक अलंकारों का सफल प्रयोग किया है, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा जायसी के प्रिय अलंकार हैं । अनेक स्थलों पर उन्होंने स्वभावोक्ति, अन्यौक्ति और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का बहुत सुंदर प्रयोग किया है । इसके अलावा श्लेष, व्यतिरेक, तद्‌गुण, विभावना, संदेह, अनुप्रास तथा निदर्शना आदि अलंकारों का भी सफल प्रयोग किया है । इनके साहित्य में अपमानों की इतनी अधिक संख्या है जो शायद ही हिंदी साहित्य के किसी अन्य कवि में मिले ।

छंद :

जायसी ने साहित्य में दोहा, चौपाई इन छंदों को अपनाया है और उनका अवधी भाषा में इतना सफल प्रयोग किया है कि वे कदाचित हिंदी की ख्यातनाम रचना 'रामचरितमानस' के रचनाकार तुलसीदास को भी पीछे छोड़ गए हैं । इसी कारण 'पद्‌मावत' की शैली को 'दोहा–चौपाई' कहा जाता है । छंदों का अवधी भाषा में इतना सफल प्रयोग शायद ही अन्य किसी कवि ने किया हो ।

भाषा :

जायसी ने 'ठेठ अवधी' की पूर्वीपन के अपनाया है । 'पद्‌मावत' की भाषा 'ठेठ अवधी' है । परंतु जायसी की अवधी प्रयोग असंस्कृत है, किंतु भाषा की स्वाभाविकता, सरसता और मनोगत भावों की प्रकाशन सामग्री ने जायसी को अवधी साहित्य क्षेत्र में स्वीकार किया है । जायसी की अवधी में तुलसीदास जैसी साहित्यिकता और पांडित्य नहीं है । जायसी की भाषा प्रसाद और माधुर्य गुण से परिपूर्ण है । जायसी की भाषा में अनेक दोष है, फिर भी इन्होंने अवधी को साहित्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने का सफल प्रयास किया है ।

अतः जायसी के साहित्य में कुछ गुण और दोष पाए जाते हैं फिर भी जायसी को भारतीय साहित्य जगत एवं संस्कृति में विशिष्ठ स्थान प्राप्त है । हिंदू और मुसलमानों में सांस्कृतिक समन्वय स्थापित करने का काम जायसी ने अपने साहित्य के माध्यम से किया है । बाबु गुलाबराय जायसी के संदर्भ में लिखते हैं, ''जायसी महान कवि हैं । उनमें कवि के समस्त सहज गुण विद्यमान है । उसने सामायिक समस्या के लिए प्रेम की पीर की देन दी । उस पीर को अपनी शक्तिशाली महाकाव्य के द्‌वारा उपस्थित किया। वह अमर है।''

3.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 : निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए ।

1. ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि ..... हैं ।
   (अ) कबीर (ब) जायसी (क) तुलसीदास (ड) सूरदास

2. 'बीजक' ..... की प्रामाणिक रचना है ।
   (अ) जायसी (ब) सूरदास (क) कबीर (ड) तुलसीदास

3. संत कबीर की भाषा ..... थी ।
(अ) ब्रज (ब) राजस्थानी (क) अवधी (ड) सधुक्कडी (खिचडी)

4. संत कबीर का जन्म ..... में हुआ ।
(अ) सं. 1955 (ब) सं. 1455 (क) सं. 1655 (ड) सं. 1755

5. कबीर का पालन-पोषण ..... ने किया ।
(अ) नीरू-नीमा (ब) वीरू तथा भीमा (क) सीमा (ड) धीमा

6. कबीर की मृत्यु ..... में हुई ।
(अ) वाराणसी (ब) उज्जैयन (क) मगहर (ड) काशी

7. कबीर के गुरू ..... थे।
(अ) रामानंद (ब) शंकरानंद (क) घनानंद (ड) वल्लभाचार्य

8. कबीर ..... के समकालीन थे ।
(अ) जहाँगीर (ब) अकबर (क) शहाजहाँ (ड) सिकंदर लोधी

9. ..... को 'वाणी के डिक्टेटर' कहा जाता है ।
(अ) जायसी (ब) कबीर (क) तुलसी (ड) सूर

10. प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि ..... हैं ।
(अ) कबीर (ब) घनानंद (क) जायसी (ड) तुलसीदास

11. जायसी का जन्म ..... हिजरी को हुआ ।
(अ) 900 (ब) 1000 (क) 950 (ड) 800

12. जायसी के गुरू का नाम ..... था ।
(अ) सय्यद अशरफ (ब) मुहम्मद (क) अकबर (ड) मुबारक

13. सूफी परंपरा मूलतः ..... देश की है ।
(अ) पाकिस्तान (ब) अफगाणिस्तान (क) ईरान (ड) इराक

14. 'पद्मावत' के रचयिता ..... है ।
(अ) जायसी (ब) कबीर (क) सूर (ड) तुलसी

15. 'पद्मावत' में ..... सर्ग है ।
(अ) 55 (ब) 52 (क) 58 (ड) 60

16. 'पद्मावत' का नायक ..... है ।
(अ) रत्नसेन (ब) वीरसेन (क) भीमसेन (ड) तानसेन

17. 'पद्मावत' का प्रधान रस ..... है ।

(अ) वीर (ब) करुण (क) श्रृंगार (ड) रौद्र

18. 'पद्मावत' की भाषा ..... है ।

(अ) राजस्थानी (ब) अवधी (क) ठेठ अवधी (ड) ब्रज

19. नागमती के विरह वर्णन में ..... का विशेष स्थान है ।

(अ) बारामासा (ब) छमासा (क) ग्यारहमासा (ड) पंधरहमासा

प्रश्न 1 (आ) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए ।

1. कबीर का जन्मस्थान कौनसा है ।
2. कबीर किस शाखा के प्रमुख कवि हैं ?
3. कबीर के समय दिल्ली का बादशाह कौन था ?
4. प्रेम पीर के प्रचारक कवि किसे कहा जाता है ?
5. 'पद्मावत' के रचयिता कौन है ?
6. कबीर का पालन पोषण किसने किया ?
7. भक्तिकाल का कालखंड कहाँ से कहाँ तक माना गया है ?
8. 'निर्गुण भक्तिधारा' के अंतर्गत कौनसी दो शाखाएँ आती हैं ?
9. 'कागज मसि छुओ नहीं, कलम गहिं नहीं हाथ' यह उक्ति किसकी है ?
10. 'पद्मावत' में जायसी ने कौनसे दो छंदों का प्रयोग किया है ?

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

जुलाहा – कपडे बुननेवाला

गयानी – ज्ञानी

तत् – तत्त्व

आखर – अक्षर

द्राविडी - द्रविड प्रदेश से संबंधित (विशेष रूप से आंध्रप्रदेश की तेलगु, तमिलनाडू की तमिल, कर्नाटक की कन्नड से संबधित)

सधुक्कडी – साधुओं की भाषा, जिस भाषा में अलग-अलग भाषाओं का मिश्रण होता है और जो घुमक्कड लोगों द्वारा बोली जाती है तथा सामान्य व्यक्ति जिसे सहजता से समझा है, उसे सधुक्कडी भाषा कहा जाता है ।

3.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

प्रश्न 1 (अ)

(1) कबीर	(2) कबीर	(3) सधुक्कडी (खिचडी)
(4) सं. 1455	(5) नीरू तथा नीमा	(6) मगहर
(7) रामानंद	(8) सिकंदर लोधी	(9) कबीर
(10) जायसी	(11) 900	(12) सय्यद अशरफ
(13) ईरान	(14) जायसी	(15) 52
(16) रत्नसेन	(17) श्रृंगार	(18) ठेठ अवधी
(19) बारामासा		

प्रश्न (आ)

1. कबीर का जन्मस्थान काशी है ।
2. कबीर निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि है ।
3. कबीर के समय दिल्ली का बादशाह सिकंदर लोधी था ।
4. प्रेमपीर के प्रचारक कवि जायसी को कहा जाता है ।
5. 'पद्मावत' के रचयिता जायसी है।
6. कबीर का पालन–पोषण नीरू तथा नीमा ने किया ।
7. भक्तिकाल का कालखंड संवत् 1375 से संवत 1700 तक माना गया है ।
8. निर्गुण भक्तिधारा के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी ये दो शाखाएँ आती हैं ।
9. 'कागज मसि छुओ नहीं, कलम गहिं नहीं हाथ' यह उक्ति संत कबीर की है ।
10. 'पद्मावत' में जायसी ने दोहा और चौपाई इन दो छंदों का प्रयोग किया है ।

3.7 सारांश :

1. निर्गुण भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी ये दोन प्रमुख शाखा है ।
2. निर्गुण भक्तिधारा में ईश्वर को निर्गुण–निराकार माना है ।
3. संत कबीर युगद्रष्टा कवि के रूप में उभरकर आते हैं ।
4. 'बीजक' कबीर की प्रामाणिक रचना है ।
5. जायसी प्रेमाश्रयी शाखा के प्रवर्तक है ।
6. 'पद्मावत' जायसी का प्रसिद्ध महाकाव्य है ।

7. जायसी ने सूफी काव्य परंपरा का प्रचार-प्रसार किया है ।

8. कबीर तथा जायसी ने लोगों में एकता स्थापित करने का सफल प्रयास किया है ।

3.8 स्वाध्याय :

1. ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखा का सामान्य परिचय ।
2. कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर पर प्रकाश डालिए ।
3. युगद्रष्टा कवि कबीर : समझाइए ।
4. जायसी के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दीजिए ।
5. 'पद्मावत' के महाकाव्यत्व का परिचय दीजिए ।

3.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. कबीर के समाज सुधार सम्बन्धी दस साखियों का संकलन कीजिए।
2. कबीर और तुकाराम के दस समान विचारोंवाले दोहों-अभंगों को प्राप्त कीजिए।
3. सूफी प्रेम काव्यों की सूची तैयार कीजिए।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. डॉ. शिवकुमार शर्मा - 'हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ'
2. आ. रामचंद्र शुक्ल - 'हिंदी साहित्य का इतिहास'
3. डॉ. धीरेंद्र वर्मा - 'हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास'
4. आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - 'हिंदी साहित्य का अतीत'
5. डॉ. रमेशचंद्र शर्मा - 'हिंदी साहित्य का समग्र इतिहास'

●●●

इकाई 4

सगुण भक्तिधारा

अनुक्रम :

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

3.3 विषय–विवेचन

4.3.1 सगुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताएँ ।

4.3.2 तुलसीदास : व्यक्तित्व और कृतित्व ।

4.3.3 सूरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व।

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न ।

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ ।

4.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर ।

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

1) सगुण शाखा की सामान्य विशेषताओं से परिचित होंगे।

2) भक्तिकाल की सगुण शाखा से परिचित होंगे ।

3) सगुण भक्तिधारा की रामभक्ति शाखा से परिचित होंगे ।

4) रामभक्ति शाखा के प्रमुख गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व से परिचित होंगे ।

5) गोस्वामी तुलसीदास के कृतित्व से परिचित होंगे ।

6) सगुण भक्तिधारा की कृष्णभक्ति शाखा से परिचित होंगे ।

7) कृष्णभक्ति धारा के प्रमुख कवि सूरदास के व्यक्तित्व से परिचित होंगे ।

8) कवि सूरदास के कृतित्व से परिचित होंगे।

4.2 प्रस्तावना :

भारतीय धर्म साधना में भक्ति की एक सुस्पष्ट एवं सुदीर्घ परंपरा रही है। सामान्यत: ईश्वर के दो रूप मने गये हैं- सगुण एवं निर्गुण। जब परमात्मा को निराकार, अनादि, अगोचर, सर्वव्यापी मानकर उसकी विवेचना की जाती है तब उसे निर्गुण ब्रम्ह कहा जाता है और जब वहीं ब्रम्ह सगुण-साकार रूप धारण कर नर शरीर ग्रहण कर नाना प्रकार के कृत्य करता है तब उसे सगुण परमात्मा के रूप में जाना जाता है। राम, कृष्ण आदि शरीरधारी परमात्मा के सगुण साकार रूप हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, ''सगुणोपासक भक्त भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप ज्ञानमार्गियों के लिए छोड. देता है।'' सगुण भक्ति में जहाँ लीलावतार को आराध्य माना गया है वहीं निर्गुण भक्ति में ब्रम्हज्ञान और योगसाधना को विशेष स्थान दिया गया है। सगुण भक्ति में भगवत् कृपा को विशेष महत्त्व मिला है तो निर्गुण भक्ति ब्रम्हानुभूति पर विशेष बल देती है। सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से सगुण भक्ति को महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। सगुणोपासकों की धारणा है कि भक्त की अनुभूति के लिए, भक्ति के लिए रूपाकार, साकार, मूर्त आधार की आवश्यकता होती है। हिंदी का सगुण संप्रदाय वैष्णव धर्म से पोषण प्राप्त करता है। इस संप्रदाय की दोनों शाखाओं राम-भक्ति धारा और कृष्ण-भक्ति धारा में ईश्वर सगुण है।

हिंदी राम-भक्ति धारा में अनेक कवि हुए किंतु राम-भक्ति धारा का साहित्यिक महत्त्व अकेले तुलसीदास के कारण है। तुलसी की अपूर्व प्रतिभा के कारण साहित्याकाश में उनका स्थान सूर्य का है। इसलिए राम-भक्ति धारा का अध्ययन तुलसीदास में ही केंद्रित हो जाता है।

4.3 विषय विवेचन :

हिंदी साहित्य के इतिहास का द्वितीय चरण भक्ति की प्रवृत्ति से परिपूर्ण रहा है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन को 'पन्द्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण' कहा है। उनके अनुसार ''इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय हो गया था।'' इस कालखंड में भक्तिभाव की प्रधानता रहीं, साथ ही इस काल के कवियों को भक्त-कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'धर्म की रसात्मक अनुभूति को भक्ति कहा है।' शुक्ल जी भक्तिभाव का मूल स्त्रोत दक्षिण भारत को मानते हैं। उनके अनुसार ''भक्ति के आंदोलन की जो लहर दक्षिण से आयी उसीने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरुप हिंदू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की भावना

कुछ लोगों में जगाई।'' महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत नामदेव पहले ही इस प्रकार की भक्ति भावना का प्रचार कर रहे थे।

भक्ति का मूल स्रोत दक्षिण भारत रहा है। डॉ. सत्येंद्र के अनुसार भक्ति का उदय द्राविडों में हुआ – ''भक्ति द्राविडी ऊपजी लाए रामानंद।'' तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ धार्मिक परीस्थितियों ने भी भक्ति के प्रसार में योगदान दिया। दक्षिण के आलवार भक्तों ने भक्ति भाव की उच्च स्थिति प्राप्त कर ली थी। आचार्य हजारप्रसाद द्विवेदी ने इन्हीं आलवार भक्तों को ही भक्ति आंदोलन के सूत्रपात का श्रेय दिया है। रामानंद, वल्लभाचार्य जैसे विद्वानों ने अपने सिद्धांतों की स्थापना के द्वारा इस भक्ति भाव एवं अवतारवाद को दृढ किया और बाद में सूर-तुलसी ने उसे काव्य रूप प्रदान किया।

सगुणोपासक भक्त कवियों का सारा प्रयत्न इस ओर केंद्रित था कि हिंदू समाज को विघटन और उत्पीडन से बचाया जाय। इसलिए उन्होंने हिंदू समाज के विभिन्न घटकों को संगठित करने का कार्य किया। उनकी समन्वयवादी विचारधारा के पीछे मूल धारणा यही थी। उत्तर-दक्षिण का भेद समाप्त हो गया और दक्षिण के अनेक आचार्य रामानुज, राघवाचार्य, वल्लभाचार्य जी उत्तर भारत में वृंदावन मथुरा में आकर रहने लगे। इसी प्रकार शैव-वैष्णव का भेद, सगुण-निर्गुण का भेद भी समाप्त होने लगा। तुलसीदास का 'रामचरितमानस्' इस दिशा में किया गया सबसे बड़ा प्रयास है।

सगुणोपासक कवियों ने ज्ञान, कर्म और भक्ति में से भक्ति को ही प्रधानता दी। इन कवियों ने ज्ञान की अवहेलना तो नहीं की पर उसे भक्ति जैसा समर्थ भी नहीं बताया। ज्ञान तारक तो है पर वह कष्ट साध्य है। सगुण संप्रदाय की पृष्ठभूमि में भक्ति का समृद्ध साहित्य है। इस साहित्य के प्रमुख आधार ग्रंथ हैं – भगवद्गीता, विष्णु और भागवत पुराण, नारद भक्ति सूत्र और शांडिल्य भक्ति सूत्र। इसके अतिरिक्त दक्षिण के आलवार भक्तों की रचनाऐं भी वैष्णवों की अमूल्य निधि है । इन सगुण भक्त कवियों ने एक नवीन भाव क्रांति को जन्म दिया।

4.3.1 सगुण भक्तिधारा की विशेषताएँ :

सगुणोपासक कवियों ने अपने साहित्य की रचना लोकहित को ध्यान में रखकर की। वे जन साधारण को उसके कर्तव्य का पाठ पढ़ाते हैं, साथ ही उसे एक आदर्श मानव बनने की प्रेरणा देते दिखायी पड़ते हैं। उनकी काव्य साधना ने उन मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना की जो समाज से लुप्त हो रही थी। इन कवियों ने अपने साहित्य के द्वारा समाज की नैतिकता एवं भाईचारे का उपदेश दिया। भक्तिपरक रचनाओं के द्वारा उन्होने जनता के ईश्वर के जिस स्वरूप का परिचय दिया, उसने निराश हृदयों में पुन: आशा और स्फूर्ति का संचार करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन कवियों ने सगुण भक्ति के उस रूप की प्रतिष्ठा की जिसमें मानव हृदय विश्राम भी पाता है और कलात्मक सौंदर्य से मुग्ध और तृप्त भी होता है। सगुण भक्तिधारा की सामान्य विशेषताएँ इसप्रकार हैं – .

1. ईश्वर का सगुण रूप :

सगुण भक्त कवियों का आराध्य देवता सगुण है। वैष्णव आचार्यों का कथन है कि सगुण के गुण

अलौकिक हैं। लौकिक गुण अस्थिर, परिवर्तनशील होते हैं पर ईश्वर के गुण निरंतर, स्थायी होते हैं। प्रभु का स्वरूप हृदय और बुद्धि की पहुंच से परे हैं, यह सगुण परमात्मा स्रष्टा, पालक और संहारक है। इन भक्तों का ध्यान भगवान के पालक रूप पर केंद्रित है, क्योंकि पालन के साथ साथ धर्म भावना संबंध है। इनके लिए परमात्मा चल भी है, मूर्त भी है और अमूर्त भी, वामन भी है और विराट भी, सगुण भी है और निर्गुण भी। वस्तुत: वह अनिर्वचनीय है और कालातीत है किंतु उसका अपनी समग्रता में किसी काल में अवतरित होना असंभव नहीं। सगुणोपासकों के अनुसार मनुष्य वस्तुत: ब्रम्ह है, नर और नारायण एक है।

तुलसी के राम विष्णु के अवतार होने के नाते लोकरक्षक, अधर्म के विनाशक एवं धर्म के संस्थापक है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम और श्रेष्ठतम गुणों से विभूषित हैं। वे अद्वितीय वीर हैं तथा इस वीरता से अधर्म का विनाश करते हुए धर्म-परायणता में तत्पर दिखाई देते हैं।

2. अवतार भावना :

सगुणोपासक कवियों की उपासना पद्धति का प्रमुख अंग अवतारवाद है। इन कवियों का विश्वास है कि वह असीम सीमा को स्वीकार करकें अपनी इच्छा लीला के लिए अवतरित होते हैं। उनके अनुसार सारा संसार उस भगवान का अवतार है किंतु इन वैष्णवों की अवतार भावना के मूल में गीता का विभूति एवं ऐश्वर्य योग काम कर रहा है। ज्ञान, कर्म, वीर्य, ऐश्वर्य, प्रेम भगवान की विभूतियाँ हैं। जो मनुष्य किसी क्षेत्र में कौशल दिखाते हैं वे भगवान की विभूति को साकार करते हैं। अत: गुणातीत और सगुण, असीम और ससीम में कोई विरोधाभास नहीं है।

राम काव्य परंपरा के कवियों ने भगवान विष्णु के अवतार 'राम' के जीवन-चरित्र को आधार बनाकर अपने काव्य ग्रथों की रचना की। भारतीय धर्म साधना में कृष्ण का विलक्षण व्यक्तित्व रहा है। श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में मानकर उनके विविध क्रियाकलापों का वर्णन भागवत् पुराण तथा महाभारत में प्रमुख रूप से किया गया है। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की बाल लीलाओं, प्रणय लीलाओं तथा अन्य माधुर्य भाव युक्त क्रीडाओं का चित्रण किया है। सूरदास तथा अष्टछाप के कवियों ने भागवत पुराण का आधार ग्रहण कर कृष्णचरित्र का गान किया है।

3. लीला रहस्य :

सगुण काव्य में लीलावाद का अत्यंत महत्त्व है। चाहे तो तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम हों चाहे सूर के ब्रजराज कृष्ण हों दोनों लीलाकारी हैं। उनके अवतार का उद्देश्य लीला ही है। इन कवियों ने राम को परब्रम्ह मानकर धर्म की स्थापना हेतु अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र के रूप में अवतार ग्रहण कर मानवीय लालाऐं करते हुए दिखाया है। तुलसी के राम लोकरक्षक हैं तथा अधर्म के विनाशक एवं धर्म के संस्थापक हैं। वे अद्वितीय वीर हैं तथा इस वीरता से अधर्म का विनाश करते हुए धर्म-परायणता में तत्पर दिखायी देते हैं। तुलसी के लोकरक्षक राम रावण का संहार लीलार्थ करते हैं। तुलसी के लिए समस्त रामचरित लीलामय है।

कृष्ण तो हैं ही लीला-रमण और आनंदप्रद। एक ओर जहाँ वे लीला करते हुए समस्त गोपीजनों को जिन्होंने लोक की सारी मर्यादाओं का अतिक्रमण कर दिया है, आकर्षित करते हैं वहाँ दूसरी ओर अधासुर एवं बकासुर राक्षसों का लीला ही लीला में वध करवा देते हैं। इन कवियों की धारणा है कि समस्त संसार की सृष्टि लीला का ही परिणाम है। सगुण भक्त लीला में सच्चिदानंद के आनंद का स्वरूप देखते हैं। उनका विश्वास है कि जीवन और दर्शन की चरम सफलता लीलावाद में निहित है।

4. रूपोपासना :

सगुण साधना में रूपोपासना का विशिष्ट स्थान है। सगुण साधना में भगवान् के नाम और रूप आनंद के अक्षय कोण हैं। सगुण भक्त को भगवान् के नाम और रूप इतना विमुग्ध कर लेते हैं कि लौकिक छवि उसके पथ में बाधक नहीं बन सकती। आरंभ में सगुणोपासक नामरूप युक्त मूर्ति के समक्ष आकर उपासना करता है परंतु निरंतर भावना, चिंतन एवं गुण कीर्तन से वह अपने आराध्य में ऐसा एकरूप हो जाता है कि उसे किसी भौतिक उपकरण की आवश्यकता ही नहीं रहती।

ब्रजेश कृष्ण रस-राज श्रृंगार के अधिष्ठाता देवता है। रूप ही श्रृंगार रस को जगाता है। यहीं कारण है कि कृष्ण भक्ति शाखा में कृष्णाश्रित श्रृंगार का सांगोपांग वर्णन है। उनके कृष्ण सौंदर्य की अतुल राशि हैं। तुलसी के राम शक्ति, शील एवं सौंदर्य का भंडार है। वे अपने अनंत सौंदर्य से जन-जन को मोहित करनेवाले हैं साथ ही अपूर्व शील से सबके हृदय को अपने वशीभूत कर लेते हैं। तुलसी के राम अपनी अप्रतिम छवि से त्रिभुवन को लजाने वाले हैं।

5. शंकर के अद्वैतवाद का विरोध :

भागवत के अतिरिक्त हिंदी के सगुण काव्य पर रामानुज, निम्बार्क, मध्वाचार्य तथा वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा है। इन सभी आचार्यों ने शंकर के ज्ञानमूलक अद्वैतवाद का जो भक्ति को परम सत्य नहीं मानता, खंडन किया और भक्ति तत्त्व का समाधान करते हुए भगवत् प्राप्ति में उसकी अनिवार्यता सिद्ध की है। रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद में ब्रम्ह प्रकारी है और जीव तथा प्रकृति उसके प्रकार है। जीव की कृतकृतत्या इसी में है कि वह अपने आपको भगवान का विशेषण माने। आत्मसमर्पण के द्वारा जीव को यह स्थिति प्राप्त हो सकती है। परमात्मा अंशी है और जीव उसका अंश है। मध्वाचार्य ने जीव की उत्पत्ति ब्रम्ह से मानी है किंतु ब्रम्ह को स्वतंत्र और जीव को परतंत्र माना है। वल्लभ के पुष्टि संप्रदाय में लयात्मक सायुज्य को उच्चतम स्थिति नहीं माना गया है। पुष्टि मार्ग में प्रवेशात्मक सायुज्य ही काम्य है जिसमें भक्त भगवान की आनंद लीला में अप्राकृत देह धारण करके प्रवेश करता है। रास लीला प्रवेशात्मक सायुज्य का ही रूप है।

6. विविध स्रोत :

सगुणोपासक कवियों के अपने भक्ति काव्य धारा के आधारभूत ग्रंथ रामायण और भागवत रहे हैं। रामायण की अपेक्षा भागवत का प्रभाव इस काव्य पर ज्यादा है। संस्कृत के भगवद्गीता, विष्णु पुराण, पांचरात्र संहिताओं, नारद भक्तिसूत्र, शांडील्य भक्तिसूत्र तथा कई अन्य काव्य ग्रंथों का प्रभाव पड़ा है।

रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ, मध्व, विष्णु स्वामी और चैतन्य आदि आचार्यों ने जिन सिद्धांतों को पुरस्कृत किया वे सगुण काव्य के मेरुदंड हैं। भक्ति काल की रागानुगा भक्ति में दक्षिण के आलवार संतों का महत्वपूर्ण योगदान है। यह काव्य भक्तों की अपनी सुंदरतम मौलिक अनुभूतियों से सजीव है।

7. भक्तिक्षेत्र में जातिभेद की अमान्यता :

इस काल के सगुण भक्त कवियों तथा आचार्यों ने भक्ति के क्षेत्र में जाति-पांति का बंधन स्वीकार नहीं किया। यद्यपि कर्मक्षेत्र में इन सबने वर्णाश्रम व्यवस्था पर बल दिया है, परंतु भगवद्भक्ति क्षेत्र में किसी के शूद्र होने के नाते उसे भक्ति के अधिकार से वंचित नहीं किया।

8. गुरु की महत्ता :

सगुणोपासक कवियों ने संसार की सब वस्तुओं से गुरु को उच्चतम माना है और उसकी महत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सूर और तुलसी का साहित्य इस तथ्य का सुंदर निदर्शक है। नंददास ने वल्लभ को ब्रम्ह के रूप में ग्रहण किया है। इनका विश्वास है गुरु के बिना ज्ञान असंभव है और ज्ञानाभाव में मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। ज्ञान से भक्ति और भक्ति से उसका सायुज्य प्राप्त होता है।

9. भक्ति :

सगुणोपासक भक्त कवियों को लिए भगवान सगुण है। भगवान की भक्ति एवं प्रेम का उद्देश्य है उसकी निकटता प्राप्त करके उसमें रममाण होना तथा उसकी लीलाओ में अपने आपको लीन करना। विष्णु मूलत: ऐश्वर्य संपन्न देव है अत: रामानुज संप्रदाय में भगवान की ऐश्वर्य उपासना पर अत्यधिक बला है। वल्लभ और निम्बार्क संप्रदाय में भगवान के ऐश्वर्य की अपेक्षा उसकी माधुरी को अधिक महत्त्व दिया गया है। चैतन्यमत में कांताभाव की भक्ति का पूर्ण परिपाक हुआ है। वल्लभ संप्रदाय में शांत, सख्य और वात्सल्य भावों की भक्ति का विशिष्ठ स्थान है जब कि चैतन्य संप्रदाय में कांताभाव का आग्रह दिखाई देता है। युगल लीला की प्रतिष्ठा वल्लभ, चैतन्य और निम्बार्क संप्रदाय में हुई है। इन कवियों ने नवधा भक्ति को अत्यंत महत्त्व दिया है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य, आत्मनिवेदन भक्ति की ये नव विधाएँ इंद्रिय, मन और हृदय को भगवान के प्रति निवेदित करती हैं। इनसे भक्त अपने आपको रामार्पण एवं कृष्णार्पण कर देता है।

10. लोक जीवन :

सगुणोपासक भक्त कवियों ने कृष्ण काव्य और राम काव्य में अपने अपने दृष्टिकोणों के अनुसार लोक जीवन का सुंदर चित्रण किया है। कृष्ण काव्य कवियों ने भारतीय ग्राम्य जीवन का मनोहर वर्णन किया है। जिन हृदयों और प्राकृतिक परिवेश में कृष्ण की बाललीलाओं का चित्रण हुआ है उनके भावना द्वारा मन में विलक्षण आनंद का संचार होता है। अष्टछाप के कवियों ने तत्कालीन भारतीय जीवन की एक सुंदर सांस्कृतिक झाँकी प्रस्तुत की है।

तुलसी के राम असत् से संघर्ष करते हुए सत् का उद्धार करते हैं। वे अपने वृत के लिए नाना कष्टों को

सहते हैं। धर्मोद्धार, पापनाश, साधुरक्षण, दुष्टदलन तथा भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए भगवान युग युग में अवतार लेते हैं। राम और कृष्ण के चरित्र में शील, शक्ति और सौंदर्य का मनोहर संगम है। एक मर्यादा पुरुषोत्तम है तो दूसरा ब्रजेश रसेश। ये दोनों रूप लोकसंग्रह की दृष्टि से अभिनंदनीय है।

4.3.2 तुलसीदास : व्यक्तित्व और कृतित्व :

गोस्वामी तुलसीदास रामकाव्य परंपरा के श्रेष्ठ कवि हैं। वे इस काव्य परंपरा के तेजस्वी सूर्य हैं। तुलसी का जीवन वृत्त अभी तक अपेक्षाकृत अंधकारमय है। गोस्वामी तुलसीदास के जीवन वृत्त के संबंध में अंत:साक्ष्य और बहि:साक्ष्य दोनों मिलते हैं। अंत:साक्ष्य में तुलसी के अपने ग्रंथ आते हैं और बहि:साक्ष्य के अंतर्गत गोस्वामी गोकुलनाथ द्वारा लिखित 'दो सो बावन वैष्णवों की वार्ता', नाभादास का 'भक्तमाल', बाबा माधव वेणीदास कृत 'भक्तमाल की टीका' प्रमुख हैं। तुलसीदास के जीवन परिचय के लिए हमें बहि:साक्ष्यों की अपेक्षा अंत:साक्ष्य पर अधिक निर्भर करना पड़ेगा। तुलसी का समस्त जीवन मतभेदों से भरा पड़ा है।

1) व्यक्तित्व :

जन्म–तिथि : तुलसीदास के जन्म तिथि के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन चरित्र का मूल आधार बेनीमाधव दास द्वारा रचित 'गोसाई चरित' और महात्मा रघुवरदास रचित 'तुलसी चरित्र' है। उक्त दोनों चरित्रों के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास का जन्म 1554 विक्रम में तथा मृत्यु 1680 विक्रम में मानी जाती है। ऐसा मानने पर तुलसी की आयु 126 वर्ष ठहरती है जो असंभव तो नहीं किंतु असामान्य प्रतीत होती है। पं. रामगुलाम द्विवेदी, सर जार्ज ग्रियर्सन और डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी का जन्म 1589 विक्रम (1532 ई.) में तथा मृत्यु 1680 विक्रम (1623 ई.) में स्वीकार की है।

जन्म स्थान : इनके जन्म स्थान के संबंध में भी मतभेद है। ठाकूर शिवचरणसिंह सेंगर, रामगुलाम द्विवेदी आ. रामचंद्र शुक्ल ने तुलसी का जन्म स्थान 'राजापुर' को माना है। पं. गौरी शंकर द्विवेदी तथा रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तुलसी का जन्म स्थान एटा जिले के 'सोरो' नामक स्थान को माना है।

माता–पिता : उनके जन्म के संबंध में यह किवदंती प्रचलित है कि उनका जन्म मूल नक्षत्र पर हो जाने से उनके पिता आत्माराम दुबे ने उन्हें त्याग दिया था तथा माता हुलसी का निधन प्रसुतिकाल में हो गया था। तुलसी के बचपन का नाम रामबोला था।

गुरु : गुरु बाबा नरहरिदास ने उन्हें दीक्षा दी थी तथा काशी में शेष सनातन की पाठशाला में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। तुलसी ने अपने गुरु का रामचरित–मानस में अनेक स्थलों पर स्मरण किया है। इन्होंने अनेक तीर्थ स्थानों की यात्रा की और अंत में काशी में रहने लगे। राजा टोडरमल, रहीम और मानसिंह तुलसी के अनन्य मित्र थे।

वैवाहिक जीवन :

इनके वैवाहिक जीवन के संबंध में भी मतभेद हैं । जनश्रुति के अनुसार इनका विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री 'रत्नावली' से हुआ था। उनके तारक नाम का एक पुत्र भी हुआ जिसकी मृत्यु हो गई थी। अत्यधिक आसक्ति के कारण तुलसी को रत्नावली से मोठी भर्त्सना, ''लाज न आयी आपको दौरे आएहु साथ'' भी सुननी पडी थी । तुलसी को रत्नावली ने धिक्कारते हुए कहा था –

अस्थि चर्म मय देह मम तामैं ऐसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ होति न तौ भवभीति।।

रत्नावली के इन वचनों से तुलसी पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे विरक्त होकर काशी चले गए।

2) कृतित्व :

गोस्वामी तुलसीदास नाम पर अस तक चालीस पुस्तकें प्राप्त हो चुकी हैं। परंतु पं. रामगुलाम द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने बारह रचनाओं को प्रामाणिक माना है। ये रचनाएँ इस प्रकार हैं

1) रामचरितमानस 2) विनय पत्रिका 3) कवितावली 4) दोहावली 5) रामलला नहछू 6) गीतावली 7) कृष्ण गीतावली 8) वैराग्य संदीपनी 9) रामाज्ञा प्रश्नावली 10) बरवै रामायण 11) पार्वती मंगल 12) जानकी मंगल।

रामचरित मानस :

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा अवधी भाषा में रचित 'रामचरितमानस' राम के जीवन चरित पर आधारित महाकाव्य है। इस ग्रंथ की रचना संवत 1631 (1574 ई.) में प्रारंभ हुई और तुलसी ने इसे 2 वर्ष 7 मास में ही समाप्त किया। दोहा–चौपाई शैली में लिखे गये इस महाकाव्य में सात कांड हैं– 1. बाल कांड 2. अयोध्या कांड 3. अरण्य कांड 4. किष्क्रिंधा कांड 5. सुंदर कांड 6. लंका कांड 7. उत्तर कांड

रामचरितमानस के राम मर्यादा पुरुषोत्तम, लोकरक्षक, शक्ति, शील एवं सौंदर्य के भंडार है। रचना कौशल, प्रबंध पदुता, सहृदयता, मार्मिक स्थलों की पहचान के कारण यह हिंदी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है। तुलसी ने मानस में आदर्श चरित्रों की परिकल्पना की है। महाकाव्य के नायक राम आदर्श चरित्र है। समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए राम का चरित्र आदर्श व्यवहार की कसौटी है। वे एक आदर्श भाई, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श मित्र, आदर्श स्वामी, आदर्श शिष्य, आदर्श राजा के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किये गये हैं। रामचरितमानस की विशेषताएँ इसप्रकार हैं

1) स्वांत: सुखाय काव्य : गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में अपनी काव्य रचना का उद्देश स्पष्ट करते हुए घोषणा की, ''स्वांत: सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।'' काव्य रचना के लिए इन्हें न तो किसी दरबार का आश्रय लेना उचित लगा और न ही आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा करने में उन्होंने रुचि दिखायी। तुलसी ने अपने काव्य में अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति के खरेपन को अपनाया।

2) लोकमंगल की भावना : रामचरितमानस में तुलसी केवल कवि के रूप में ही नहीं अपितु एक उपदेशक के रूप में भी सामने आते हैं। इन्होंने लोककल्याण की कामना करते हुए जनता को नैतिकता एवं सदाचार का अविस्मरणीय पाठ पढाया है। तुलसी ने रामराज्य निरुपण के अंतर्गत आदर्श शासन-व्यवस्था की रूपरेखा भी प्रस्तुत की है। तुलसी ने तो कविता का उद्देश्य ही लोकहित स्वीकार किया है - 'कीरति मनिति भूति मल सोई। सुरसरि सम सबव है हित होई।।' अर्थात वहीं कविता श्रेयस्कर होती है, जो गंगा के समान सबका हित करने वाली हो।

3) भक्ति का स्वरूप : तुलसी ने मानस में दास्य भाव की भक्ति को मुक्ति का साधन मानते हुए कहा है - 'सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।' दास्य भाव की भक्ति से भक्त अहंकारशून्य होकर उस परमात्मा के महत्त्व से परिचित हो जाता है।

4) समन्वयवादी प्रवृत्ति : तुलसी ने रामचरितमानस में हर दृष्टि में समन्वयवादी प्रवृत्ति को अपनाते हुए लोकनायक होने का परिचय दिया। रामचरित मानसे में तुलसी ने सगुण-निर्गुण, शैव और वैष्णव का, ज्ञान और भक्ति का, राजा और प्रजा का, जनभाषा और संस्कृत का, भाग्य एवं पुरुषार्थ का, द्वैत एवं अद्वैत का समन्वय किया है।

5) अवधी भाषा : गोस्वामी जी का रामचरितमानस अवधी भाषा में ही लिखा गया है। तुलसी ने मानस में प्रसंगानुकूल, रसानुकूल शब्द चयन, पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया है।

6) छंद एवं अलंकार योजना : रामचरितमानस में दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैय्या आदि छंदों का सफल प्रयोग हुआ है। तुलसी ने चत्मत्कार प्रदर्शन के लिए अलंकार योजना नहीं की है तथापि मानस का काव्य अलंकारों से मण्डित है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विभावना, प्रतीप, दृष्टांत, सांगरूपक अलंकारों का प्रयोग किया है। अलंकार योजना स्वाभाविक एवं अर्थबोध में सहायक रही है।

7) रस योजना : रामचरितमानस में सभी रसों की योजना की है। युद्ध वर्णन में वीर एवं रौद्र रस की सुंदर योजना हुई है तथा श्रृंगार का मर्यादित चित्र पुष्पवाटिका में चित्रित है। करुण रस के मानस में अनेक प्रसंग हैं। लंकादहन प्रसंग में भयानक और बीभत्स रस का अच्छा प्रयोग हुआ है। सारी राम कथा का पर्यवसान शांत रस में हुआ है। राम के ब्रह्मत्व का प्रसंग या हनुमान के पहाड़ ले जाने के प्रसंग में अद्भुत रस, वात्सल्य रस के वर्णन मानस के बाल कांड में चित्रित है।

रामचरितमानस आदि से अंत तक समन्वय का काव्य है और यही कारण है कि तुलसी लोकनायक बन सके तथा जन जन के प्रिय बन गये।

विनय पत्रिका :

विनय पत्रिका 279 पदो में ब्रजभाषा में लिखा हुआ काव्यग्रंथ है। तुलसी का अवधी और ब्रजभाषा पर समान अधिकार था। तुलसी की भक्ति भावना जानने के लिए विनय पत्रिका को पढ़ना आवश्यक है। इस काव्य का प्रधान रस

शांत है। गीति शैली में रचित विनय पत्रिका के पद विभिन्न राग-रागनियों में निबद्ध है। राग केदार, मल्हार, वसंत, रामकली, केदार जैसे प्रमुख रागों का प्रयोग किया गया है। तुलसीदास ने कलियुग से संतप्त होकर प्रभु श्री राम के चरणों में अर्पित करने हेतु यह विनय पत्रिका लिखी है। इस काव्य में आत्मनिवेदन, शरणागत वत्सलता, मन की भर्त्सना एवं दैन्य जैसे भावों की सुंदर व्यंजना हुई है। विनय पत्रिका के कुछ प्रसिद्ध पद इसप्रकार है –

तू दयाल दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं अनाथ पातकी तू पाप पुंज भारी।।

कवितावली :

कवित्त, सवैया छंद में ब्रजभाषा में रचित कवितावली मुक्तक काव्य ग्रंथ है। जिसमें सात कांड हैं। इसे तुलसी की अंतिम रचना माना जाता है। राम कथा से संबंधित कविता लंकाकांड तक है तथा तुलसी के निजी जीवन एवं तद्युगीन समाज का चित्रण उत्तरकांड में है। कवितावली में राम के बाल रूप का चित्रण अत्यंत सुंदर है। राम-सीता के विवाह के अवसर पर श्रृंगार भावना का चित्रण मार्मिक बन पड़ा है। अलंकारों का सुंदर प्रयोग कवितावली की विशेषता है। कवितावली में दिए गए अंत:साक्ष्य के आधार पर तुलसी के जीवन-वृत्त को जानने में सहायता मिलती है।

तुलसीकृत 'वैराग्य संदिपनी' ग्रंथ में ईश्वर वंदना के अतिरिक्त संत स्वभाव, संत-महिमा और शांति महिमा का वर्णन किया गया है। 'रामाज्ञा प्रश्न' में राम जन्म से लेकर सीता के पृथ्वी-प्रवेश के आख्यान को विशद किया है। 'रामललानहछू' की रचना लोकगीत-सोहर छंद में हुई है जिसमें राम के उपवीत-संस्कार का वर्णन है। इसका कथानक मुख्यत: वाल्मिकी और अध्यात्मरामायण पर आधारित है। 'पार्वती मंगल' में पार्वती के विवाहोत्सव का वर्णन है साथ ही पार्वती के जन्म, तप आदि का भी संक्षिप्त चित्रण किया गया है। 'कृष्ण गीतावली' में कृष्ण की बाललीला और गोपियों की विरह दशा का वर्णन करनेवाले गीत हैं। 'गीतावली' को 'राम गीतावली' भी कहा जाता है। इस ग्रंथ में माधुर्य भावना का सुंदर दर्शन होता है। यह ग्रंथ राम साहित्य में प्राप्त मधुरा भक्ति के प्रतिनिधित्व का उदाहरण है। 'दोहावली' में विविध विषय पर लिखें तुलसी के दोहे हैं। इसमें युगीन परिस्थितियों का परिचय मिलता है। 'बरवै रामायण' में बरवे छंद में कुछ रामकथा प्रसंग राम-नाम, रामप्रेम का महात्म्य वर्णित है। 'हनुमान बाहुक' ग्रंथ की सीता-त्याग और लक्ष्मण-परित्याग दो घटनाएँ ध्यानाकर्षक हैं। तुलसीदास का पूरा जीवन और काव्य साधना राम के प्रति समर्पित है।

4.3.3 सूरदास व्यक्तित्व और कृतित्व :

प्रस्तावना :

सगुण काव्य-धारा में कृष्ण काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय धर्म साधना में कृष्ण का विलक्षण व्यक्तित्व रहा है। श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में मानकर उनके विविध क्रियाकलापों का वर्णन भागवत पुराण तथा महाभारत में प्रमुख रूप से किया गया है। भागवत पुराण में श्रीकृष्ण की रासलीला एवं

बाल लीलाओं का चित्रण हुआ है। सगुणोपासक कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की बाल लीलाओं, प्रणय लीलाओं तथा अन्य माधुर्य भावयुक्त क्रीडाओं का चित्रण किया है। संस्कृत कवि जयदेव ने मधुर संगीतात्मक पदावली में 'गीत-गोविंद' नामक ग्रंथ में राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का गान कर कृष्ण काव्य को एक नयी दिशा प्रदान की। मध्यकाल में कृष्ण काव्य को समृद्ध बनाने का पूरा श्रेय अष्टछाप के कवियों का है। इन कवियों में सर्वप्रमुख है-सूरदास। सूरदास के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवि थे - कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास।

1) जीवन तथा व्यक्तित्व :

जीवनवृत्त :

बाह्य साक्ष्य और अंत:साक्ष्य का आधार लेकर सूरदास की जीवन झाँकी प्रस्तुत की जा सकती है। उनके जीवन वृत्त को जानने के लिए गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' तथा नाभादास कृत 'भक्तमाल' को आधार बनाया गया है। उनका जीवन वृत्त पूर्णतया ज्ञात नहीं है। उनका जन्म 1478 ई में तथा मृत्यु 1583 ई. में मानी जाती है।

उनके जन्मस्थान के संबंध में भी विवाद है। कुछ विद्वान उन्हें 'सीही' में तो कुछ 'रुनकता' में उत्पन्न मानते हैं। इनके माता-पिता, परिवार के बारे में कुछ भी पता नहीं है। वे एक निर्धन सारस्वत ब्राम्हण के चतुर्थ पुत्र थे। सूरदास नेत्र विहीन थे। वे जन्मांध थे या बाद में अंधे हुए इस संबंध में विवाद है। उनके काव्य में दृश्यमान जगत् का सूक्ष्म और व्यापक वर्णन है। अत: उनकी जन्मांधता पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे, पुष्टिमार्ग में कीर्तन करते थे। सूरदास पहले विनय के पद गाते थे। वल्लभाचार्य के आदेश से कृष्ण लीला के पद गाने लगे। उन्होंने लगभग 3 वर्ष की अवस्था में श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करना आरंभ किया था और जिंदगी के अंतिम क्षण तक नियमित रूप से लीला गान में मग्न रहें। अपने 105 वर्ष के सुदीर्घ जीवन काल में उन्होंने लगभग एक लाख पदों की रचना की। सूरदास गायक, संगीतज्ञ, कीर्तनकार के रूप में प्रसिद्ध थे। जन्मजात प्रतिभा, गुणीजनों का सहवास और नीजि अभ्यास के कारण सूरदास को विभिन्न विद्याओं का ज्ञान था। इनकी ख्याती गायक और महात्मा के नाते सर्वत्र फैली। सम्राट अकबर, गोस्वामी तुलसीदास से इनकी भेट हुई थी। तुलसीदास सूर के लीला पदों से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने बाद में सूर की शैली पर भगवान राम की बाल-लीलाओं का वर्णन किया।

2) सूरदास की रचनाएँ :

सूरदास ने श्रीमद्भागवत् के आधार पर कृष्ण लीला संबंधी अनेक पदों की रचना की थी जिनकी संख्या सवा लाख बताई जाती है। उनके जीवन काल में ही इतने असंख्य पद सागर कहलाने लगे थे जो कि बाद में संगृहित होकर 'सूर सागर' कहलाने लगे। सूरदास के नाम पर 24 रचनाओं का उल्लेख मिलता है। इनमें से तीन रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं - साहित्यलहरी, सूरसारावली, और सूरसागर। उनकी एक मात्र प्रामाणिक रचना है - 'सूरसागर'।

'सूरसारावली' में 1103 पद है। इसे सूरसागर का सार अथवा अनुक्रमणिका माना जाता है। इसकी प्रामाणिकता विवादास्पद है। 'साहित्यलहरी' 118 पदों की छोटी रचना है। इसे सूरसागर का अंश माना जाता है। यह रीति ग्रंथ है। इसमें नायिका-भेद और रस-वर्णन है।

सूरसागर :

'सूरसागर' सूरदास की एकमात्र प्रामाणिक रचना है। यह ग्रंथ भागवत को आधार बनाकर लिखा है। कुछ विद्वान 'सूरसागर' को भगवान का अनुवाद मानते हैं। लेकिन वह उचित नहीं है। भागवत के कृष्ण शक्ति के प्रतीक है। सूर के कृष्ण इन गुणों के साथ-साथ प्रेम और सौंदर्य की प्रतिमूर्ति हैं। इस ग्रंथ में लीला वर्णन है। इस ग्रंथ के सव्वा लाख पदों में से केवल 5000 पद आज उपलब्ध है। 'सूरसागर' कृष्णभक्ति साहित्य का गौरव ग्रंथ है।

भावपक्ष :

'सूरसागर' में कृष्णलीला के पद हैं। सूर ने सख्य भक्ति को प्रधानता दी है। सूरदास के सखा भाव में यह विशेषता है कि उसमें एक ओर मनोवैज्ञानिक रूप से मानवीय संबंधों का निर्वाह किया गया है और भावात्मक की अनुभूति भी की गई है। समस्त सूरसागर का अध्ययन करने पर कृष्ण का चरित्र हमारे सामने इन रूपों में आता है।

i) अत्यंत मुखर बालक के रूप में।

ii) चंचल किशोर के रूप में।

iii) किशोर प्रेमी के रूप में।

iv) क्रीडा कौतुक प्रिय सखा के रूप में।

v) तरुण नायक के रूप में।

vi) अति प्राकृत अलौकिक सत्ता के रूप में जो भक्तों की रक्षा करती है।

इसप्रकार सूर ने कृष्ण का चरित्र विविध खूबियों से अंकित किया है और इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है। सूर की राधा भी हिंदी साहित्य को प्राप्त एक अमूल्य देन है। वह कृष्ण की पत्नी सदृश्य ही है और उसे सूर की अपनी देन ही समझना चाहिए।

सूर के पदों को पाँच भागों में विभाजित किया जाता है। - विनय के पद, बाललीला के पद, सौंदर्य-वर्णन संबधी पद, मुरली विषयक पद और भ्रमरगीत। इनमें से विनय के पद तो भक्ति-भावना से संबंधित हैं तो उर्वरित कृष्णलीला से संबंधित हैं। सूर का बालवर्णन विश्वसाहित्य में अनूठा कहा जाता है। वात्सल्य वर्णन में सूरदास हिंदी साहित्य में अद्‌वितीय है। बालक कृष्ण की एक-एक क्रीड़ा और माता यशोदा के हृदय के एक-एक मनोभाव का सूक्ष्म चित्रण किया है। लगता है, सूरदास वात्सल्य रस का कोना-कोना झाँक आए थे। इसलिए कहा जाता है 'सूर वात्सल्य है और वात्सल्य ही सूर है।'

सूरसागर में श्रृगांर के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का व्यापक वर्णन मिलता है। कृष्ण–गोपियाँ, कृष्ण–राधा के माध्यम से श्रृंगार वर्णन किया है। 'भ्रमर गीत' सूरसागर का अत्यधिक मार्मिक पक्ष है। इसका मुख्य विषय गोपियों की विरह भावना है। भ्रमर गीत पदावली में विरह सागर उमड़ सा उठा है तथा उसमें कल्पना एवं भावुकता का सहज सामंजस्य है।

सूर ने सूरसागर में प्रकृति चित्रण की विविध प्रणालियों को अपनाते हुए प्राकृतिक दृश्यों का मनोहारी वर्णन किया है। सूर ने प्रकृति का वर्णन इन रूपों में किया है – प्रकृति का विषयात्मक चित्रण, अलंकृत चित्रण कोमल और भयंकर रूप प्रकृति मानव क्रिया–कलाप की पृष्ठभूमि, अलंकारों के रूप में प्राकृतिक दृश्यों का प्रयोग। सूरसागर में श्रीकृष्ण के शैशव से लेकर किशोर अवस्था तक के असंख्य रूप चित्र है जिनमें कवि की भावना, कल्पना, कला–कुशलता और शैली की चमत्कारिता एक साथ व्यक्त हुई है।

कलापक्ष :

सूरकाव्य का भावपक्ष के साथ साथ कलापक्ष समृद्ध है। सूरदास के पद गीतिकाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। भाषा परिमार्जित, समृद्ध और प्रौढ है। व्याकरण के दोष होते हुए भी भाषा प्रवहमान है। ब्रजभाषा के साथ साथ संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषा के शब्दों का प्रयोग मिलता है। मुहावरें, कहावतों का प्रयोग स्वाभाविक रीति से हुआ है। शब्दचयन, भावमयता, चित्रात्मकता, सहजता, सरलता, सजीवता, मधुरता आदि सूर की भाषा की विशेषताएँ हैं। उनकी भाषा माधुर्यमयी है।

सूर अलंकार व्यंजना में सफल रहे हैं उनकी उक्तियों में उपमा रूपक, अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, वक्रोक्ति आदि अलंकार दिखाई पडते हैं। उनकी भाषा में लाक्षणिकता एवं ध्वन्यात्मकता भी दर्शनीय है। सूरसागर में दोहा, चौपाई, रोला, गीति, लावनी, धनाक्षरी, सवैया आदि छंद भी दृष्टिगोचर होते हैं। सूरकाव्य में राग–रागनियों का सुंदर समावेश हुआ है।

सूर काव्य के भावपक्ष और कालापक्ष पर विचार करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि 'सूर की कविता, कविता नहीं हृदय की झंकार है।'

4.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) तुलसीदास ..... भक्तिधारा के प्रमुख कवि हैं।

   क) शिव ख) कृष्ण ग) गणेश घ) राम

2) तुलसीदास का जीवनकाल ..... है।

   क) 1532-1623 ई. ख) 1530-1620 ई.

   ग) 1500-1580 ई. घ) 1550-1628 ई.

3) ..... सूरदास का जन्म स्थान है।

क) पारसौली ख) सीही ग) मगहर घ) सोरो

4) रामचरितमानस की रचना ..... भाषा में हुई है।

क) संस्कृत ख) पाकृत ग) मागधी घ) अवधी

5) ..... रामचरितमानस का आधार ग्रंथ है।

क) रामायण ख) महाभारत ग) उपनिषद घ) पुराण

6) अष्टछाप कें कवियों की संख्या ..... है।

क) अठारह ख) दस ग) आठ़ घ) बारह

7) सूरदास की भक्ति ..... प्रकार की है।

क) माधुर्य भाव ख) हास्य भाव ग) सख्य भाव घ) कांताभाव

8) पुष्टि मार्ग के ..... प्रवर्तक हैं।

क) गोकुलनाथ ख) नंददास ग) विठ्ठलनाथ घ) वल्लभाचार्य

9) विनय-पत्रिका ग्रंथ का प्रधान रस ..... है।

क) श्रृंगार ख) शांत ग) वात्सल्य घ) अदभुत

10) श्रृगांर और वात्सल्य रस का सम्राट ..... कवि को कहा जाता है।

क) सूरदास ख) तुलसीदास ग) नंददास घ) केशवदास

आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में लिखिए।

1) सूरदास के गुरु का नाम क्या था ?
2) सूरदास का जन्मस्थान कौन सा है ?
3) सूरदास की एकमात्र प्रामाणिक रचना कौनसी है ?
4) सूरदास किस मंदिर में कीर्तन करते थे ?
5) सूरसागर का आधार ग्रंथ कौनसा है ?
6) तुलसीदास के गुरु का नाम क्या था ?
7) तुलसी के साहित्य में कौनसी भावना प्रधान है ?
8) तुलसी के पत्नी का नाम क्या है ?

9) रामचरितमानस में कितने कांड हैं ?

10) विनय पत्रिका की भाषा कौनसी है ?

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

ऊपजि – पैदा हुई　　वामन – सूक्ष्म, छोटा　　पुष्टि – पोषण

कांता – पत्नी　　अनुग्रह – कृपा　　अस्थि – हड्डिया

कांड – भाग　　पातकी – पापी　　सूरसरि – गंगा नदी

भव – भवसागर

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तरे :

प्रश्न 1 अ)

1) राम　　2) 1532-1623 ई　　9) सीही

4) अवधी　　5) रामायण　　10) आठ

7) माधुर्य भाव　　8) वल्लभाचार्य　　11) शांत　　12) सूरदास

आ)

1) सूरदास के गुरु का नाम वल्लभाचार्य था।

2) सूरदास का जन्म स्थान सीही है।

3) 'सूरसागर' सूरदास की एकमात्र प्रामाणिक रचना है।

4) सूरदास श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्तन करते थे।

5) सूरसागर का आधार ग्रंथ भागवत है।

6) तुलसीदास के गुरु का नाम बाबा नरहरिदास है।

7) तुलसी के साहित्य में 'समन्वय' की भावना प्रधान है।

8) तुलसी के पत्नी का नाम 'रत्नावली' था।

9) रामचरितमानस में सात कांड है।

10) विनय पत्रिका की भाषा ब्रज है।

4.7 सारांश :

1) सगुण भक्तिकाव्य में ईश्वर के सगुण साकार और अवतारी रूप का वर्णन किया है।

2) रामभक्ति शाखा के तुलसीदास सर्वश्रेष्ठ कवि रहें।

3) गोस्वामी तुलसीदास ने समस्त विरोधों में सामंजस्य प्रस्थापित किया। उन्होंने समाज में, धर्म में,

आचार-व्यवहार में, भक्ति भावना में फैली अनेक विषमताओं को दूर कर उनमें समन्वय लाने का अद्‌भुत प्रयास किया और उसमें सफल भी हुए। तुलसी लोकनायक थे।

4) सूरदास कृष्णभक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि रहें।

5) अष्टछाप के कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि रहा।

6) 'सूरदास' श्रृंगार और वात्सल्य रस के सम्राट माने जाते हैं।

7) सगुण भक्त कवियों ने निर्गुण भक्ति शाखा की उपेक्षा नहीं की।

4.8 स्वाध्याय :

१) सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

२) सूरदास के व्यक्तित्व एवं साहित्य का परिचय दीजिए।

३) तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं साहित्य का परिचय दीजिए।

४) रामचरितमानस की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

५) सूरसागर का भावपक्ष और कलापक्ष विशद कीजिए।

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

१) सगुण भक्ति शाखा के तुलसीदास, सूरदास, अष्टछाप के कवियों के प्रसिद्‌ध पदों का संग्रह कीजिए।

२) मराठी के राम और कृष्ण साहित्य का तुलसीदास और सूरदास के पदों का साथ साथ अध्ययन कीजिए।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

१) हिंदी साहित्य की भूमिका - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

२) हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त

३) हिंदी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र

४) हिंदी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल

५) हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां - डॉ. शिवकुमार शर्मा

●●●

इकाई 1

रीतिकाल

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय – विवेचन

1.3.1 रीतिकाल : नामकरण

1.3.2 रीतिकालीन राजनीतिक परिस्थिति

1.3.3 रीतिकालीन सामाजिक परिस्थिति

1.3.4 प्रतिनिधि कवि : सामान्य परिचय

1.3.4.1 आचार्य केशवदास

1.3.4.2 बिहारी

1.3.4.3 भूषण

1.3.4.4 घनानंद

1.4 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

1. रीतिकालीन नामकरण की समस्या से परिचित होंगे।
2. रीतिकालीन राजनितिक और सामाजिक परिवेश को समझ सकेंगे।
3. रीतिकालीन कवियों के वर्गीकरण के आधार को समझ सकेंगे।
4. रीतिकालीन प्रमुख आचार्य केशवदास, बिहारी, भूषण, घनानन्द के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित होंगे।
5. बिहारी और उनकी रचना 'सतसई' के महत्त्व से अवगत होंगे।

1.2 प्रस्तावना :

सवंत् 1700 से 1900 (सन् 1643 ई. से 1843 ई.) तक का हिंदी साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य में से अनेक दृष्टियों से अलग प्रकार का रहा है। इस युग को सामान्यत: तत्कालीन प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर रीतिकाल के नाम से पहचाना जाता है।

हिंदी साहित्य के आदिकाल में अनेक साहित्यिक गतिविधियों का संमिश्र रूप दिखाई देता है, तो भक्तिकाल में परलौकिकता की प्रधानता उपलब्ध होती है। रीतिकाल का साहित्य इससे अलग प्रकार का साहित्य है। इस युग के साहित्य को परलोक तथा मोक्षादी की चिंता नहीं थी। अपितु इसका जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोन रहा है।

रीतिकालीन साहित्य लोकसाहित्य तथा सिद्धान्त साहित्य के बीच का साहित्य माना जाता है। इसमें होनेवाली पाण्डित्य प्रदर्शन काफी प्रबल भावना के कारण कवि कर्म तथा आचार्य कर्म का एक साथ निर्वाह साहित्यकारों का प्रभाव रहा है। भावुकता और कला का अद्भुत समन्वय करनेवाले रीतिकालीन कवि ने काव्य को शुद्ध कला के रुप में ग्रहण किया था। इस युग के कवियों को तीन वर्ग रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त में विभाजित किया जाता हैं।

रीतिकालीन काव्य धार्मिक प्रचार, भक्ति का माध्यम या समाजसुधार का साधन नहीं था। वह ऐतिहासिकतामूलक नई दृष्टि का परिचायक था। यह जनपथ से राजपथ की ओर अग्रेसर होनेवाली काव्यधारा होने के कारण इसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिवेश के प्रभाव के कारण विलासिता आ गई थी। अत: अलोच्च इकाई में हम रीतिकालीन, राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ नामकरण तथा प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त करने की कोशिश करेंगे।

1.3 विषय – विवेचन :

1.3.1 नामकरण :

हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल (सं. 1700-1900) नामकरण की दृष्टि विवादास्पद रहा है। मिश्रबंधुओं

ने इसे 'अलंकृत काल' के नाम से अभिहित किया है तो आचार्य रामचंद्र जी ने आलोच्च काल की सीमा (सन 1700-1900) निर्धारित करते हुए रीतिकाल नाम से पुकारा है। शुक्ल जी इस काल उल्लेख 'उत्तर मध्यकाल' के नाम से भी करते है। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने इस काल को 'श्रृंगारकाल' कहना उचित समझा है। रामशंकर शुक्ल 'रसाल' जी इस काल का उल्लेख 'कलाकाल' के रूप में किया है। इससे स्पष्ट होता है कि 'रीतिकाल' का नामकारण एक समस्या बनकर रह गई है। अधोलिखित पंक्तियों में हम नामकरण को विस्तार जानने का प्रयास करेंगे।

1. अलंकृत काल (मिश्र बंधू) :

सर्वप्रथम मिश्रबंधुओं ने अपने ग्रंथ 'मिश्र बंधु विनोद' में इस काल की अलंकरण की प्रवृत्ति की प्रधानतता को देखकर 'अलंकृत काल' नाम दिया है। उन्होंने इस काल को पूर्वालंकृत काल और उत्तरालंकृत काल के रूप में विभाजित कर विवेचन किया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि इस समय के कवियों ने सालंकार भाषा लिखने का अधिक प्रयोग किया है। इस काल के कवि अलंकारों के प्रचुर प्रयोग से श्रोताओं और पाठकों को प्रभावित तथा कविता सुन्दरी को अलंकारों से अलंकृत करना चाहते थे।

आपत्तियाँ : मिश्रबंधुओं के इस नामकरण का परवर्ती युग के अनेक विद्वानों ने खंडन किया है। उनका कहना है कि अलंकार तो सभी कालों की कविता में मिल जायेंगे। साथ ही अलंकारों के अतिरिक्त अन्य काव्यांगों का निरुपण भी रीतीकालीन काव्य में हुआ है। अत: अलंकृत काल कहने से उन सबकी उपेक्षा हो जायेगी। यह भी उल्लेखनीय है कि मिश्रबंधु इस काल को अलंकृत काल कहते हुए भी इस काल में रीतिग्रंथों की प्रचुरता को स्वीकारते हुए कहते है, ''इस प्रणाली के साथ रीति ग्रंथों का भी प्रचार बढा और आचार्यत्व की वृद्धि हुई। आचार्य लोग तो स्वयं कविता कटरे की रीति सिखलाते थे।''

इससे स्पष्ट होता है कि मिश्रबंधु ने इस काल की सामान्य प्रवृत्ति के रुप में रीति को स्वीकारते है। दूसरी प्रमुख बात यह है कि अलंकृत शब्द अपने अर्थ की सीमित सीमा के कारण इस काल की समस्त काव्य-प्रवृत्तियों को अपने में समेट नहीं सकता।

2. श्रृंगार काल (प. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र) :

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अनेक उक्तियों के द्वारा विवेच्य काल को 'श्रृंगार काल' के नाम से अभिहित किया है। उनके मतानुसार इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति श्रृंगारिकता की रही है। अत: इस युग को 'श्रृंगालकाल' कहना युक्तिसंगत होगा।

मिश्र जी द्वारा दिया गया यह नाम महत्त्वपूर्ण है। आचार्य युक्ल जी ने भी इसका विरोध नहीं किया हैं उन्होंने कहा है, ''वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्ही दो रसों की कविता इस काल में हुई। श्रृंगार रस की प्रधानता रही है। इससे इस काल को रस के विचार से कोई श्रृंगार काल कहे तो कह सकता है।''

आपत्तियाँ : शुक्ल जी के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि वे 'श्रृंगारकाल' नाम को स्पष्ट रुप से

नहीं स्वीकारते अपितु कहते कि ''रस के विचार से कोई श्रृंगारकाल कहे तो कह सकता है।'' उन्होंने इस काल को 'रीतिकाल' मानकर ही विवेचन किया है।

आश्चर्य की बात यह है कि मिश्र जी ने इस काल का नामकरण तो 'श्रृंगारकाल' किया है किंतु इसका वर्गीकरण 'रीतितत्व' को ध्यान में रखकर किया है। वे रीतिकालीन कवियों की तीन श्रेणियाँ (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त) रीतितत्व की प्रधानता पर ही करते है।

मिश्र के नामकरण का विरोध करनेवाले विद्वानों का प्रश्न यह है कि इस काल में नीति, भक्ति और वीर रस की कविताएँ लिखनेवाले कवियों को कहाँ रखा जाएँ?

इस युग के काल में श्रृंगार की प्रधानता निश्चित है, लेकिन वह स्वतंत्र नहीं है, वह रीति पर निर्भर है। अत: इस काल को 'श्रृंगारकाल' कहना उपयुक्त है लेकिन उचित नहीं है ऐसा माना जाता है।

3. कला काल (रामशंकर शुक्ल 'रसाल') :

रामशंकर शुक्ल 'रसाल' जी ने रीतिकाल को 'कलाकाल' के नाम से पुकारा है। उन्होंने इस काल के काव्य में कला पक्ष की प्रधानता देखकर यह नामकरण किया है। साहित्य के दो प्रमुख पहलू होते है – भाव पक्ष और कला पक्ष। आलोच्च काल के काव्य में कला पक्ष पर अधिक ध्यान दिया गया था। इसे पुरे युग में काव्य के चमत्कृत एवं चातुर्यपूर्ण गुणों की ओर विशेष ध्यान देकर कला के नियमोपनियमों से संबंध रखनेवाले रीति या लक्षण ग्रंथों की रचना की गई है। अत: रसाल जी इसे कलाकाल मानने की बात करते है।

आपत्तियाँ : रसाल जी के नामकरण का विरोध करनेवाले विद्वानों ने कई एक आपत्तियाँ उठाई है। उनका मानना है कि केवल कलापक्ष से कविता नहीं बनती अपितु काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष इतना एकरूप होते है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

दूसरी बात यह है कि कला काल कहने से ऐसी ध्वनि निकलती है जैसे, रीति काल में भाव पक्ष की नितांत उपेक्षा हुई है, जबकि वस्तुत: ऐसा नहीं हुआ है। रीतिकालीन काव्य में हृदयपक्ष का भी सुंदर उद्‌घाटन हुआ है। अत: इसे कला-काल कहना उचित नहीं है।

4. रीतिकाल (आचार्य रामचंद्र शुक्ल) :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने आलोच्य काल को पद्‌धति विशेष के आधारपर 'रीतिकाल' नाम दिया है। इस काल के कवियों में लक्षण ग्रंथों की परिपाटी पर रीतिग्रंथ लिखने की प्रवृत्ति थी। इस काल का वातावरण ही कुछ इस प्रकार का था कि प्राय: प्रत्येक कवि रीति परम्परा का अनुभव करने में गौरव अनुभव करता था। इस युग में रीति परम्परा का निर्वाह करना प्रतिष्ठा का साधन बन गया था। शुक्ल जी के अनुसार इस युग के अधिकांश कवियों के पास काव्यशास्त्रीय दृष्टि थी और वे शास्त्र के अनुसार ही इस युग ही काव्यलेखन किया करते थे। काव्यांग की चर्चा करना और लक्षण ग्रंथ लिखकर पाण्डित्य प्रदर्शन करना उस युग की प्रमुख विशेषत: थी।

'रीति' शब्द का सामान्य अर्थ है – 'पद्धति'। काव्य लिखने की विशिष्ट पद्धति के रूप में यह शब्द प्रयुक्त होने लगा था। आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने रीति शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्रीय दृष्टि के अर्थ में ही किया है। हिंदी साहित्य के रीतिकाल के संबंध में इस शब्द को स्वीकारनेवालों ने इसका अर्थ स्वीकार किया। रस, नायिका – भेद, अलंकार, शब्द शक्ति, छन्द आदि का निरुपण करना। अत: रीतिकाल में प्रयुक्त शब्द 'रीति' का संबंध काव्यशास्त्र से है। इसका सामान्य अर्थ है – काव्य के विभिन्न अंगों के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत करना या काव्यांग निरुपण करना है। इसे ही रीति पद्धति कहा गया है। इस युग के प्राय: सभी कवियों ने रीति पद्धती पर काव्य की रचना की है। अत: इस काल को रीतिकाल कहा जाता है।

आपत्तियाँ : आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के रीतिकाल नाम को यद्यपि अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है। तथापि उसपर कुछ आक्षेप भी किए गए है। कुछ विद्वानों का तर्क है कि 'रीतिकाल' संज्ञा व्यापक नहीं है, क्योंकि इसके अंतर्गत धनानंद बोधा, आलम, ठाकुर, बिहारी जैसे प्रतिनिधि कवि नहीं आ पाते, जिन्होंने काव्यांग विवेचन करनेवाला कोई लक्षण ग्रंथ नहीं लिखा है।

5. उत्तर मध्यकाल (मिश्रबंधु और आचार्य रामचंद्र शुक्ल) :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने मानव मनोवैज्ञानिक के आधार पर आलोच्च काल को 'मध्यकाल' नाम दिया है। मानव मनोवैज्ञानिक किसी भी कालावधी को सामान्य तथा तीन भागों में विभाजित करता है – आदि, मध्य और अंत या आधुनिक। शुक्ल जी ने मध्यकाल में दो प्रमुख प्रवृत्तियों को देखकर प्रथम भाग को पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) और दूसरे भाग को उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) नाम दिया है।

वास्तव में मिश्रबंधुओं ने अपनी रचना 'मिश्रबंधू विनोद' में हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन करते समय आदि, मध्य और अंत या आधुनिक शब्द का प्रयोग शुक्ल जी के पहले किया था। शुक्ल जी ने मिश्रबंधुओं की परम्परा को अपनाकर 'मध्यकाल' नामकरण का प्रयोग करते हुए इसको पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल के रूप में विभाजित करते हुए विवेचन किया है।

आपत्तियाँ : मिश्रबंधु और शुक्ल जी के उक्त नामकरण का अनेक विद्वानों ने विरोध किया है। उनका मानना है कि इस नामकरण से साहित्य की किसी भी प्रवृत्ति का बोध नहीं होता। यह केवल काल के आधार पर नामकरण किया है।

6. भौतिकवादी साहित्य (डॉ. शिवकुमार शर्मा) :

डॉ. शिवकुमार शर्मा जी ने रीतिकालीन साहित्य में होनेवाले भौतिक दृष्टिकोन की प्रधानता को देखकर इसे भौतिकवादी साहित्य का नाम दिया है। इसमें परलौकिकता या मोक्षादि की चिंता न होकर भौतिक जीवन को ही महत्त्वपूर्ण माना है। अत: यह नाम दिया है। इस नामकरण का कोई विशेष महत्त्व नहीं स्वीकारा।

1.3.2 राजनीतिक परिस्थितियाँ :

रीतिकाल मुगलों की सत्ता का परम वैभव का काल है। इस युग में व्यक्तिवादी, निरंकुश राजतंत्र का

बोलबाला था। रीतिकाल के पूर्व सम्राट अकबर ने अपनी उदारवादी एवं सहिष्णुता की नीति से हिंदू तथा मुस्लिमों में सांस्कृतिक समन्वय स्थापित कर विशाल मुगल साम्राज्य की स्थापना की थी।

अकबर के उत्तराधिकारी जहाँगिर के कार्यकाल में विशेष कुछ भी नहीं हुआ। उसके कार्यकाल में राज्यविस्तार या विशेष गतिविधियाँ न के बराबर रही। सुरा और सुन्दरी को भोग लालसा उसे विरासत में मिली थी। उसके कारण भावना को बल मिला।।

शाहजहाँ के शासन काल में रीतियुग का प्रारंभ हुआ। उसके राजदरबार में तथा समकालीन राजाओं और सामन्ता के दरबारों में वैभव, भव्यता एवं अलंकरण की प्रधानता थी। यह समय सुख-शांति तथा समृद्धि का काल था। राजा और सामन्त अपने दरबारों में गुणीजनों कवियों, कलाकारों को आश्रय देते थे। शासकों में आत्मप्रशंसा का मोह एवं श्रृंगारिक मनोरंजन की चाह थी। ताजमहल एवं मयूर सिंहासन जैसी भव्य कृतियों का निर्माण इस युग में हो चुका था। उत्तर भारत के अधिकांश राजपूत राजाओं एवं सामान्तों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। मुगलों का शासन दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर एवं गोवलकुण्डा तक फेल गया था।

शहाजहाँ में कलागत उदारता थी। उसमें सहिष्णुता थी। उसमें प्रदर्शन एवं वैभव-विलासिता की भावना प्रधान थी। उसका गहरा प्रभाव रीतिकालीन साहित्य पर पडा है।

सं 1775 में शाहजहाँ रोगग्रस्त हुआ। उसने सत्ता के लिए जंगली जानवरों की तरह लडनेवाले पुत्रों को देखा। दारा की मृत्यु से मानो मानवता की हत्या हुई और प्राय: मुगल वंश में धार्मिक सहिष्णुता तथा उदारता समाप्त हो गई।

शाहजहाँ के उपरान्त औरंगजेब मुगल-शासक बना जो अपनी धर्मांधता एवं कट्टरता के लिए कुप्रसिद्ध रहा है। उसकी साम्राज्य विस्तार लिप्सा बढती ही गयी; जिसने उसे आजीवन आराम से बैठने नहीं दिया। उसकी धार्मिक कट्टरता की नीति तथा अमानुषिक व्यवहारों से अनेक देशी शासक-सामन्त बौखला उठे तथा हिंदू जनता विक्षुब्ध हो उठी। औरंगजेब की नीति के फलस्वरूप उसे मराठों और सिक्खों के साथ दीर्घकाल तक लडकर असफलता को झेलना पडा।

औरंगजेब का व्यक्तित्व रागालक तत्त्वों से रहित था। साहित्य, संगीत, कला, सौंदर्य, ऐश्वर्य तथा विलास के प्रति उसे घोर चिढ थी। उसने अपने कार्यकाल में संगीत की घोर उपेक्षा की। वेश्यावृत्ति तथा मद्यपान के पूर्ण निषेध के सम्बन्ध में उसने सरकारी फरमान भी जारी करवा दिए थे। परंतु उनका बंद हो जाना सरल नहीं था। उस समय अनेक सामन्तों के अनेक हरम थे और उनमें अनेक रक्षिताएँ और नर्तकियाँ भी थी।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद राजनीतिक स्थिति अत्यन्त बिकट तथा शोचनीय हो गई। राजनीति की दृष्टि से इस काल को घोर निराशा और अंध:कार का युग समझना चाहिए। औरंगजेब के उत्तराधिकारी एकदम अयोग्य, असमर्थ, विलासी, पंगु एवं नपुंसक सिद्ध हुए। केंद्रिय शासन के जीर्ण हो जाने से अनेक प्रदेशों के शासक स्वतंत्र हो जाए। आगरा में जाटों, राजस्थान में राजपूतों तथा पंजाब में बन्दा बैरागी एवं दक्षिण में मराठों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित की।

स्थानिक शासकों की स्वतंत्रता की चेष्टाओं से मुस्लीम सत्ता दिन-ब-दिन कमजोर होने लगी थी। उसकी कमर तोडने का काम विदेशी आक्रमणकारी नादिरशाह और अब्दाली ने किया।

समस्त देश में फैली शत्रुता, अशान्ति और शासकों की कमजोरी का लाभ उठाते हुए अंग्रेजों ने बकसर की लढाई में शाहआलम को पराजित कर मुगल साम्राज्य को अपनी कठपुतली बना दिया।

जहाँदारशाह, मुहम्मदशाह रंगीले जैसे विलासी एवं कमजोर शासकों के राज्य में नैतिकता, शौर्य, पराक्रम, स्वाधीनता की भावना ही समाप्त हो गई थी। वेश्याओं, तबलचियों, सारंगी वादकों के इशारों पर शासक नाचने लगे थे। राजमहलों में वेश्याओं और हिजडों की मनमानी चलने लगी। उनके इशारों पर उच्च पदों पर नियुक्तियाँ होने लगी। उन्हें श्रेष्ठ प्रासाद एवं अधिकार दिए जाने लगे। ऐसे अधिकार प्राप्त अधिकारी एवं शासक जनता पर मनमाने अत्याचार करने लगे।

सम्राट मुहम्मदशाह की रंगीली लीलाओं के कारण उन्हें इतिहासकारों ने रंगीले की उपाधि दी है। वह अपना समय नाच-रंग तथा मदिरापान में व्यतीत करता था। शाह को वेश्या ऊधमबाई से अनन्य प्रेम था। उससे उत्पन्न पुत्र ही उसका उत्तराधिकारी बना। वह कमजोर था। देशी राजाओं में भोग-विलास का अत्यधिक आकर्षण था। उनके दरबारों और महलों में वेश्याओं तथा रक्षिताओं की कमी नहीं थी। वास्तव में यह युग घोर नैतिक पतन की पराकाष्ठा का काल है। राजनीति की दृष्टि से यह काल मुगल साम्राज्य के वैभव एवं पतन का काल माना जाता है।

1.3.3 सामाजिक परिस्थितियाँ :

1. घोर अध:पतन का युग :

सामाजिक दृष्टि से रीति काल को प्रारंभ से अंत तक घोर अध:पतन का युग कहा जाता है। इस काल में सामन्तवाद का बोलबाला था। सामन्तवादी व्यवस्था के होनेवाले सारे दुर्गुणों एवं दोषों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव जनसाधारण के जीवन पर पडा रहा था। सामाजिक व्यवस्था का केंद्रबिंदू बादशहा था। बादशहा के अधीन मनसबदार, अमीर-उमराव थे। अमीर-उमराव एवं मनसबदारों के बाद ओहदों के अनुसार दूसरे कर्मचारी थे। सब अपने से उपरवाले को प्रसन्न एवं खुश रखने में मग्न एवं अपनी कर्तव्यपूर्ति समझते थे। उपरवाले नीचेवालों को मात्रा सम्पति समझते थे। उनका अस्तित्व केवल अपने लिए मानते थे। उपर से नीचे तक यह शासकों का वर्ग था। यह वर्ग किसान-मजदूर एवं सेठ-साहुकार तथा व्यापारी वर्ग था। किसान-मजदूर एवं श्रमजीवियों की कमाई का शोषण सेठ-साहुकार तथा व्यापारी करते थे। किसान, मजदूर एवं श्रमजीवियों का शासक और सेठ-साहूकार एवं व्यापारी शोषण करते थे। किसान तथा श्रमजीवियों का निम्न वर्ग सभी ओर से शोषित एवं पीडित था। अकाल, अतिवृष्टि जैसी प्राकृतिक अपदाओं के साथ-साथ युद्धों, सेनाओं के प्रयाणों आदि के कारण इस वर्ग की आय के एकमात्र साधन कृषि की हानि होती थी। श्रमजीवी वर्ग को किसी न किसी की बेगार करनी पडती थी। बेगार करनेवाले श्रमजीवी मजदूर को पारिश्रमिक के नाम पर कोडे की मार झेलनी पडती थी।

शासक सामन्त और अमीर उमराव का वर्ग ऐश्वर्य और अमीर उमराव का वर्ग ऐश्वर्य और वैभव-विलास में डुबा हुआ था। सूरा और सुंदरी में डूबे हुए विलासी शासक-सामन्त काम कला की शिक्षा की ही बडी उपलब्धि मानते थे। शाहजहाँ की वैभवप्रियता, विलासलिप्सा और प्रदर्शन प्रवृत्ति का तत्कालीन सामन्तीय जीवन पर गहरा प्रभाव पडा था। परिणामस्वरूप पौरूष का ऱ्हास होकर केवल विलास और प्रदर्शन की प्रवृत्ति शेष रह गई थी। समाज में मनोबल की कमी और बौद्धिकता का अभाव निर्माण हुआ था।

2. नारी की स्थिति :

रीतिकाल में नारी केवल भोग तृप्ति बेजान यंत्र बन गई थी। बहु विवाह, बालविवाह, अनमेल विवाह, रखैल प्रथा, पर्दा प्रथा जैसी अनेकनिक कुप्रथाओं के बल पर नारी के व्यक्तित्व का संकोच किया गया था। अनेक छोटे-मोटे सामन्तों के पास रखैलों की भरमार थी। मुगल सम्राटों की अनेक पत्नियाँ, रखैलियाँ और परिचारिकाएँ केवल भोगदासी के रूप में जीवन-यापन करती थी। अनेक पत्नियाँ रखना और रखैलियाँ से घर भरना प्रतिष्ठा की बात मानी जाती थी। अनैतिक-नाजायज सम्बन्ध रखना और ऐसे सम्बन्धों से बच्चे पैदा करना साधारण बात मानी जाती थी। नारी की सम्पत्ति मानकर उसपर अधिकार स्थापित करना, उसको भोगना, उसका अपहरण करना अभिजात वर्ग के लोगों के लिए साधारण बात थी।

अनेक बेगमों, रखैलों एवं रक्षिताओं के होते हुए भी शासक सामन्त वेश्याओं के यहाँ पडे रहते थे। उनके इशारों पर लोगों के भाग्य का निर्णय तक हो जाया करता था। इसप्रकार से विलास में डूबे हुए ये लोग अपनी संतान की देखभाल तक नहीं करपाते थे। शासक सामन्तों के शिक्षक भी घटिया व्यक्ति होते थे। वे काम कला की शिक्षा देकर अपने कर्म की इतिश्री समझते थे।

लडकियों के साथ छेडछाड, तीतर-बटेर पालना और उन्हें लडाना शहजादों और राजकुमारों की दिनचर्या बन गई थी। विलासिनी माताओं की देखरेख के अभाव में राजकुमारियाँ और शहजादियाँ अपने महलों और हरमों में काम करनेवाले सामान्य कर्मचारियों और नौकरी के साथ प्रेम-व्यापार करने लग जाती थी। अनेक सपत्नियों के कारण पति से पूर्ण प्रेम प्राप्त न करनेवाली औरते अपनी प्रेम की भूख मिटाने और शारिरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए नाजायज सम्बन्ध रखती थी।

''यथा राजा तथा प्रजा'' की उक्ति इस काल पर पूर्णतया लागू होती है। नारी को केवल विलास और मनोरंजन का साधन मानना, उसके शारीरिक लावण्य और कोमलता को ही महत्त्व देने की सामन्तीय सोच का बुरा प्रभाव समाज पर हुआ था। समाज में नारी को केवल वस्तू के रूप में स्वीकारा जाता था। उसकी अनुपम शक्ति-संपन्न अन्तरात्मा की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। रुढि-परम्परा और अंधविश्वासों के कटघरों में उसे कैद कर उसपर अमानवीय अत्याचार किए जाते थे। नाशपान-वेश्यावृत्ति समाज-जीवन का अभिन्न अंग था।

3. नैतिक मूल्यों में गिरावट :

जनसाधारण की शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा, सम्पत्ति की रक्षा आदि का इस काल में कोई प्रबन्ध नही था। किसान-मजदूर के श्रम-माल का शोषण करना, उनपर अत्याचार करना शोषक शासकों कके लिए साधारण बात

थी। नैतिक मूल्यों में गिरावट आ गई थी। जनसामान्य में अंधविश्वास तथा रूढियाँ घरकर गई थी। ज्योतिषियों की वाणी, शकुनशास्त्र पर अगाध विश्वास था। उस समय की जनता में विलास की प्रधानता के कारण भक्ति की भावना मंद पड गई थी। जनता प्राय: अशिक्षित थी। वह भाग्यवादी बन गई थी। जनता में नागरिकता का पूर्ण अभाव था। स्वार्थांध होकर विलास के उपकरण जुटाना उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य रह गया था। सुंदर लडकियों का अपहरण करवा लेना, वेश्याओं को सम्मान देना, मनोरंजन के अनेक घटिया साधनों में लीन रहना तत्कालीन समाज की दशा को स्पष्ट करता हें कृषक समाज जीविका-निर्वाह के साधनों से रहित था। उसके श्रम का स्वामी बनकर शोषण करनेवाला सामन्त वर्ग भोगविलास में अंधा बन गया था। प्रशासन क्षेत्र में जागीरदारों का दबदबा था। उसके अत्याचारों से श्रमिक एवं किसान वर्ग पीडित था।

कला-कौशल और व्यापार की ओर भी शासान का ध्यान नहीं था। शासकों की ओर से उपेक्षित होने के कारण कला कौशल एवं व्यापार की हानि हो गई। सभ्यता और संस्कृति के ऱ्हास के कारण इस युग को आर्थिक संकटों को झेलना पडा।

सामाजिक विषमता, छुआ-छुत की भावना, जाति-व्यवस्था के कठोर बंधनों के कारण समाज में अनेक दरारें पडी थी। सामाजिक एकता के अभाव के कारण समाज विनाश की ओर बढ रहा था।

1.3.4 प्रतिनिधि कवि – सामान्य परिचय :

1.3.4.1 केशवदास :

केशवदास कालक्रम की दृष्टि से भक्तिकाल और प्रवृत्ति की दृष्टि से रीतिकाल के प्रमुख कवि है। उन्हें संधिकाल का कवि भी कहा जाता है। भक्त एवं रसिक दोनों रूपों में केशव अग्रणी स्थान के अधिकारी है। रीतीकाल के प्रवर्तक के रूप में केशवदास का सम्मान किया जाता है। रीतीबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि केशवदास आचार्यत्व और कवित्व को लेकर विद्वानों ने आज तक विवाद चलता रहा है। उनके व्यक्तित्व में आयार्यत्व, कवित्व, रसिकत्व और भक्ति का मणिकांचन योग दिखाई देता है। रीतिकाल के वे पहले कवि हैं जिन्होंने काव्यशास्त्र के सभी अंगों पर प्रकाश डाला हैं।

जन्म : केशवदास का जन्म एक धनाढ्य ब्राह्मण कुल में सं. 1612 में हुआ था। कई विद्वानों के मतानुसार केशवदास का जन्म सं. 1618 में हुआ था।

जन्मस्थान : केशवदास का जन्मस्थान ओरछा माना जाता है।

पिता : केशवदास जी के पिता का नाम काशीनाथ मिश्र था। वे उस समय के संस्कृत साहित्य के प्रकांडड पंडित माने जाते थे। उन्होंने संस्कृत में 'शीघ्र बोध' नामक ज्योतिष ग्रंथ का निर्माण किया था। राजा मधुकर शाह के केशवदास के पिता का विशेष आदर-सम्मानन करते थे।

परिवार : केशवदास का सम्बन्ध पण्डितों के उस परिवार से था, जहाँ नोकर और सेवक भी संस्कृत भाषा का व्यवहार किया करते थे। परिवार के विद्वत्ता पूर्ण वातावरण का प्रभाव केशवदास के साहित्य पर पाण्डित्य

प्रदर्शन के रूप में दिखाई देता है। संस्कृत पर जबरदस्त अधिकार रखनेवाले केशवदास ने ब्रज में काव्य लेखन किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में संस्कृत के कठिण शब्दों का प्रयोग किया है। अत: उन्हें 'कठिण काव्य प्रेत' भी कहा गया हैं।

आश्रयदाता : केशव ओरछा नरेस महाराज इंद्रजीत के दरबार में रहा करते थे। वहाँ उनका बहुत माना था। ओरछा नरेश उन्हें अपना गुरू स्वीकार करते थे और उन्होंने इन्हें 21 गाँव दान में दिये थे।

गुरू : रितीकाल के प्रमुख कवि बिहारी के गुरू के रूप में केशवदास का सम्मान किया जाता है। कई विद्वानों का मानना है की केशवदास बिहारी के पिता थे।

बहुमुखी व्यक्तित्व : केशवदास स्वाभिमानी, गंभीर विचारक, तथा दृढ परिचय के व्यक्ति थे। सुख, संपन्न परिवार में जन्म लेने के कारण उनमें धनलोलुपता नहीं थी। राजा इंद्रजीतसिंह की इन पर विरोध कृपा थी। बीरबल के वे प्रिय थे। उनके चरित्र में रसिकता, भावुकता, राजभक्ति, ओतप्रोत थी। रीति परम्परा उनका उल्लेख कवि, आचार्य, रीति परम्परा के प्रवर्तक, रीतिग्रंथों के प्रणेता एवं अलंकारवादी कवि तथा कठीण काव्य के प्रेत, हृदयहीन कवि, काव्य का नया मार्ग खोलनेवाले के रूप में किया जाता है।

मृत्यु : केशवदास की मृत्यु सं. 1682 में हुई थी परंतु कई विद्वान उनका समय सं. 1678 तक स्वीकार करते है।

रचनाएँ : केशवदास का हिंदी साहित्य में एक प्रतिष्ठित आचार्य एवं कवि दोनों ही दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी रचनाएँ यों हैं –

1) रसिका प्रिया, 2) कविप्रिया, 3) रामचंद्रिका, 4) रतनबानवी, 5) वीरसिंह देव चरित, 6) विज्ञानगीता, 7) जहाँगीर जसचंद्रिका, 8) नखशिख, 9) छंदमाला।

रसिकाप्रिया : रसिकप्रिया रस विवेचन से सम्बन्धित ग्रंथ है। इस ग्रंथ में प्रमुखत: शृंगार रस का वर्णन है, अन्य रसों का इन्होंने गौण रूप से वर्णन किया है। इस ग्रंथ के अंत में अनरस नाम से पाँच रस दोषों का निरुपण किया है। श्रृंगार रस निरूपण में नायक–नायिका भेद का निरूपण किया गया है। इस संबंध में केशव पर विश्वनाथ, भोज, भानुमिश्र का प्रभाव है। केशव ने श्रृंगार को रसराज मानकर उसमें अन्य रसों का समावेश किया है।

कविप्रिया : केशव की कविप्रिया में कवि–शिक्षा, अलंकार निरूपण और दोषों का वर्णन है। कवि शिक्षा प्रकरण में कवि के कर्तव्यों और कवियों के उत्तम, मध्यम, अधमादि भेदों का उल्लेख किया है। केशव की इस रचना पर भर्तुहरि और मम्मट का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें केशव में 23 दोषों का वर्णन किया है।

रामचंद्रिका : रामचंद्रिका एक महाकाव्य है। इसमें 39 प्रकाश या सर्ग है। इसमें रामचरित का गान वाल्मीकि की रामायण के आधार पर किया गया है। इसमें राम के पुनीत चरित का विवेचन है। इसमें अनेक छंदों और अलंकारों का प्रयोग किया गया है। अत: इसे छंदों और अलंकारों का पिटारा मात्र कहा गया है। इसके महाकाव्यत्व पर आपत्ति उठाई जाती है।

विज्ञानगीता : इसमें आध्यात्मिक विषयों की चर्चा है। यह प्रबन्ध काव्य माना जाता है। इसमें नाटक रुपक शैली को अपनाया है। इसका निर्माण 'प्रबोध चंद्रोदय' के आधार पर किया गया है।

छन्दमाला : केशव की यह छन्द संबंधी रचना है। यह एक छोटीसी पुस्तिका है। जिसमें साधारण रूप में छन्द संबंधी शिक्षा दी गयी है। इस रचना का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व है, विषय-विवेचन की दृष्टि से नहीं।

'वीरासिंह देव चरित', 'रतन बावनी', 'जहाँगीर जयचंद्रिका' आदिकालीन वीर चरित्रात्मक शैली की रचनाएँ हैं। रतन बावनी में कुछ पद प्रक्षिप्त है। इसमें ओरछा नरेश मधुकरशाह के पुत्र की वीरता का चित्रण है। वीरसिंह चरित में राजा इन्द्रजीतसिंह के भाई वीरसिंह की प्रशंसा का वर्णन है। जहाँगीर जसचंद्रिका में बादशाह जहाँगीर की प्रशंसा है। नखशिख श्रृंगार वर्णन से संबंधित ग्रंथ है।

विशेषताएँ :

श्रृंगारभावना : आचार्य केशव श्रृंगारी कवि थे। अपनी सहृदयता एवं रसिकता के द्‌वारा उन्होंने अकबर, बीरबल एवं राजा इंद्रजीत को भी प्रभावित किया था। केशव ने नखशिख चित्रण के द्वारा नायिका के रूप सौंदर्य की झाँकी प्रस्तुत की है। रसिक प्रिया, कवि प्रिया, नखशिख आदि में श्रृंगार ही प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है।

भक्तिभावना : आचार्य केशवदास ने रामभक्ति परंपरा में 'रामचंद्रिका' प्रबंध काव्य की रचना की है। उन्होंने रामभक्ति की है परंतु वे केवल राम के भक्त नहीं थे। उन्होंने रसरस्वती तथा अन्य देवी-देवताओं की भक्ति कर बहुदेववादी होने का प्रमाण दिया है। उनकी भक्ति भावना पर भक्तिकालीन भक्तिभावना का प्रभाव न होकर रीतिकालीन भक्ति भावना का प्रभाव था।

आश्रयदाताओं की प्रशंसा : रीतीकाल के अधिकांश कवि विभिन्न राजदरबारों के आश्रयदाताओं की प्रशंसा कर राजदरबारों से वृत्ति प्राप्त करते थे। केशवदास ओरछा नरेश के दरबार में रहते थे। उन्होंने राजा इंद्रजीत, इंद्रजीत के भाई वीरसिंह तथा जहाँगीर आदि की प्रशंसा की है। उन्होंने अपनी प्रशंसा, रसिकता और सहृदयता से इंद्रजीत, वीरसिंह, अकबर, बीरबल आदि को प्रभावित एवं प्रसन्न किया था।

रीति निरूपण : रीतीकालीन कवियों की प्रधान रीति निरूपण अर्थात लक्षण ग्रंथों की रचना करना था। केशवदास रीतीकालीन कवि थे। रीतीकाल के प्रवर्तक एवं प्रणेता के रूप में उनका सम्मान किया जाता है। उन्होंने 'कविप्रिय', 'रसिकप्रिया' आदि में रीती निरूपण किया है। वास्तव में उन्होंने संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों को ही आधार बनाकर अपने लक्षण ग्रंथों की रचना की है।

अलंकारिता : केशवदास दरबारी कवि होने के कारण तत्कालीन दरबारी काव्य की प्रवृत्ति के अनुरूप उनके काव्य के अलंकरण की प्रधानता उपलब्ध होती है। यह दरबारी विलासी मनोवृत्ति का प्रभाव रहा है। अलंकारों के बिना कविता-सुन्दरी सुशोभित नहीं होती ऐसी मान्यता रखनेवाले युगमें केशवदास का काव्य सृजन होने के कारण उन्होंने अपने काव्य में अलंकारों का समावेश किया है। इसमें मौलिकता का अभाव एवं कृत्रिमता ही अधिक दिखाई देती है। अनुभूति की कमी होने के अलंकार चमत्कार के फँसे केशव के काव्य में काव्यत्व

की हानि हो गई है। सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग करनेवाले केशव को 'अलंकारवादी कवि' के रूप में माना जाता है।

प्रकृति चित्रण : केशवदास के प्रकृति चित्रण की महत्त्वपूर्ण विशेषत: यह है कि उन्होंने परम्परा से प्रचलित उपमानों का प्रयोग न करके नये नये उपमानों एवं प्रतीकों को काव्य में स्थान दिया है।

संवाद योजना : एक कुशल कवि की कसोटी संवाद को काव्य के रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता मानी जाती है। केशवदास की संवाद योजना की प्राय: सभी समालोचकों ने प्रशंसा की है। डॉ. नरेंद्र ने केशव की संवाद-योजना की प्रशंसा करते हुए कहा है की, 'संवाद योजना के क्षेत्र में यह वाक्य इतना अनुडा है की इस सीमा तक हिंदी साहित्य का कोई भी कवि नहीं पहुँचा पाया है।'

भाषा : केशवदास की भाषा 'ब्रजभाषा' थी। किंतु साधारण पाठक के स्तर से ऊँची थी। संस्कृत मोह एवं पाण्डित्य प्रदर्शन के कारण ही उन्हें 'कठिण काव्य का प्रेत' या हृदयहीन कवि कहा है।

छंद : जहाँतक छंद की विविधता का प्रश्न है, हिंदी साहित्य का कोई भी कवि केशव की समानता नहीं कर सकता। छंदों की विविधता के कारण केशवदास द्‌वारा रचित 'रामचंद्रिका' को आलोचकों ने छंदो का अजायबघर या पिटारा कहा है।

काव्यरूप : केशव ने प्रबन्ध और मुक्तक दोंनो प्रकार के काव्यों का निर्माण किया है। रतन बावनी, वीरसिंह देव चरित, विज्ञानगीता, रामचंद्रिका प्रबंध काव्य है तो कवि प्रिया, रसिका प्रिया और नम्षशिख मुक्तक हैं।

रस : केशवदास श्रृंगार रस का चित्रण रसराज के रूप में करते हुए उसमें अन्य रसों का समावेश करते है।

विवादास्पद व्यक्तित्व : हिंदी साहित्य के इतिहास में केशवदास के कवित्व और आचार्यत्व को लेकर विवाद चलता रहा है। केशव आचार्य के नाते जितना महत्त्व रखते हैं उतना कवि के नाते नहीं। उनकी चित्तवृत्ति काव्यशास्त्रीय निरूपण में अधिक रमी है परंतु कई एक पंडितों और विद्‌वानों ने उनके आचार्य पदपर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए उन्हें कवि घोषित किया है। इस मत का समर्थन करनेवालों का दावा है कि केशव को आचार्यपद पर विराजमान करनेवाली दोनों पुस्तकें मौलिक न होकर संस्कृत के आचार्यों का अनुवाद मात्र है। केशव ने संस्कृत से अनुवाद करते समय कहीं स्थानों पर परिवर्तन किया है। परंतु ऐसे स्थानों पर गलतियाँ ही अधिक हुई है।

केशवदास की कवि के रूप में अस्वीकार करनेवालों की दृष्टि में वे केवल आचार्य है कवि नहीं। क्योंकि कवि के हृदय में जो अनुभूति होती है, वह केशव में नहीं है। उन्होंने केवल पंडिताई दिखाने का प्रयत्न किया है। तभी तो उनकी प्रसिद्ध रचना 'रामचंद्रिका' के विषय में एक आलोचन ने कहा है की, यह पुस्तक छंदों की नुमाईश और अलंकारों का पिटारा मात्र है। इस दृष्टिकोन से केशव न आचार्य सिद्‌ध होते है और न ही कवि।

केशव ने अपने काव्य में छंद, अलंकार और श्रृंगार रस को अत्याधिक महत्त्व दिया है। श्रृंगार का रसराज के रूप में स्वीकार करनेवाले केशव ने अलंकारों का प्रभावी प्रयोग किया है। उनकी कविता अलंकारों के मायाजाल में फँसी हुई दिखाई देती है।

आचार्य और कवि की भूमिका में फँसे केशव ने काव्य शास्त्रीय ग्रंथों में काव्यों का निरूपन करते समय कोई प्रौढ और गम्भीर विवेचन न कर केवल की मौलिकता इस बात में है कि उन्होंने पहली बार काव्य शास्त्र के लगभग सभी अंगोंपर प्रकाश डाला है। उनका महत्त्व उदाहरणों और नए वर्गीकरण करनेवाले के रूप में है।

केशव का जन्म और कार्यकाल भक्तियुग का है परंतु काव्यलेखन की प्रवृत्ति की दृष्टि से उन्हें रीतीकाल के अंतर्गत रखा जाता है।

1.3.4.2 बिहारी :

बिहारी रीतीकाल के अत्यन्त लोकप्रिय है। वे रीतिकालीन प्रणय भावना और श्रृंगार भावना के प्रतिनिधी कवि है। हिंदी साहित्य में श्रृंगारी कवि के रूप में उनका स्थान प्रमुखता से लिया जाता है। वे अनेक राजाओं के आश्रम में रहें। अनेक राजा उनके दोहों पर मुग्ध थे। अनेक राजाओं से मान सम्मान एवं वार्षिक वेतन पानेवाली बिहारी मिर्जा राजा जयसिंग के प्रिय थे। बिहारी की अक्षय कीर्ति का आधार उनकी रचना 'सतसई' है।

जीवनवृत्त :

जन्मस्थान : बिहारी के जन्मस्थान के संबंध में तीन मत प्रचलित है। ग्वालियर, बसुआ गोविंदपुरा और मयुरा। इन तीन स्थानों से इनका संबंध स्थापित किया जाता है। परंतु बिहारी के एक दोहे के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका जन्म ग्वालियर में हुआ, बाल्यवस्था में रहें, युवास्थाना में फिर ग्वालियर चले आए तथा प्रौढावस्था में मथुरा में रहे। इनके ग्वालियर में जन्म होने के पृष्ठ प्रमाण उपलब्ध है।

जन्मतिथि : बिहारी का जन्म सं. 1652 में ग्वालियर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

पिता : बिहारी के पिता के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद दिखाई देते है। उनके एक दोहे में पिता का नाम 'केशवराय' आया है। इसी कारण अधिकतर विद्वानों का विश्वास है कि यह 'केशवराय' ही रीतीकालीन प्रमुख कवि 'केशवदास' है। कई एक विद्वान इस मत का विरोध करते हुए कहते है कि केशवराय रीतीकालीन कवि केशवदास से भिन्न दुसरे कवि केशवराय थे। बिहारी जब आठ वर्ष के ये तब उनके पिता ग्वालियर छोडकर ओरछ गए थे। उनके साथ बिहारी ओरछा गए और पिता के साथ ओरछ से वृंदावन गए। वहाँ बिहारी ने साहित्य के साथ संगीत का अध्ययन किया।

भाई–बहन : बिहारी के एक भाई और एक बहन का होना बताया जाता है।

शिक्षा–दीक्षा एवं सम्मान :

बिहारी आठ साल की अवस्था में पिता के साथ ओरछा चले गए थे। वहाँ उन्होंने काव्य ग्रंथों का सम्यक अध्ययन किया। उनके पिता ओरछा छोडकर वृन्दावन चले गए तब बिहारी भी उनके साथ वृंदावन चले गए।

वृन्दावन में उन्होंने साहित्य के साथ संगीत का अध्ययन किया। वृन्दावन में इनकी शाहजहाँ से भेट हुई। वे उन्हें आगरा ले गए। वहाँपर उन्होंने फारसी शायरी का अध्ययन किया। शाहजहाँ के पुत्र के जन्मोत्सव में सम्मीलित अनेक राजाओं के सामने बिहारी ने अपनी काव्य निपुणता खुब परिचय दिखाया। जिससे प्रसन्न होकर अनेक राजाओं ने बिहारी की वार्षिक वृत्ति बाँध दी थी।

मिर्जा राजा जयसिंह उन्हें अधिक प्रिय थे। उनके सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है कि राजा जयसिंह अपनी नयी राणी के साथ विलास में इतने मग्न हो गए थे कि राजदरबार में आना भी उन्होंने छोड दिया था। लोगों ने बिहारी से कहा कि तुम ही कुछ कर सकते हो, तब बिहारी ने निम्मलिखित दोहा लिखकर राजा के पास भेज दिया,

'नहिं पराग नहि मधुर–मधु नहिं विकास इहिं काल।
अलि कलि ही सों बंध्यों, आगे कौन हवाल।।'

इस दोहे से मिर्जा राजा जयसिंह सतर्क हो गए और राजकाज देखने लगे। उन्होंने बिहारी को अपने दरबार में सम्मानीत स्थान दिया। वे बिहारी की एक–एक दोहे के लिए एक–एक अशरफी देते थे।

गुरू : बिहारी के निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी स्वामी नरहरिदास से संस्कृत–प्राकृत का अध्ययन किया। कई विद्वानों का मानना है कि बिहारी के गुरू हरिदासी सम्प्रदाय के महंत नरहरिदाय जीये।

पत्नी : डॉ. विजयेंद्र स्नातक के कथानानुसार बिहारी की स्त्री एक अच्छी कवयित्री थी।

बहु भाषा विद : बिहारी ने संस्कृत, प्राकृत एवं ब्रजभाषा के अनेक ग्रंथों का सूक्ष्म अध्ययन किया था। इन भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। उन्होने फारसी शायरी का अच्छा अध्ययन किया था।

बहुज्ञाता : साहित्य के साथ संगीत का अध्ययन करनेवाले बिहारी बछुज्ञाता थे। गणित, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल आदि विषयों का ज्ञान रखनेवाले बिहारी विद्वान, गम्भीर प्रकृतिवाले, सहिष्णु, भ्रमणशील, रसिक तथा अनुभवी व्यक्ति थे। उनका जीवन बुन्देलखंड, मथुरा, वृन्दावन, जयपुर में व्यतीत हुआ।

मुत्यू : पत्नी की मृत्यु के बाद वे संसार से विरक्त हो गए और वृंदावन में रहने लगें। सं. 1720 के आसपास में इनका शरीरपात हुआ।

रचनाएँ : बिहारी की एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' कही जाती है। हिंदी साहित्य में इस रचना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें 713 दोहे संकलित है। इतनी कम मात्रा में काव्य लिखकर अमरता प्राप्त करनेवाले बिहारी हिंदी साहित्य के एकमात्र कवि माने जाते है। बिहारी के दोहोंपर संस्कृत के काव्यशास्त्र की गहरी छाप दिखाई देती है। बिहारी के दोहों में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक परिस्थिती का प्रभावी एवं व्यापक चित्रण उपलब्ध होता है। भक्ति, नीति और श्रृंगार से ओतप्रोत बिहारी के दोहों से तीन–तीन अर्थ निकाले जा सकते है। गागर में सागर भर लेने की क्षमता रखनेवाले बिहारी की सतसई पर अब तक पयास से अधिक टीकाएँ लिखी हैं। जिससे इनकी लोकप्रियता स्पष्ट होती है। सतसई बिहारी की काव्यप्रतिभा,

काव्यानुभूति और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से श्रेष्ठ रचना है। उसमें सौंदर्यानुभूति, रसिकता एवं व्यग्यात्मकता का श्रेष्ठ समन्वय हुआ है। सतसई के कारण बिहारी हिंदी के कवियों में श्रेष्ठ स्थान के अधिकारी बन गए हैं। और उनकी रचना सतसई हिंदी काव्य की अपूर्व निधी सिद्ध हो गई है।

काव्य की विशेषताएँ :

भक्ति भावना : बिहारी सतसई में शक्ति के अनेक दोहे उपलब्ध होते हैं। सतसई के मंगलाचरण के रूप में रचित दोहा 'मेरी भव बाधा हरो' राधा नागरि सोइ।। जा तन की झाँई पर्रे स्थान हरित द्युति होई।।' बिहारी की भक्ति भावना का ज्वलंत प्रमाण है। इनकी किसी वाद-विशेष पर आस्था नहीं थी। उन्होंने समान भाव से रामकृष्ण और नरसिंह का स्मरण किया है। सगुण-निर्गुण की मुक्तकंठ से आराधना करनेवाले बिहारी ने नामस्मरण पर अत्यंत बल दिया है। माना जाता है कि अनेक भक्ति के दोहे लिखनेवाले बिहारी ने भक्त का हृदय नहीं पाया था। उन्होंने राधा और कृष्ण के जीवन के जीवन के घोर श्रृंगारी और वासनात्मक चित्र उतारे हैं। उनके भक्ति विषयक दोहे केवल काव्य के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। भक्ती के हृदय की सी पवित्रता, आर्दता, कोमलता, दीनता और भावमग्नता उनमें समानत: नहीं है। अत: बिहारी की भक्त कवि की कोटि में नहीं गिना जाता।

श्रृंगार चित्रण : बिहारी एक श्रृंगारी कवि है। वे श्रृंगार संयोग वर्णन में अधिक रमे है। वियोग पक्ष के लिए आवश्यक हृदय की द्रवणशीलता, सहानुभूति की कमी होने के कारण उन्होंने संयोग वर्णन ही अधिक किया है। उनकी रचनाओं में वासना जन्य 'भाव भाव' एवं विविध चेष्टाओं का अंकन बडी सूक्ष्मता से हुआ हैं उन्होंने राधा-कृष्ण के माध्यम से श्रृंगार वर्णन किया है। उन्होंने राधाकृष्ण की सामान्य नायक और नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है। इनकी प्रेम लीलाओं का सूक्ष्म तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। श्रृंगारिकता की कोई भी स्थिति उनकी सूक्ष्म दृष्टि से ओझल नहीं हुई है। इसमें नख-शिख वर्णन, नायिका भेद, षट्ऋतु वर्णन है। बिहारी का श्रृंगार वर्णन वासनात्मक और अश्लील है। इसमें प्रेम का कोई उच्चरूप नहीं है। उसकी दृष्टि शारीरिक सौंदर्य तक सीमित रही हैं इसमें अत्मिक सौंदर्य का अभाव है।

बाह्याडम्बर का विरोध : किसी भी प्रकार के दिखावेपन से बिहारी को चिढ थी। तत्कालीन परिस्थितियों में ढोंग करके भोली-भाली जनता को लुटना या ठगमा आम बात बन गई थी। इस वृत्ति पर प्रहार करना युग की माँग थी। अत: बिहारी ने अत: करण की शुद्धता पर अधिक बल देते हुए दिखावे एवं बाह्याडम्बर का विरोध किया है। उनके अनुसार माथे पर तिलक लगाकर माला अपने से जीव का कल्याण संभव नहीं है। सच्चे मन से राम का स्मरण कर, मन को एकाग्र एवं स्थिर करके, अंतर्गत की शुद्धि द्वारा ही मानव मुक्ति का अधिकारी ही सकता है -

'जप माला छार्पे तिलक, सर्रे न एर्को कामु।
मन काँचे नार्चे वृथा, साँचे राँचे रामु।।'

नीती कथन : बिहारी ने अपने नीति संबंधी दोहों में लोक व्यवहार के आधारपर पर्याप्त शिक्षा दी है। उनके

नीति परक दोहों में मानव जीवन की सफलता एवं शांति की बात कही गई है। उनके नीति कथन में अनुभव की गहराई होने के कारण उन्हे 'अनुभूति का भण्डार' कहा जाता है।

प्रकृति चित्रण : प्रकृति चित्रण की परम्परागत शैली को बिहारी ने अपनाया है। 'ऋतु वर्णन' उसी प्रतिफल है। प्रकृति का आलंबन, उद्दीपन, अलंकरण एवं मानवीकरण में बिहारी की प्रवीणता उपलब्ध होती है।

काव्य रूप : 'बिहारी सतसई' मुक्तक रचना है। मुक्तक के सभी गुण सतसई में उपलब्ध होते है। भाषा की समाहार शक्ति और समाजशक्ति दर्शनीय है। बिहारी के एक दोहे में अनेक भाव भरे है। इसलिए कहा जाता है कि, ''बिहारी सतसई एक ऐसी मीठी रोटी है, जिसको जिधर से जोडा जाय, उधर से मीठी ही लगती है।''

भाषा एवं शब्द प्रयोग : बिहारी ने शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। साहित्यिक ब्रज भाषा का रूप इनके दोहों में निखरकर आया है। इस भाषा पर उनका पूण अधिकार था। इनकी भाषापर बुन्देलखंडी और पूर्वी हिंदी का प्रभाव है। तत्कालीन राजदरबारी के प्रभाव के कारण कहीं-कहीं अरबी-फारसी शब्द भी आ गए हैं। भाषा में लोकोक्तियाँ एवं मुहावरों का भी प्रयाग दिखाई देता है। इनका शब्द गठन और वाक्य विन्यास व्यवस्थित है। उन्हें शब्द और वर्ण के स्वभाव की परख थी। नाद सौंदर्य इनकी भाषा का सहज गुण सतसई में उपलब्ध होता है। उनकी भाषा लय और संगीत और वर्तन की विशेषताओं से युक्त है। उनकी भाषा प्रांजल, प्रौढ, मधुर और सरस है।

अलंकार : रीतिकालीन अन्य कवियों की तरह बिहारी अलंकारवादी कवि नहीं थे। फिर भी उन्होंने स्वच्छन्द रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है। उनके एकही दोहों में अनेक अलंकार मिलते है। परम्परागत सभी अलंकारों का उन्होंने प्रयोग किया है। उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि शब्दलंकारों का प्रयोग करनेवाले बिहारी का प्रिय अलंकार रहा है - 'रुपक'।

छंद : बिहारी ने सतसई में केवल दो छंदों - दोहा तथा सोरठा का प्रयोग किया है। दोहा छंद बिहारी का प्रिय छंद रहा है। उनके द्‌वारा प्रयुक्त दोहा छन्द की अधिकता देखकर कुछ आलोचकों ने कहा है कि बिहारी केवल दोहा छंद ही जानते थे। अन्य छंदों का उन्हें ज्ञानहीं था।

1.3.4.3 भूषण :

हिंदी साहित्य के रीतिकाल में भूषण का स्थान सबसे अलग तथा महत्त्वपूण हैं क्योंकि जब अन्य रीतिकालीन कवि श्रृंगारी प्रवृत्ति का साहित्य निर्मित कर रहे थे, तब भूषण ने ओज गुण प्रधान वीर रस का साहित्य रचा। अत: रीतिकाल में भूषण ही ऐसे कवि हुए जिन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों में हिंदू राष्ट्रीय गौरव की रक्षा करते हुए वीरों के हुद्यों में जागृति एवं स्फूर्ति उत्पन्न की।

जन्म एवं जन्मस्थान : वीर रस के कवि भूषण का जन्म आ. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार संवत 1670 (सन 1613 ई.) में हुआ। वे मूलत: टिकवापुर गाँव के निवासी थे जो वर्तमान में उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले के घाटमपुर तहसील में आता है।

जाति : भूषण कान्यकुब्ज ब्राह्मण जाति में जन्मे थे।

पिता : भूषण के पिता का नाम रत्नाकर था।

भाई : रीतिकाल के महत्त्वपूर्ण कवि आचार्य चिंतामणि एवं मतिराम भूषण के भाई थे। कहा जाता है कि एक दिन भाभी के ताना देनेपर उन्होंने घर छोड दिया और कई आश्रम में रहें।

आश्रयदाता : इन्हें जीविका निर्वाह हेतु अनेक आश्रयदाताओं के पास जाना पडा। इनके आश्रयदाताओं में महाराज छत्रसाल और छ. शिवाजी इनको अधिक प्रिय लगे। छत्रसाल और शिवाजी भूषण के मनपर राज्य करनेवाले आश्रयदाता थे, जो इनके वीर काव्य के नायक हुए। छत्रपति शिवाजी महाराज और पन्ना के महाराज छत्रसाल के यहाँ भूषण के बडा समान्न प्राप्त हुआ है।

उपाधि : भूषण यह उन्हें प्राप्त उपाधि है जो उन्हें चित्रकूट के राजा हुदयराम के पुत्र रुद्रशाह ने दी थी।

मृत्यु : भूषण संवत 1772 तदनुसार (इ. सन 1715) में परलोकवासी हो गए।

भूषण के परिवार के विषय में कुछ भी निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं होती किंतु सजेती कस्बा में एक कवि भूषण का एक परिवार रहता है जो इस बात का दाबा करता है कि वो ही कवि भूषण के वंशज है तथा उनके पूर्वज अंग्रेजों के शासनकाल में टिकवांपुर गाँव छोडकर यहाँ बस गए। आज भी उनकी जमीन टिकवापुर गाँव में मौजूद है। कवि भूषण की बाद कि पीढि का सति माता का एक मंदिर टिकवापुर में बना हैं जिसे यह परिवार अपनी कुलदेवी मानता है।

रचनाएँ : विद्वानों के अनुसार भूषण द्वारा रचित छट ग्रंथों का मिलता उल्लेख जिसमें – 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी', 'छत्रसाल दशक', 'भूषण उल्लास', 'भूषण हजारा', 'दूषण उल्लास' आदि महत्त्वपूर्ण है।

भूषण द्वारा रचित काव्य–ग्रंथों में से तीन पुस्तकें प्रकाशित एवं उपलब्ध है। 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी', तथा 'छत्रसालदशक'।

'शिवराजभूषण' तो रीतिकालीन काव्य परंपरा के अनुरूप अलंकार ग्रंथ है। 'शिवाबावनी' में छत्रपति महाराष्ट्रीय वीरशिरोमणि छ. शिवाजी का जीवन वृत्त है जिसे ओज गुण प्रधान जीवनी माना जाता है। 'छत्रसालदशक' में पन्ना के महाराज 'छत्रसाल' संबंधी जीवन परिचय है। इन तीन ग्रंथों के अतिरिक्त 'भूषण उल्लास', 'दूषण उल्लास' तथा 'भूषण हजारा', नामक तीन ग्रंथों की रचना भी रीतिकालीन साहित्य में योगदान माना जाता है।

भूषण वीर रस के श्रेष्ठ कवि :

हिंदी साहित्य की वीरकाव्य परंपरा में रचित भूषण का काव्य वीररस से ओतप्रोत है। इनकी रचनाएँ – 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसालदशक' भूषण के वीर भावना की सच्ची निदेशक मानी जाति है। यह काव्य अपने युग के वीर नायकों के आदर्श चरित्र को प्रस्तुत करता है। जिसमें छत्रसाल और छ. शिवाजी के शौर्य, साहस, प्रभाव और पराक्रम, तेज व ओज का जीवंत वर्णन मिलता है। यह रचनाएँ वीर काव्य में

देश की संस्कृति व गौरव का गान है। भूषण ने अपने काव्य में औरंगजेब के प्रति आक्रोश सर्वत्र व्यक्त किया है।

भूषण द्वारा रचित वीर-रस प्रधान साहित्य से तत्कालीन हिंदू जाति को विशेष उत्साह मिला, इसी कारण भूषण की कविता कवि-कीर्ति संबंधी एक अविचल सत्य का दृष्टांत मानी जा सकती है। भूषण अन्य कवियों की भांति झूठी प्रसंना ना कर अपने आश्रयदाताओं के शौर्य-वर्णन में अद्वितीय बने रहे।

आचार्यत्व :

'शिवराजभूषण' नामक ग्रंथों में उन्होंने अलंकारों के लक्षण देकर उदाहरणों में छ. शिवाजी तथा उनकी वीरता और यश पर कवित्व और सवैये लिखे है। अलंकारों का लक्षण संबंधी विवेचन प्रौढ नहीं है वस्त्र कहीं - कहीं पर तो भ्रांत है। किंतु उदाहरण अत्यंत सरस और उत्कृष्ठ बन पडे है।

'भूषण उल्लास' और 'दूषण उल्लास' अलंकारों और दोषों पर लिखे गये ग्रंथ है। पर वे अप्राप्य है। 'शिवराज भूषण' में उन्होंने 105 अलंकारों का नाम गिनाया है। बहुतसे अलंकरों के भेदों - उपभेदों को छोड दिया है। अधिक स्थलोंपर लक्षण अस्पष्ट तथा अनुपयुक्त है। लक्षणों की गडबडी, पंचम प्रतीष, संकर, विरोध, छेकानुप्रास, भ्रम संदेह, लाटानुप्रास और स्मरण अलंकारों में है। इससे स्पष्ट है कि इनमें आचार्यत्व की प्रेरणा केवल उपर की रही है, अत: इस क्षेत्र में इनका अधिक महत्त्व नहीं है।

भाषा :

भूषण ने अपने काव्य की रचना 'ब्रज' भाषा में की है। वे सर्वप्रथम कवि है जिन्होंने ब्रजभाषा को वीररस हेतू अपनाया।

भूषण की 'ब्रजभाषा' में उर्दू, उरबी, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों की भरमार है। जंग, आफताब, फौज आदि शब्दों का खूलकर प्रयोग किया है। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग सुंदरता से हुआ है।

व्याकरण की अव्यवस्था, शब्दों का तोड-मरोड, वाक्य विन्यास की गडबडी होते हुए भी भूषण की भाषा बडी सशक्त हवं प्रवाहमयी रही है।

भूषण की राष्ट्रीय चेतना :

भूषण राष्ट्रीय भावों के गायक है। उनकी वाणी पीडित प्रजा के प्रति एक आश्वासन है। औरंगजेब की कटुरता एवं हिंदुओं के प्रति नकरत ने जनता को राष्ट्र से तोडा था। भूषण ने राष्ट्रीय वीर पुरुषों का गुणगाण कर प्रजा में राष्ट्रीय चेतना को भरने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने स्वदेशानुराग, संस्कृति अनुराग, साहित्य अनुराग महापुरुषों के प्रति अनुराग, उत्साह आदि का वर्णन किया है। भूषण ने तत्कालीन जनता की वाणी को अपनी कविताओं का आधार बनाया है।

1.3.4.4 घनानंद :

रीतिकाल की तीन प्रमुख काव्यधाराओं - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त के अंतिम काव्यधारा

(रीतिमुक्त) के अग्रणी कवि माने जाते है। रीतिकालीन कवियों में घनानंद का अतिविशिष्ट स्थान रहा है। विद्वत समाज में यह उक्ति प्रसिद्ध है – 'अन्य कवि गढिया, घनानंद जडिया' अर्थात अन्य कवि तो कविता को गढते है परंतु घनानंद कविता में एक शिल्पकार की भाँति शब्दों को रत्नरूप में जडता है।

आ. रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें साक्षात रसमूर्ति और ब्रजभाषा काव्य के प्रधान स्तंभों में से एक माना है।

जन्म एवं जन्मस्थान : आ. शुक्ल के मतानुसार इनका जन्म संवत 1746 में दिल्ली में हुआ था।

जाति : घनानंद जाति से कायस्थ थे।

गुरू : घनानंद अबुलफजल के शिष्य माने जाते है।

आश्रयदाता : घनानंद दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह 'रंगीले' के दरबार में मीर मुंशी पद पर नियुक्त थे। वही उनके आश्रयदाता माने जाते है।

घनानंद का वैराग्य : दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह 'रंगीले' के मीर मुंसी, सम्राट के 'खास कलम' आदि उपाधियों से सुशोभित घनानंद के विरोधियों ने एक दिन दरबार में कहा की मुंशी मीर बहुत अच्छा गाते है। बादशहाने घनानंद को गाने के लिए कहा परंतु घनानंद ने बहुत टालमटोल की। लोगों की सूचना के अनुसार बादशाह ने घनानंद की प्रेमिका सुजान नामक वेशा को दरबार में बुलाया और सुजान के कहने पर घनानंद ने सुजान की तरफ मुँह और बादशाह की तरक पीठ करके ऐसा मधूर गाना गया कि बादशाह और सभी दरबारी बडे खुश हो गए परंतु बादशाह घनानंद द्वारा की गई बेअदबी से नाराज हुए और घनानंद को शहर से निकल जाने का हुक्म दिया। घनानंद जब जाने लगे तो उन्होंने अपनी प्रेमिका सुजान को भी अपने साथ चलने की बिनर्ती की जिससे सुजान ने इन्कार किया। जिसके प्यार में पागल होनेपर उसे शहर से निकाल गया उसी प्यार ने उसे धोका दिया। परिणामत: घनानंद, वैराग्य धारण कर वृंदावन चले गये। वहाँ निंबार्क संप्रदाय में दीक्षित वैष्णव हो गए।

मृत्यु : संवत 1746 वि. में नादिरशाह के आक्रमण के समय मथुरा में सैनिकों द्वारा कत्लेआम हुआ उसमें घनानंद की मृत्यु हो गई ऐसा माना जाता है।

रचनाएँ : घनानंद द्वारा रचित ग्रंथों में – 'सुजान सागर', 'विरहलीला', 'कोकसार', 'रस केलिवल्ली' और 'कृपाकांड' आदि ग्रंथों के नाम गिने जाते है। इनके अतिरिक्त कविता तथा सवैयों के फुटकर संग्रह भी है। जिसमें डेढ सौं से लेकर चार सौं तक कवित तथा सवैयों का संग्रह मिलता है। जिनमें प्रिया प्रसाद, ब्रज व्यवहार, व्यंग्य वेली, कृपाकंद निबंध, गिरे गाथा, भावना प्रकाश, रसवसंत इत्यादि अनेक विषय वर्णित है। इनके द्वारा रचित ब्रजभाषा में 'विरहलीला. में फारसी के छंद है।

इन जैसी शुद्ध, सरस तथा शक्तिशालिनी ब्रजभाषा में लेखन करने में कोई कवि समर्थ नहीं नजर आता। वे 'वियोग श्रृंगार' के प्रधान मूक्तक कवि है। इन्होंने अपनी कविताओं में 'सुजान' को संबोधित किया है। जो श्रृंगार में नायक के लिए, कथा भक्ति में कृष्ण के लिए प्रयुक्त माना जा सकता है। इनकी कविता भावप्रधान है। 'लक्षणा' तथा 'व्यंजना' शब्दशक्ति का अनुपम प्रयोग इनकी कविता में दृष्टिगोचर होता है। इस क्षेत्र में

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा संकलीत पुस्तकों का महत्त्व अधिक माना जाता है। प्रथम 'घनानंद कवित' जिसमें 502 कवित संग्रहित है। द्वितिय संकलन सन 1945 में प्रकाशित हुआ जिसमें घनानंद के 500 पद तथा उनकी 'वियोग बेलि', 'यमुना यश', 'प्रीति पावस' तथा 'प्रेम पत्रिका' रचनाओं का संग्रह है।

भावपक्ष : घनानंद मुख्यता श्रृंगार रस के कवि है। वियोगश्रृंगार में इनकी वृत्ति अधिक रमी है। आ. शुक्ल के अनुसार घनानंद 'वियोग-श्रृंगार' के प्रधान मुक्तक कवि हैं प्रेम की पीर लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। इनका प्रेम एकनिष्ठ एवं अंतर्मुखी है, अत: इसमें हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं का अत्यंत मार्मिक अंकन हुआ है। इसमें विभाव पक्ष का कम ही चित्रण मिलता है। रूप छटा के वर्णन प्रसंगों में भी इनका ध्यान प्रभाव पर अधिक रहा है। इनका वियोग वर्णन अत्यंत स्वाभाविक और मनोरम है।

इनकी कविता में 'सुजान' शब्द का अधिक प्रयोग मिलता है। जीवन के अंतिम दिनों में इन्होंने वैराग्य धारण किया था। परंतु प्रेमिका 'सुजान' को वे भूला नहीं पाएँ। इनकी कृष्ण-भक्ति संबंधी रचनाओं में भी सूर और तुलसी के हृदय की तन्मयता, सात्विकता और निच्छलता कदाचित ही मिले। घनानंद प्रेम मार्ग के सफल यात्री है।

कलापक्ष : ब्रजभाषा का विरहानुभूति का यह काव्य प्रेम की आध्यात्मिक परिणिती करता है। अपनी प्रेमिका 'सुजान' के प्रति उत्कट विरह भावना घनानंद में थी। यह विरह घनानंद के लिए वरदान सिद्ध हुआ है और घनानंद ने अपने विरह अभिव्यक्ति के प्रयास में 'सुजान' के साथ अपने प्रेम को अमर बना दिया है। वस्तुवर्णन, भाव निरूपण, रस निरूपण और सौंदर्य चित्रण ने घनानंद के साहित्य का भावपक्ष समृद्ध बना देती है।

कला पक्ष : ब्रजभाषा का चलतापन और सफाई जो घनानंद में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनकी साहित्यिक ब्रजभाषा में सहज माधुर्य विद्यमान है।

भाषा : घनानंद ब्रजभाषा के प्रभावी कवि है। ऐसा जान पडता है की घनानंद ब्रजभाषा की नाडी पहचानते थे। उसके निश्चित प्रयोगों को जानते थे। उनकी भाषा में सर्वत्र स्वछंदता, एकरूपता एवं सुधडता के दर्शन होते है।

शब्द-शक्ति : घनानंद ने सबसे अधिक उक्ति-वैचित्रय का सहारा लिया है। इनके काव्य में अभिधा की अपेक्षा व्यजना-लक्षणा का प्रयोग पाया जाता है।

अलंकार : घनानंद के काव्य में जहाँ रस और भावों का अधिक्य है वहाँ अलंकारों ने उन्हें और भी अधिक सजीवता एवं प्रभावता प्रदान की है। घनानंद ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का खुलकर प्रयोग किया है।

गुण : घनानंद काव्य में सर्वत्र माधुर्य गुण की प्रधानता है।

छंद : घनानंद ने विभिन्न प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। सवैया, कवित्त, त्रिलोकी, ताटंक, निसाती, सुमेरू, शोअन, त्रिभंगी, दोहा, चौपाई तथा घनाक्षरी पद आदि पाए जाते हैं।

1.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 अ) निम्नलिखित वाक्यों में के नीचे दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) रीतिकाल का कालखंड ..... से ..... तक माना जाता है।

अ) 1050 से 1375 ब) 1375 से 1700 क) 1700 से 1900 ड) 1900 से आजतक

2) इस युग के कवियों को रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और ..... इन तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है।

अ) रीतिमुक्त ब) धार्मिक क) वीर रस के कवि ड) श्रृंगारिक

3) मिश्रबंधुओं ने रीतिकाल को ..... नाम से अभिहित किया है।

अ) रीतिकाल ब) श्रृंगारकाल क) अलंकृत काल ड) कला काल

4) रमा शंकर शुक्ल 'रसाल' ने रीतिकाल को ..... नाम से पुकारा है।

अ) रीतिकाल ब) आदिकाल क) कलाकाल ड) भक्तिकाल

5) आ. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार सन 1700 से 1900 तक का कालखंड ..... नाम से जाना जाता है।

अ) छायावाद ब) रीतिकाल क) आरंभकाल ड) मध्यकाल

6) रीति शब्द का सामान्य अर्थ ..... है।

अ) रीत ब) छंद क) पद्धति या विधि ड) अलंकार

7) मिश्रबंधु विनोद के रचनाकार ..... है।

अ) मिश्रबंधु ब) आ. रामचंद्र शुक्ल क) डॉ. रामकुमार वर्मा ड) डॉ. नर्गेंद्र

8) ..... को इतिहासकारों ने रंगीले की उपाधि दी है।

अ) अकबर ब) औरंगजेब क) सम्राट मुहम्मदशाह ड) पृथ्वीराज चौव्हाण

9) सामाजिक दृष्टि से रीतिकाल घोर ..... का युग है।

अ) अधपतन ब) अर्थसंपन्न क) गौरवशाली ड) पराक्रम

10) रीतिकाल में ..... रस की प्रधानता पायी जाति है।

अ) वीर ब) करुण क) श्रृंगार ड) भक्ति

11) बिहारी सतसई में ..... दोहों का संकलन है।

अ) 700 ब) 713 क) 900 ड) 715

12) बिहारी का जन्म ..... में माना जाता है।

अ) सन 1652 ब) संवत 1700 क) सन 1600 ड) सन 1212

13) बिहारी ने ..... भाषा का प्रयोग किया है।

अ) हिंदी ब) ब्रज क) पिंगल ड) डिंगल

14) ..... के कठिण काव्य का प्रेत कहा जाता है।

अ) केशवदास ब) भूषण क) बिहारी ड) घनानंद

15) केशवदास का जन्म समय ..... माना जाता है।

अ) संवत 1612 ब) संवत 1700 क) संवत 1600 ड) संवत 1616

16) केशवदासकृत ..... रचना हिंदी का महाकाव्य है।

अ) नखशिख ब) रसिल प्रिया क) छंदमाला ड) रामचंद्रिका

17) रीतिकाल में समाज व्यवस्था ..... थी।

अ) साम्यवादी ब) पूँजीवादी क) सामंतवादी ड) समतावादी

18) रीतिकाल में सामंत ..... में रत थे।

अ) भोग-विलास ब) प्रेम क) पराक्रम ड) भक्ति

19) ..... में कलापक्ष की प्रधानता रही है।

अ) आदिकाल ब) रीतिकाल क) भक्तिकाल ड) आधुनिककाल

20) भूषण ..... रस के कवि माने जाते है।

अ) श्रृंगार ब) करुण क) शांत ड) वीर

21) ..... ने भूषण को 'कविभूषण' यह उपाधि प्रधान की है।

अ) राजा छत्रसाल ब) रूद्रशाह क) औरंगजेब ड) छ. शिवाजी महाराज

22) 'शिवराजभूषण' रीतिकालीन परंपरा के अनुसार ..... ग्रंथ है।

अ) अलंकार ब) प्रेम क) श्रृंगार ड) आप्राप्य

23) घनानंद ..... काव्यधारा के कवि है।

अ) रीतिबद्ध ब) रीतिसिद्ध क) रीतिमुक्त ड) स्वच्छंद

24) घनानंद जाति से ..... थे।

अ) कायस्थ ब) ब्राह्मण क) मुस्लीम ड) वैश्य

25) घनानंद की मृत्यु ..... में हुई।

अ) संवत 1746 ब) संवत 1946 क) संवत 1818 ड) संवत 1786

26) घनानंद की प्रेमिका का नाम ..... है।

अ) मीरा ब) राधा क) सुजान ड) मथुरा

27) घनानंद का साहित्य ..... रस का उदाहरण है।

अ) करुणा ब) वीर क) शांत ड) विरह

प्रश्न 1 आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम लेखक कौन हैं ?
2. 'मिश्र बंधु विनोद' यह रचना किस की है ?
3. आ. शुक्ल जी ने आदिकाल का प्रारंभ कहाँ से माना है ?
4. डॉ. रामकुमार वर्मा ने आदिकाल को किस नाम से पुकारा है ?
5. 'बीजवपनकाल' यह नाम किसने दिया है ?
6. किसके निधन के पश्चात् उत्तरी भारत में केंद्रीय सत्ता का ऱ्हास हो गया ?
7. 10 वी शताब्दी के अंत में गजनी का राज्य किसके हाथ में आया ?
8. शक्तिशाली राजा पृथ्वीराज चौहान पर अनेक बार किसने आक्रमण किए ?
9. सोमनाथ का समृद्ध मंदिर किसने लूटा ?
10. मध्यकाल की सबसे जबान की तेज नायिका किसे कहा जाता है ?
11. संयोगिता किस रासो की प्रमुख नायिका है ?
12. 'बीसलदेव रासो' के रचयिता कौन हैं ?
13. 'बीसलदेव रासो' के पद किस राग में गाने के लिए लिखे हैं ?
14. कवि चंदवरदायी किस राजा का दरबारी कवि था ?
15. पृथ्वीराज रासो के नायक कौन है ?
16. 'बीसलदेव रासो' के नायक कौन हैं ?
17. 'बीसलदेव रासो' में कितने छंदों का प्रयोग हुआ है ?
18. उडीसा के राज्य में कौन सी खानें थी ?
19. आदिकाल का कालखंड कहाँ से कहाँ तक माना जाता है ?
20. पृथ्वीराज रासो में प्रमुख रूप से कौन से दो रासों का चित्रण है ?

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

हरम : राजमहल का वह भाग जिसमें रानियाँ रहती है।

अध:पतन : विनाश

समाहार : संग्रह, समूह, ढेर

हिजडा : तृतीयपंथी

पौरूष : पुरुषार्थ, पराक्रम

अकाल : सूखा

मुकाल काव्य : परंपरागत काव्य के बंधने से मुक्त

पराग : पुष्परेणु

हवाल : हालत

सालंकार : अलंकार सहित

अली : भ्रमर

लक्षण ग्रंथ : काव्य के विविध लक्षणों की व्याख्या करनेवाले ग्रंथ

कवित्त : काव्य का कलात्मक पक्ष

आचार्यत्व : विद्वाण / लक्षण ग्रंथों के निर्माता

रीतिबद्ध : 'रीति' (पद्धती)/शैली) की बंधी हुई परिपाटी पर काव्य रचना करणा

रतिमुक्त : 'रीति' (पद्धति) से बंधी हुई परिपाटी से मुक्त काव्य रचना करना

रीतिसिद्ध : 'रीति' (पद्धति) के बंधन को स्वीकार करते हुए काव्य रचना करना।

1.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

प्रश्न 1. अ)

1. 1700 ते 1900	2. रीतिमुक्त	3. अलंकृत काल	4. कलाकाल
5. रीतिकाल	6. पद्धति या विधि	7. मिश्रबंधु	8. सम्राट मुहम्मदशाह
9. अध:पतन	10. श्रृंगार	11. 713	12. सं. 1652
13. ब्रज	14. केशवदास	15. सं. 1612	16. रामचंद्रिका
17. सामंतवादी	18. भोग–विलास	19. रीतिकाल	20. वीर
21. रूद्रशाह	22. अलंकार	23. रीतिमुक्त	24. कायस्थ
25. संवत 1746	26. सुजाण	26. विरह	

1.7 सारांश :

हिंदी साहित्य के उत्तरमध्यकाल में (सं. 1700 से 1900 ई. तक) भौतिकवादी दृष्टिकोन केंद्र में रहा है। रीतिकाल नाम से परिचित इस कालखंड में साहित्य लोकसाहित्य तथा सिद्धांत साहित्य के बीच फसा नजर आता है। पांडित्य प्रदर्शन की प्रबल भावना के कारण कवि कर्म तथा आचार्य कर्म का एक साथ निर्वाह करनेवाले साहित्यकारों का प्रभाव रहा है। भावुकता एवं कला का उद्‌भुत समन्वय करनेवाले कवि ने काव्य को शुद्ध कला के रूप में ग्रहण किया है। यह जनपथ से राजपथ की ओर अग्रेसर होनेवाली काव्यधारा होने के कारण इसमें तत्कालिन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, परिवेश के प्रभाव के कारण विलासिता आई है।

इस युग के नामकरण संबंध में विद्‌वाणों में मतभेद है। रचना, साहित्य विशेषताएँ एवं मनुष्य के मनोविज्ञान के आधार इस युग का नामकरण किया गया है। जो क्रमश: अलंकृतकाल – मिश्रबंधू, पं. विश्वनाथप्रसाद – श्रृंगारकाल व रमा शंकर शुक्ल – 'रसाल' – कलाकाल, आ. रामचंद्र शुक्ल – 'रीतिकाल' आदि नामों से अभिहित किया है।

'रीति' का शाब्दीक अर्थ है, काव्य रचना का ढंग, पद्धति या प्रकार। दुसरे शब्दों में एक ही शैली या विशेष पद्धती मे आबद्ध रचना 'रीति' पर आधारित रचना मानी जाती है।

रीतिकाल के कवियों को तीन प्रमुख वर्गों में (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त) विभाजित किया जाता है। वे कवि रीतिबद्ध है जिन्होंने काव्यशास्त्र की बँधी–बँधायी परंपराओं का अनुकरण कर रस, रीति, अलंकार, छंद आदि से संबंधित लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया है। दुसरा वर्ग उन कवियों का है जिन्होने न तो लक्षण ग्रंथों की रचना की और नहीं बंधी हुई 'रीति' की परिपाटी का निर्वाह किया वे कवि 'रीतिमुक्त' कहलाये गये। दोनों के मध्य एक तिसरा वर्ग भी था जिसने लक्षण ग्रंथों का निर्माण तो नहीं किया, किंतु अपनी रचनाओं में 'रीति' की परिपाटी का पूर्ण निर्वाह किया वे 'रीतिसिद्ध' कहलाएँ।

रीतिकाल मुघलों की सत्ता का चरम वैभव का काल रहा है। इसी युग में मुगल साम्राज्य का चरम उत्कर्ष एवं उत्तरोत्तर ऱ्हास और फिर पतन देखा जाता है। राजदरबारों में वैभव, भव्यता एव अलंकार की प्रधानता रही है। सामंतों में आत्मप्रशंसा का मोह एवं श्रृंगारिक मनोरंजन की चाह थी। इसके लिए वे कवियों, कलाकारों को अपने दरबार में आश्रय देते थे। कला को महत्त्व प्राप्त होणे के कारण ताजमहल, मयूर सिंहासन जैसी भव्य एवं कलात्मक कृतियों का निर्माण हुआ था।

अक्कर की उदात्त नीति के खत्म होते ही हिंदू–मुसलमानों मे द्वेष–शत्रूता की भावना निर्माण होती गई। औरंगजेब जैसे कट्टर शासकों के कारण अनेक हिंदू शासकों के मन में बगावत की भावना ने जन्म लिया था। परिणामत: मराठा, सिक्ख आदि ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध किया।

अत्याचारी, विलासी मुगलो के कारण मुस्लीम शासन व्यवस्था दिन–ब–दिन कमजोर होती गई। भारतीय शासकों की आपसी शत्रुता का लाभ उठाते हुए व्यापार के हेतु आए अंग्रेज भारत के शासक बन गए।

रीतिकाल पर 'यथा प्रजा तथा प्रजा' की उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। शासक सामंतो की देखोदेखी

करनेवाली जनता भोग-विास के उपकरणों की खोज में लगी रही। सूरा-सुंदरी में डुबे हुए विलासी जन कामकला की शिक्षा को ही सबसे बडी उपलब्धि मानती रही। सुंदर दासियों की माँग बढ गई थी। बाल-विवाह, अनमेल विवाह, बहुविवाह, रखैल प्रथा जैसी परंपराओं के पोटी में नारी पीसने का काम अनवरत रूप से शुरू था। केशवल भोग-विलास का साधन समझीजानेवाली नारी का जीवन नारकीय बन गया था। उसके अधिकार छिनकर उसे गुलाम बनाया गया।

समाज में जातिवाद, विषम सामाजिक व्यवस्था, अंध:विश्वास का बोलबाला था। शासक सामंतों को अमानवीय शीषण चक्र में गरीब, किसान-मजदूर एवं नारी तथा दलित समाज बुरी तरह पीसा जा रहा था।

'रीति' शब्द का सामान्य अर्थ हे काम करणे की पद्धति या ढंग। रीतिकाल में इस शब्द का अर्थ काव्य सृजन का ढंग या प्रकार माना गया है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो एक ही शैली या विशेष पद्धति में आबद्ध रचना। अर्थात काव्यांग निरूपण संबंधी रचनाओं या लक्षण ग्रंथों का निर्माण जिस काल में हुआ उस काल को रीतिकाल कहा जाता है।

रीतिकाल में तीन प्रकार के कवियों ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। जिन कवियों ने काव्यशास्त्र की बंधी-बँधायी परंपराओं का अनुकरण कर रस, रीति, अलंकार, छंद आदि से संबंधित लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया वे रीतिबद्ध कवि माने जाते है। इस वर्ग में केशवदास, चिंतामणि, मतिराम, देव, पद्माकर, सोमनाथ आदि नाम प्रमुखता से लिए जा सकते है।

दूसरे वर्ग में वे कवि जिन्होंने न तो लक्षण ग्रंथों की रचना की है और न ही बँधी हुई रीति की परिपाटी का निर्वाह किया है, आते है जिन्हें 'रीतिमुक्त' कवि के रूप में जाना जाता है। इस काव्यधारा में घनानंद, आलम, बोधा, ठाकुर आदि कवियों के नाम गिने जा सकते है।

इन दोनों के मध्य तिसरा वर्ग है जिसने लक्षण ग्रंथों का निर्माण तो नहीं किया किंतु अपनी रचनाओं में रीतिक की परिपाटी का पूर्ण निर्वाह किया । उन्हें 'रीतिसिद्ध' कवि माना जाता है। इस वर्ग के प्रतिनिधी कवि 'बिहारी' का रीतिकाल में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

आ. केशवदास रीतिकाल के प्रमुख कवि माने जाते है, साथ ही रीतिकाल के प्रवर्तक एवं प्रणेता भी।

बिहारी अपनी एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' के आधारपर हिंदी जगत में कीर्ति के अधिकारी रहे है।

श्रृंगारी साहित्य लेखन का बोलबाला अधिक होनेपर भी भूषण ने वीरस्स का साहित्य लिखकर तत्कालीन परिस्थितियों में हिंदू राष्ट्रीय गौरव की रक्षा का सफल प्रयास किया है।

रीतिमुक्त काव्यधारा के अग्रणी कवि घनानंद का काव्य विरह, वेदना का काव्य है जो प्रेम की आध्यात्मिक परिणिती करता है।

1.8 स्वाध्याय :

1) 'रीतिकाल' के नामकरण पर प्रकाश डालिए।

2) 'केशवदास' आचार्य थे या कवि चर्चा कीजिए।

3) 'रीतिकाल' के प्रतिनिधि कवियों पर प्रकाश डालिए।

4) 'रीतिकालीन' राजनीतिक परिस्थिती का विवेचन कीजिए।

5) 'रीतिकालीन' सामाजिक परिस्थिति का विवेचन कीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

- 'रीतिकाल' के कवियों का साहित्यिक विशेषताओं के आधारपर रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त वर्गों में विभाजन कीजिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल : 'हिंदी साहित्य का इतिहास'

2) डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त : 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास'

3) डॉ. राजनाथ शर्मा : 'हिंदी साहित्य का इतिहास'

4) डॉ. शिवकुमार शर्मा : 'हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ'

●●●

इकाई 2

आधुनिक काल

अनुक्रम

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय – विवेचन

2.3.1 भारतेन्दु पूर्व युग

2.3.2 भारतेन्दु युग

2.3.3 द्विवेदी युग

2.3.4 'शुक्ल युग'

2.3.5 शुक्लोत्तर युग

2.4 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य (Objective) :

1. इस इकाई के अध्ययन के पश्चात छात्र-छात्राएँ आधुनिक काल को यथायोग्य समझ पायेंगे।
2. आधुनिक काल के गद्य साहित्य को जानने में मदद होगी।
3. सामाजिक/राजनीतिक परिस्थितियाँ का अध्ययन होगा।
4. प्रारंभिक हिंदी गद्य साहित्य का सामान्य परिचय प्राप्त होगा।
5. युगप्रवर्तक साहित्यकार का परिचय जानने में मदद होगी।

2.2 प्रस्तावना :

आधुनिक काल में अनेक गद्य साहित्य का विकास हुआ है। जिसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र, डायरी, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक काल का नाम गद्य काल इसीलिए पडा नगर आया है। निश्चय ही आधुनिक काल ने साहित्य को दरबारी परिवेश से बाहर निकालकर जन जीवन से जोड दिया है। गद्य की अनेक विधाओं का विकास आधुनिक काल में ही हुआ है।

प्रारंभिक हिंदी गद्य साहित्य का सामान्य परिचय :

भूमिका : हिंदी गद्य साहित्य के प्रारंभिक संबंध में विद्वानों में एकमत नहीं है। कुछ विद्वान 10 वी शताब्दी मानते है, कुछ 11 वी शताब्दी, कुछ 13वी शताब्दी मानते है। हम देखते हैं कि, राजस्थानी एवं ब्रज भाषा में हमें गद्य के प्राचीनतम् प्रयोग मिलते है। राजस्थानी गद्य 11 वी शताब्दि से 114 वी शताब्दी तक मानी जाती है, जब की ब्रज गद्य के सीमा 14 वी शताब्दी से 16 वी शताब्दी तक मानी जाती है। ऐसा कहा जाता है कि, 10 वी शताब्दी से 13 वी शताब्दी के मध्य ही हिंदी गद्य के प्रारंभिक शुरुवात हुई। हम देखते हैं कि, खडीबोली के प्रथम सुरुवात अकबर के दरबारी कवि गंग द्वारा रचित ''चंद छंद बरनन की महिमा'' देख सकते है। इसके रचना सम्राट अकबर के समय में हुई थी।

हिंदी गद्य साहित्य का विकास :

2.1.1 पूर्व भारतेन्दु युग (13 वी शताब्दी से 1868 ई. तक)

2.1.2 भारतेन्दु युग (1868 से 1900 ई. तक)

2.1.3 द्विवेदी युग (1900 ई. से 1922 ई. तक)

2.1.4 शुक्ल युग (1922 ई. से 18938 ई. तक)

2.1.5 शुक्लोत्तर युग (1938 ई. से अबतक)

19 वी सदी से पहले का हिंदी गद्य साहित्य :

राजस्थानी में हिंदी गद्य के प्राचीनतम रूप 10 वी शताब्दी के दान पत्रों, पट्टे-परवानों, टीकाओं और अनुवाद ग्रंथों में देखने को मिलता है। मैथिली में हिंदी गद्य कालकृत की दृष्टि से राजस्थानी के बाद मैथिली

में दृष्टिगो चर होता है। मैथिली में ज्योतिरिश्वर की रचना वर्ण रत्नाकर है। जिसके काल 1324 इ. स. है। दक्खिनी में हिंदी गद्य–गेसुदराज कृत ''मेरा जुल अशिकेत तथा मूल्ला वजही कृत सबरम'' में प्राचीन रूप देखने को मिलता है।

2.3 विषय–विवेचन :

2.3.1 भारतेन्दु पूर्व युग :

भारतेन्दु पूर्व काल में विभिन्न पत्रिकाओं का उगम हुआ। खडी बोली में गद्य का विकास 19 वी शताब्दी के आसपास हुआ। इसमें कोलकाता के फोर्ट विलियम कॉलेज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उन्होंने 1829 में 'बगदूत' पत्रिका निकाली। उसके पहले पं. जुगल किशोर ने हिंदी का पहला समाचार पत्र 'उदंल मार्तंड' कलकत्ता से निकाला था। इसी समय दयानंद सरस्वती ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिंदी में निकाला।

2.3.2 भारतेन्दु युग (1850-1885) :

भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रवेशद्वार कहा जा सकता है। उन्होंने आधुनिक युग में गद्य साहित्य का सृजनात्मक विकास किया। उन्होंने कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन और हरिश्चंद्र पत्रिका का प्रकाशन किया। इसकाल के प्रभाव रचनाकारो में बालकृष्ण भट्ट, प्रकाश नारायण मिश्र, लाला श्रीनिवास दास, राधाचरण गोस्वामी, बाबुदेव के नंदन खत्री आदि प्रकल्प रचनाकारों के नाम गिने जा सकते है। श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरन' को हिंदी का पहला उपन्यास कहा जाना है। तो कुछ विद्वान श्रद्धाराम फुल्लोरी के 'भाग्यवती' को हिंदी का पहला उपन्यास मानते है। बाबु देवकीनंदन खत्री का चंद्रकांता तथा चंद्रकांता संतीत आदि उपन्यास पढने के लिए अहिंदी भाषाओं ने हिंदी लिखी।

2.3.3 द्विवेदी युग :

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के कामपर 34 युग का नाम द्विवेदी युग पडा। सन 1903 इ. स. में सरस्वती पत्रिका का संपादन कार्य संभाव्य और उन्होंने खडी बोली में लिखने के लिए सभी को प्रोत्साहित किया। इस युग के प्रमुख रचनाकारों में श्याम सुंदर दास, चक्रधर शर्मा, बाल मुकुंद आदि रचनाकार काफी प्रसिद्ध है।

हिंदी कहानी का सही विकास इसी देखने को मिलता है। किशोरी लाल गोस्वामी के 'इंदुमती' कहानी को कुछ विद्वान हिंदी की पहली कहानी मानते है। तो कुछ विद्वान बंग महिला की दुलदिवाली को मानते है। इसी समय शुक्ल जी 'ग्यारह वर्षा का समय' यह कहानी लिखी थी। जबकी चक्रधर स्वामी गुलेरी ने 'उसने कहा था यह कहानी का सृजन किया था।

2.3.4 शुक्ल युग (1884-1841) :

आ. रामचंद्र शुक्ल ने निबंध, हिंदी साहित्य का इतिहास आलोचना के क्षेत्र में बडा क़ार्य किया है। कहानी के क्षेत्र में मुन्शी प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य के इतिहास में कृति ही कर डाली। उन्होंने कहानी और उपन्यास काफी लिखे। उनको उपन्यास सम्राट कहा जाता है। उन्होंने 350 से ज्यादा कहानियाँ लिखी है और एक दर्जन तक उपन्यास लिखे है। उनके उपन्यासों में गबन, सेवा सदन, गोदान, कफन आदि प्रसिद्ध उपन्यास है।

इस काल के कथाकारों में विश्वभर शर्मा, कौशिक, वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, पाण्डेय बैचन शर्मा, उग्र, उपेन्द्रनाथ, अश्क, जयशंकर प्रसाद, भगवती चरण वर्मा आदि के नाम लिए जा सकते है।

2.3.5 शुक्लोत्तर युग :

इस काल में हिंदी गद्य साहित्य का विकास चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुका था। इस काल में अनेक रचनाकार अपना साहित्य गद्य साहित्य में लिखा जा रहा था।। जिससे नाटक, उपन्यास, कहानी, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, डायरी आदि गद्य विधाओं की सृजन इस काल में बडे जोर शोर से हो रहा था। इस काल में यशपाल, अज्ञेय, जैनेन्द्र कुमार, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. रामविलास शर्मा आदि ने विचारात्मक निबंधों की रचना की। हरिशंकर परसायी ने व्यंग्य रचना का सृजन किया। नागार्जुन, फणेश्वरनाथ रेणु, अमृतराय, हरि मासुम रजा ने लोकप्रिय आंचलिक उपन्यास लिखे। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नु भंडारी, कमलेश्वर, भीष्म सहानी आदि ने आधुनिक भावबोध को दर्शाने वाले उपन्यास लिखे।

• संक्षेप में हिंदी गद्य का विकास :

इस आधुनिक काल में काफी कुछ हुआ। जिसमें गद्य विधाओं का सृजन इस काल में चरमउत्कर्ष पर देखने को मिलता है।

आधुनिक काल नामकरण एवं समय सीमा :

आ. रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य का इतिहास के चतुर्थ कालखंड को गद्य को प्रमुखता के कारण गद्य काल यह नामकरण किया इसकी समय सियाा संवत 1900 वि. से. 1980 वि. अर्थात सन १८४३ इ. स. से 1923 इ. मानी है। आधुनिक काल को विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने प्रवृत्तीी के आधारपर नामकरण किया है जो इस प्रकार है।

(1) गद्य काल – आ. रामचद्र शुक्ल

(2) वर्तमान काल – मिश्र बंधु

(3) आधुनिक काल – डॉ. रामकुमार वर्मा

(4) आधुनिक काल – डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त

• हिंदी गद्य का उद्‌भव और विकास :

आ. शुक्ल के मतानुसार गोस्वामी विठ्ठल नाथ जी 'श्रृंगार रस मंडन' नामक ग्रंथ ब्रजभाषा गद्य में लिखा था जिसके भाष्य अपरिमार्जिन एवं अव्यवस्थित थी। उसके बाद 'वार्तासाहित्य' की रचना गद्य में हुई।

(1) चौरासी वैष्णवन वार्ता।

(2) दो सो बावन वैष्णवन वार्ता।

यह दोनों ग्रंथ वल्भाचार्य के पोत्र गोसाई गोकुलनाथ है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता से वल्भाचार्य के शिष्यों और दो सौ बावन्न वैष्णवन की वार्ता में विठ्ठल नाथ के शिष्यों का जीवनव्रत्व है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और गजेब की काल में लिखी गई है।

कुछ गद्य रचनाओं का विवरण निम्न प्रकार है।

	रचना का नाम	रचीयता	काल
(1)	श्रृंगार रस मण्डन	गोस्वामी विठ्ठलनाथ	–
(2)	चौरासी वैष्णवन की वार्ता	गोकुळनाथ	17 वी शती का उत्तरार्ध
(3)	दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता	गोकुलनाथ	17 वी शती का उत्तरार्ध
(4)	अष्ट छाम	नाभादास	1603 ई.
(5)	अगहन महात्म्य	वैकुण्ठमणि शुक्ल	1627 ई.
(6)	वैशाख महात्म्य	वैकुण्ठमणि शुक्ल	1627 ई.
(7)	नासिक के तो पाठखान	–	1703 ई.
	वैबात पर्चसी	सुरति मिश्र	1710 ई.

रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योगवाशिष्ठ' नामक ग्रंथ सन 1741 ई. खडी बोली में लिखा। रामप्रसाद निरंजनी परियात्रा दरबार के कवि थे। आ. शुक्ल ने रामप्रसाद निरंजनी को ही प्रथम प्रौढ गद्य लेखक माना है।

आ. शुक्ल के अनुसार खडी बोली गद्य से प्रारंभिक रचनाएँ एवं उनके रचियता का विवरण निम्नलिखित दृष्टि से दिया गया है।

अ.क्र.	रचना	रचियता	रचनाकाल
(1)	चन्द छन्द बरनन की महिमा	गंग कवि	सम्राट अकबर के समय
(2)	भाषा योग वशिष्ठ	रामप्रसाद निरंजनी	1741 ई.
(3)	पद्मपुराण का भाष्यानुवाद	पं. दौलतराम	1766 ई.
(4)	मंडोवर का वर्णन–	अज्ञान	1773-1783 ई.
(5)	सुखसागर	मुन्शी सदासुखकाल नियाज	1818 ई.
(6)	प्रेमसागर	लल्लूलाल	1800 ई.
(7)	नासिकेतो पाख्यान	सदल मिश्र	1800 ई.
(8)	रानी केतकी की कहानी	ईशाअल्लाखाँ	1800 ई.

फोर्ट विलियम कॉलेज के प्राध्यापक जान गिलक्राइस्ट के आदेश से ल्लूकाल ने खडी बोली में 'प्रेमसागर' की रचना की। जिसमें भागवन के दशम स्कंध के कथा वर्णित है। लालूलाल जी ने इस रचना में आरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग किया है।

हिंदी में श्रीमद्पुरान का अनुवाद 'सुखसागर' नाम से मुंशी सदासुखलाल नियाज ने किया। वे दिल्ली के रहनेवाले थे। इन्होंने विष्णुपुराण से उपदेशात्मक प्रसंग लाकर एक पुस्तक का निर्माण किया।

ईशा अल्ला खाँ उर्दू के प्रसिद्ध शायर थे। उन्होंने केतकी की कहानी और उद्यमान चरित्र की रचना सन 1800 ई. में कि। ईशा अल्ला खाँ के भाषा सबसे अधिक चटवीली, मुहावरेंदार है। आ. रामचंद्र शुक्लजी ने मुंशी सदासुखकाल को हिंदी गद्य का प्रवर्तन करनेवालों में स्थान दिया है।

• राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद :

राजा लक्ष्मण सिंह ने 1861 ई. से आगरा से 'प्रजाहितौषी' नामक पत्र निकाला और 1862 ई. में अभिज्ञान शुकुनल का अनुवाद किया। संक्षेप में हिंदी साहित्य का इतिहास में प्रारंभिक हिंदी गद्य साहित्य का परिचय उपर्युक्त प्रविष्ट देखा गया है। जिसमें प्रारंभ से कौन-कौन से कवि लेखकों ने अपना योगदान दिया है, उसका संक्षिप्त में विवेचन और विश्लेषण किया गया है।

• आधुनिक काल : सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ :

हिंदी साहित्य का इतिहास को चार काल खण्डों में विभाजित किया जाता है। जैसे - आदिकाल, संक्षिप्त काल, रीतिकाल और आधुनिक काल। आधुनिक काल में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतीवाद, प्रयोगवाद, साष्ठोत्तरी आदि विभागों में आधुनिक काल को बाँटा जा सकता है। अत: हम यहाँ आधुनिक काल की सामाजिक परिस्थितियाँ को देखते है।

• सामाजिक परिस्थिति :

किसी भी साहित्य का अध्ययन करने के लिए उस समय की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक परिस्थितियाँ का अध्ययन करना पडता है। यहाँ हम सामाजिक परिस्थितियाँ का अध्ययन करते समय दो बातें स्पष्ट हो जाती है। रीतिकाल के बाद हिंदी साहित्य में दो परिवर्तन हुए। 1) एक विषय की दृष्टिकोन से श्रृंगारपरकता का स्थान सामाजिक सरोवर ने स्वीकार किया और भाष्य की दृष्टि से ब्रजभाषा और अवधी का स्थान खडीबोली ने ले लिया। इस काल से नारी स्वतंत्रता, अछूतोद्धार, शिक्षा का महत्त्व, श्रम का महत्त्व, मानव की समानता, दिन-दलीत, शोषित, पीडित के प्रति संवेदना, आम वर्ग का चित्रण, राष्ट्रीय भावना आदि प्रवृत्तियाँ इस युग में देखने को मिलती है। साहित्य के अनेक रूढि-परंपरा का ऱ्हास इस युग में हुआ और इसीलिए इस युग में श्रृंगारिकता से दूर होकर सामान्य जनता के लिए साहित्य का सृजन होने लगा। इसी कारण हेतु इस युग को आधुनिक काल या पुनर्जागरण काल कहा गया।

आधुनिक का आरंभ संवत 1900 या 1843 ई. से माना जाता है। यह समय अंग्रेजों के खिलाप बढ रहे असंतोष का समय रहा था। अंग्रेजों के नीतियों के कारण प्रत्येक भारतीय उनके विरुद्ध में मैदान से खडा हुआ था। अंग्रेजों द्वारा किया गया सामाजिक सुधार रूढिवादी, परंपराओं ने अस्वीकार किए। हम देखते है कि अंग्रेजों की भू-राजस्व नीतियों ने किसानों की कमर तोडी तो लॉर्ड डलहौसी की लैटस की नीतियों, साम्राज्यवादी नीतियों को उजागर कर दिया। वे किसी भी प्रकार से देशी रियासतो को ब्रिटीश साम्राज्य से अंतर्भूत करना चाहते थे। इसलिए पटना राष्ट्रीय उठाव सन 1857 ई. में हुआ। अंग्रेजों ने इस क्रांति भरि उठाव से अपने दबाव से 1857 की काव्य को दबाने की हर प्रसाद किया। लेकिन भारतीय लोगों में असंतोष का माहौल तयार हुआ और धीरे-

धीरे भारतीय लोक अंग्रेजों के खिलाफ लडने के लिए तैयार होते रहे। हम देखते है कि इस दरम्यान 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना हुई। उसने धीरे-धीरे भारतीयों के मूलभूत अधिकारों की या स्वतंत्रता की माँग करना शुरू हुआ। सन 1929 ई. 'स्वराज्य' की माँग की गई है। म. गांधी के नेतृत्त्व में स्वतंत्रता आंदोलन में नई चेतना उभरकर आयी। उनके द्‌वारा चलाऐ गये आंदोलन ने देशभक्ति की लहर पूरे भारत वर्ष में बढ गयी।

एक चरफ से गांधी जी उदारवादी, विनम्र नीतियों द्वारा स्वराज्य की माँग कर रहे थे। वही दूसरी ओर भगतसिंह, राजगुरू, सुखदेव, लो. टिलक, चाफेकर बंधू, सावरकर बंधू, नेताजी सुभाषचंद्र बोस जैसे देशभक्ति का नारा जोर-शोर से चला रहे थे। अंग्रेज की कुटनीति - फूट डालों और राजकरों की नीतियों का प्रभाव तत्कालिन सामाजिक परिस्थितीयों पर पडा नजर आता है। अंग्रेजों द्‌वार समाज सुधार किया जा रहा था। तो दूसरी तरफ भारतीय परंपरा को अवैध घोषित करने लगी थी। तत्कालीन लॉर्ड विलियम बेटिक ने सती प्रथा जैसे सामाजिक बुराइयों को अवैध घोषित कर दिया। लॉर्ड विलियम बॅटिक ने सति प्रथा को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित किया गया।

भारत में राष्ट्रीयता महात्मा फुले, राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानंद और स्वामी स्वामी विवेकानंद, महादेव गोविंद रानडे, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर आदि ने भारतीय समाज और रूढियों के प्रति विरोध दर्शाया, उसके विरुद्ध आंदोलन चलाया। महात्मा फुले ने सत्यशोधक आंदोलन को बडे बखुबी से चलाया। उनके पत्नी सावित्रीबाई फुले को शिक्षा के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किया और लडकियों की पाठशाला पुणे में स्थापीत की। वह ऐसा समय था जो लडकियाँ अपने द्‌वार से बाहर नहीं जा सकती थी। चार दिवारों में कैद उसका जीवन था।

क्रांति ज्योति सावित्रीबाई फुले ने बुधवार पेठ में लडकियों के लिए स्कूल खोले थे। फुले दाम्पत्य ने पूने में जो बीज लगाया वह आज पुरे महाराष्ट्र और भारत में फैला हुआ है। आज सभी क्षेत्र में महिलाएँ अपनी शिक्षा पुरी कर अलग-अलग जगहों पर अपने पैरों पर खडी नजर आती है।

आधुनिक काल में औद्योगिकीकरण, नागरिकीरण और शिक्षा के द्‌वार खुले हो गये, जिससे नयी-नयी आशाएँ एवं स्वप्न उभरकर सामने आये। आधुनिक काल में वर्तमान तथा भविष्य को नवीन संदर्भो में देखा जाने लगा। इसमें साहित्य, धर्म, देश, मनुष्य, समाज अद्धता नहीं रहा उनको नई-नई व्याख्याएँ की जाने लगी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि, तत्कालीन वातावरण तथा विभिन्न परिस्थितियाँ परिवर्तन का कारण बनते है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ''इस नये युग में व्यक्ति क्रमश: स्वतंत्र होता गया है नया और स्वतंत्र होता जा रहा है। इससे पहले के युग में मनुष्य और मनुष्य के संबंध सीधा और प्रत्यक्ष होना था। लेकिन नए युग का संबंध बाजार के माध्यम से होने लगा है। प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक, राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र तो हो रहा है परंतु उसके योग्यता और सवधिनता बाजार के मूल्यों द्‌वारा नियंत्रित होनी है।''

• राजनीतिक परिस्थिति :

आधुनिक काल यह चेतना और जागरण का काल है। राजनीतिक दृष्टि से यह नवजागरण का काल दिखाई देता है। इस नवजागरण या आधुनिक काल में नई चेतना सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा शैक्षिक आदि के क्षेत्र में उभर कर सामने आ रही थी। इस आधुनिक काल में गद्य विकास का चरनोत्कर्ष हुआ।

आधुनिक काल में राष्ट्रीयता, समाज, सुधार, देशप्रेम, जनजागरण, शोतितों के प्रति तिव्र आक्रोश, शोषण तथा अत्याचार के विरोध में तीव्र अशांती, जनाआक्रोश आदि प्रवृतियाँ सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों में देखी जा सकती है। आुधनिक काल में पूव के समयपर दृष्टिपान करे तो यह स्पष्ट होता है कि, वह पुरी तरह से संघर्ष का काल था। हमारे भारत पर अंग्रेजों का राजकारण चल रहा था। वे बाजार करते नाते हमारे भारत में पधारे और यहीं रच बस गए। यहाँ कि सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन किया और लगभग 150 वर्षो तक हमारे पर शासन किया। जब अंग्रेजों से लढाई शुरू हुई तो उनके विरुद्ध हिंदू-मुसलमान दोनों एक साथ मिलकर लड रहे थे। स्वतंत्रता की पहली लढाई तत्कालीन शासक बळाद्दूरशाह जफर के नेतृत्त्व में ही आरंभ हुई। उन्होने 'पयामें आजादी' नामक आजादी समाचार पत्र द्वारा हिंदू-मुसलमान दोनों को संदेश दिया - ''हिंदुस्थान के हिंदुओं और मुसलमानों! उठो, भाईयों उठो, खुदा ने इन्सान को जितनी बरकते अदा की है, उनमें सबसे किमती बरकत आजादी है।!'' अंग्रेजों के खिलाफ लडने के लिए हिंदु और मुसलमान एकसाथ होकर खडे थे। यह आधुनिक काल की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। जबकी उधर काँग्रेस की स्थापना 1885 में हुई थी। दिनोंदिन बढते हुई उसकी लोकप्रियता ने एकता के भावना को और भी अधिक बल प्रदान किया। उसकाल में काव्य के माध्यम से राष्ट्रीय भावना जागृत होने लगी। मैथीलीशरण गुप्त जैसे कवि राष्ट्रगान का गीत गा रहे थे। जैसे -

''मुझे तोड लेना वनमलि - उसपथ पर देना तुम फेक - जिस पथ पर जावे, वीर अनेक।''

या बालमुतन नवीन जैसे कवियों ने वास्तविकता के गीत गये - जैसे,

''खातो को मिलता दुध - वस्त्र, भुयोबालक अकुलाते है। माँ के छाती से छीपक ठिठूर जाडो के रात बिनाते है।''

भारतीय और अंग्रेज संघर्ष की राजनीतिक दृष्टि से एक ओर घटना थी- प्रथम विश्वयुद्ध। अंग्रेजों के कुटनीति ने भारतीय लोगों को चौकाया ही नहीं बलकी सजग और सम्बद्ध भी कर दिया।

राजनीतिक दृष्टि से यह काल उलथ-पुलथ करनेवाला था। इसमें भारतीय नेताओं और समाजसुधारक का आंदोलन, समन्वयपूर्वक नीतियाँ, देशप्रेम, राष्ट्रप्रेम आदि की प्रवृत्तियाँ मुख्य रुप से राजनीतिक परिस्थितियों की ही देन है।

भारतीय युवा वर्गो को प्रथम विश्वयुद्ध के विफलता और अंग्रेजों के बढते हुए अत्याचार ने निराश कर दिया। इसी का परिणाम पलायन प्रवृत्ति, छायावादी काव्य का निर्माण हुआ। तो दूसरी ओर हिंसात्मक आक्रोश, देशप्रेम राष्ट्रीय काव्यधारा में प्रयागवाद के माध्यम से उभरकर सामने आयी। जिसमें मानव से मानवतावाद,

पूँजीवाद से व्यक्तिवाद और समाजवाद, उपदेश, आदर्श यथार्थवाद, उच्छ वर्ग से निम्नवर्ग और परंपरा के विरोध में नवविचारों की प्रतिस्थापना इस राजनीतिक परिस्थितियों की देन है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भी हिंदी गद्य साहित्य, या पद्य साहित्य इन्हीं से ओतप्रोत रहा। सन 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। भारतीय स्वतंत्रता से नयी चेतना समाज में जागृत हो गई और नई आशा और नया किरण का स्वप्न लेकर पुरा भारत देश जी रहा था। उन्हें यह आशा थी की, स्वतंत्र भारत में रोजी, रोटि और कपडा मिलेगा। लेकिन आज हम देखते है कि, आज भी यह बुनियादी बातें पुरी नहीं है। आज तो वैश्विकरण के युग में हम जी रहे है।

भारत विभाजन और अन्य प्रांतों का उदम होने से भारत की महिमा का क्षीन हो गई। सभी राजकीय स्थिति में भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार पाँच-छ दशकों से जोर-शोर से शुरू है। सच तो आज की स्थिति में भारतीय जन, बुद्धिजीवि वर्ग और साहित्यकार सतन रूप से संघर्ष, बैचैनी, अस्थिरता, संयश, संकल्प, विकल्प, नैराश्य, पलायन, अलगाव, सत्रास आदि परिस्थिति से गुजरता जा रहा है। इससे आधुनिक काल का साहित्य, गद्य-पद्य में इससे अद्युक्त नहीं रहा।

संक्षेप में अंग्रेजों से सिर्फ शोषण ही नहीं हुआ अनेक वैज्ञानिक अविष्कार भी उन्होंने किए। भारतीय समाज में चल रही कुस्थितयों को दूर करने का काम भी उन्होंने किया। उन्होंने भारतीय समाज को मोह, सिद्रा से जगाया और इसी परिणाम भारतीयों में नई चेतना उभरकर आयी। और शिक्षा के द्वार खोलने के कारण अज्ञान दूर हो गया और समतामुलक समाज की स्थापना करने के लिए विविध नेतागन एवं राजकीय स्तर पर भी चेतनाएँ का निर्माण हो पाया।

• युग प्रवर्तक साहित्यकार :

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है, भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिंदी साहित्य के आधुनिक युग के प्रतिनिधि कवि या आधुनिक साहित्य का प्रवेश द्वार कहा जाता है।

आधुनिक युग में भारतेन्दु युग, द्विवेगी युग, छायावाद, प्रगामवाद, प्रयोगवाद, समकालीन कविता आदि आने है, जिसमें अनेक कवि/लेखक आने है । जैसे - भारतेन्दु युग, महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंद पंत, महादेवी वर्मा, अज्ञेय, निराला, मोहन राकेश, रामधरिसिंह दिनकर आदि साहित्यकारों का योगदान इसमें रहा है।

1) भारतेन्दु युग के प्रमुख कवियों में - बद्री नारायण, चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, ठाकूर जगमोहन सिंह, अंबिकादाास न्यास, राधाकृष्ण दास आदि।

द्विवेदि युग के रचनाकारों में श्रीधर पाठक, अयोग्यासिंह उपाध्याय, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, श्रीधर पाठक, बालमुकुंद गुरव, जगन्नाथदास रत्नाकर, नाथुराम शर्मा 'शंकर', श्याम नारायण

पाण्डेय, उदयशंकर भट्ट आदि साहित्य को के सूची बनायी जा सकती है।

छायावादी काव्य में प्रकृति, रोमांटिक उत्थान की वह काव्य धारा है जो लगभग ई. स. 1918 से 1936 ई. तक के प्रमुख युगवादी रही है। छायावाद के चार रचनाकार माने जाते है जिसमें – जयशंकर, प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी, निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा। इस काव्यधारा के प्रमुख रचनाओं में गिने जाने है। छायावाद के नामरकण का श्रेय मुकुधर पाण्डेय को दिया जाता है। मुकुटधर पांडेय जी द्वार रचित कविता 'कुटरी के प्राण' छायावाद के प्रथम कविता माने जाते है।

• भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885 ई.) :

आधुनिक काल का प्रवेशद्वार भारतेन्दु हरिश्चंद्र को जाना जाता है। इस युग में गद्य और पद्य का विकास हुआ। अधिकतर मात्रा में गद्य साहित्य का विकास की शुरुवात इस काल में हुई।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म 9 सितंबर 1850 ई. में हुआ। और 35 वर्ष के अल्पआयु में जनवरी सन 1885 ई. में हुई। इतले छोटे आयु में महान थे । साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिंदी साहित्य में अभूतपूर्व श्रीवृद्धि की। वे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। भारतेन्दु जी सही अर्थों में गद्य के जनक कहे जा सकते है। उन्होंने न केवल गद्य की भाष्य का संस्कार किया अथक पद्य की ब्रजभाषा को भी सुसंस्कृत किया। भारतेन्दुजी का सबसे बडा योगदान इन्होंने हिंदी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। समाजहित एवं राष्ट्रहित भारतेन्दुजी की रचनाओं में दिखाई देती है। आ. रामचंद्र शुक्ल जी भारतेन्दु जी के हिंदी योगदान को लेकर काफी अच्छी टिप्पणी कि हैं, ''हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद बढ रहा था, उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नये–नये विषयों की ओर प्रवृत्त करनेवाले हरिश्चंद्र ही हुए।''

भारतेन्दु युग मंडल के साहित्यकार :

प्रनापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमधन, प. बाळकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, आदि रचना का रोते, भारतीय संस्कृति का उद्घोष किया गया है। भारतेन्दु की काव्य प्रवृत्तियाँ में राष्ट्रभयता की भावना, समाज की दुरदशा का चित्रण, भक्ति भावना, प्रकृति–चित्रण, हास्य–काव्य की प्रधानता, समस्या पूर्ती, ब्रजभाषा का प्रयोग, आदी विशेषताढँ देखी जा शकती है।

भारतेन्दुयुग में गद्य का प्रारंभ भी नाटकों से हुआ। भारतेन्दु ने बंगला के नाटक विद्यासुंदर का हिंदी में अनुवाद किया। पं. शिनका प्रसाद त्रिपाठी कृत 'जान मंगल नाटक' में भारतेन्दुजी ने स्वयं अभिनय किया था और इसे देखने स्वयं क काशी नरेश महाराज ईश्वरी नारायन सिंह पधारे थे।

भारतेन्दु बाबु हरिश्चंद्र में कृतित्व का विवरण निम्मवत् है–

मौलिक नाटक :

1) वैदकी हिंसा–हिंसा न भवति

2) चंद्रावली नाटिका

3) विषस्य विषमौषधम्

4) मारन दुदर्शा

5) नीलदेवी

6) अंधेर नगरी

7) प्रेम जोगिनी

8) सति-प्रताप (अधुरा)

अनुदित नाटक :

1) विद्या सुन्दर

2) पाखण्ड बिडम्बन

3) धनंजय विजय

4) कर्पूर मंजरी

5) मुद्राराक्षस

6) सत्य हरिश्चंद्र

7) भारत जननी

8) दुर्लभ बन्धु

9) रत्नावली

काव्य कृतियाँ :

1) प्रेमाश्रु वर्णन

2) प्रेम माधुरी

3) प्रेम तरंग

4) उच्च राध्र्व भवत-माल

5) प्रेम प्रताप

6) जीत गोविन्दान्द

7) सतसई सिंगार

8) होली

9) मधुमुकुल

10) रागसंग्रह

11) वर्षा–विनोद

12) विनय प्रेम पचासा

13) फुलों का गुच्छ

14) प्रेम फुलवारी

15) कृतत चरित्र

16) तळमयलीला

17) दान लिला

18) प्रबोधनी

19) प्रातसमीरन

20) बकरी विलाप

21) रामलीला

उपन्यास :

1) हमीरहठ

2) रामलीला

3) सुलोचना

4) शीलवती

5) सावित्री चरित्र

निबंध :

1) सबै जाति गोपाल की

2) मित्रता

3) सूर्योदय

4) कुछ आप बीती कुछ जग बीती

5) जयदेव

6) बंग भाषा के कविता

इतिहास ग्रंथ :

1) कश्मीर कुसुम

2) बादशाह दर्पण

उपर्युक्त साहित्य संसार भारतेन्दुजी का रहा है। उन्होंने केवल ३५ वर्ष की अल्प आयु में सभी विधाओं से अपना लेखन किया है। भारतेन्दु बाबु हरिश्चंद्र से पूर्व हिंदी गद्य के दो शैलिया विद्यमान थी – एक तो उर्दू–फारसी जिसका प्रतिनिधित्व शिवप्रसाद सितारे हिन्द कर रहे थे तो दूसरी शैली संस्कृत शब्दों से युक्त विशुद्ध हिंदी जिसका प्रतिनिधित्व राजा लक्ष्मण सिंह कर रहे थे। और भारतेन्दुजी ने अपने भाषा के लिए मध्यम मार्ग को अपनाया था।

भारतेन्दुजी के शैली के दो रूप है –

1) भावावेश शैली 2) तथ्य निरूपण शैली। इनमें से प्रथम शैली में लिखे गये वाक्य छोटे–छोटे है और भाषा सरल, सुलभ और समझने युक त है। जबकी तथ्य निरूपण शैली के अवर्गन संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग किया गया है। जिससे समझने में थोडे करबी चली जाती है।

देशभक्ति और राष्ट्रभक्ति का अद्‌भुत समन्वय भारतेन्दुजी के काव्य में दिखाई देता है। अंग्रेज द्वारा किए जा रहे शोषण को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है –

''भीवर–भीवर सब रस चूसै,
हंसि–हंसि के तन–मन–धन–मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज
क्यो सभी साजन नहिं अंग्रेज''

अंग्रेज शासन कुशल कर रहे थे किंतु अंदर अंदर सारा खून चुस रहे थे। धन–दौलत विदेश ले जा रहे थे। संक्षप में भारत का आर्थिक शोषण वे कर रहे थे। उनके शब्दों में –

''अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चीज जात य है अख्यारी।''

संक्षेप में भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी ने मंजी हुई परिवहन भाषा में अपने विचार अभिव्यक्त किया है। भारतेन्दुजी आधुनिक काल के प्रवेश द्वार के रुप में हमारे सामने आ जाने है। वे आश्राम हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते है। उनका मूल नाम हरिश्चंद्र था, भारतेन्दु उनके उपाधि थी। भारतीय जनजागरण के अग्रदूत के रूप में उन्होंने देश के गरीबी, पराधीनता शासकों के अमानवीय शोषण का चित्रण उनके साहित्य में हुआ है।

संक्षपे में भारतेन्दु बहुमुखी प्रत्रिका के धनी है। उन्होंने पत्रकरिता, नाटक और क़ाव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा है। उन्होंने हिंदी के सर्वांगिण विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने भारतीय लोगों के आर्थिक उन्नती हेतु अपना लक्ष्य काव्य के माध्यम से केन्द्रित किया। भारतेन्दु के पिता गोपालचंद्र एक अच्छे

कवि थे और गिरधारीदास उपनाम से कविता लिखा करते थे। उनको काव्य प्रतिभा अपने पिता से विरासत के रूप में मिली थी। भारतेन्दुजी ने लोकभाषाओं और फारसी से मुक्त उर्दू के आधारर खडी बोली का विकास किया। आज हम हिंदी खिलते-बोलते है वह भारतेन्दु की देन है।

• **जयशंकर प्रसाद (सन 1889-1937) :**

छायावादी काव्य के श्री गणेश कवी जयशंकर प्रसाद माने जाते है। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तथा महादेवी वर्मा छायावाद के स्तंभकार माने जाते है।

प्रसाद को छायावादी काव्य के ब्रह्मा, पंत-विष्णु तो निराला जी उसके शिवशंकर है। जयशंकर प्रसाद प्रारंभ में ब्रजभाषा में कविता लिखा करते थे। किंतु 1913-14 से उन्होंने खडी बोली में खिना आरंभ कर दिया।

जयशंकर प्रसाद की माता का नाम श्रीमती मुन्नादेवी था, जो आध्यात्मिक धार्मिक स्वभाव वाली उदारहृदयवाली महिला थी। वंशपरंपरा के अनुसार वे शिव भक्त थी। जयशंकर का पुराना नाम 'झारखंडी' कहा जाता था। बाद में जयशंकर नामकरण हुआ और 'प्रसाद' उपनाम पड गया।

जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी के गोवर्धन सराय मुहल्ले में माघा शुक्ल दशमी, संवत 1913-1946 वि. (सन 1889 ई.) को हुआ। उनके पूर्वज सुगन्धित नसवार और तम्बाखू के प्रतिष्ठित, वैभवशाली व्यापारी होने के कारण 'सुघनी शाहू' नाम से प्रसिद्ध थे। और आज भी है। उनके पितामह 'श्री शिवरत्न शाहू' स्वभाव के बडे ही उदार, दयालू और दानी थे।

प्रसाद जी के आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। दस वर्ष के आयु में उन्हें क्वीस कॉलेज (बनारस) में प्रवेश दिलाया गया। वहाँपर सातवी कक्षा तक ही वे शिक्षा प्राप्त कर सके। आठवी से स्कूल का परित्याग कर देना पडा। माता-पिता का स्वर्ग वास होने के कारण घर-परिवार में ही वे उलझे रहे।

उनके बडे भाई शुभरत्न घरपर ही उनकी उचित शिक्षा की व्यवस्था कर दी। घर पर रहकर ही उन्होंने संस्कृत, हिंदी, उर्दू, बंगला आदि विभिन्न भाषाओं और उनके साहित्य का गहन अध्ययन किया। प. दीनबंधू, ब्रह्मचारी के गुरन पालन में वेद-उपनिषद आदि का अध्ययन किया। उन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन, सौंदर्य व्यास, पुरावत्व, इतिहासा, ज्योतिष और तंत्र शास्त्र में प्रसाद रत रखतेत थे। जयशंकर प्रसाद अपने छोटी अवस्था में अपने माँ के साथ प्राकृतिक यात्राएँ की जिसका प्रभाव उनके बालमन पर पडा नजर आता है।

जयशंकर प्रसाद का स्वभाव बहुत ही सौम्य, सुंदर और आकर्षक था। डॉ. गणेश खरे उनके व्यक्तित्व के बारे में लिखते हैं -

''उनका स्वस्थ, दृष्ट-पुष्ट, कसरत से सुगठित सुडौल गौरा शरीर, नारा कद, घुंघराते बाल, मस्तानी चाल-ढाल, सौंदर्य और आनंदमयी हृदय किसी को भी अपने ओर आकृष्ट करने में समर्थ थे।'' जयशंकर प्रसाद स्वभाव अत्यंत सात्विक वृत्तियों वाले थे।

● **जयशंकर का परिचय संक्षिप में :**

जन्म : शुक्ल दशमी सं. 1946, माता–पिता : माता – मुन्नादेवी, पिता– श्री देवी प्रसाद

शिक्षा : कक्षा 7 वी, क्वीस कॉलज, वाराणसी। हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी का घरपर ही अध्ययन। भाई : शंभूरत्न।

जयशंकर प्रसाद जीविका का साधन साहित्य, साधना को स्वीकार नहीं करते थे। वे किसी रचनाओं का पारिश्रमिक उपहार स्वीकार नहीं करते थे। कविवर जयशंकर प्रसाद हिंदी काव्य जगत में स्वच्छंद वादी काव्य चेतना के प्रवर्तक माने जाते है।

जयशंकर प्रसाद और उनका रचना संसार :

जयशंकर प्रसाद के समुचे कृतित्व को निम्नलिखित दृष्टि से रेखांकित किया जा सकता है।

1) नाटककार के रूप में :

भारतेन्दु के बाद जयशशंकर प्रसाद हिंदी नाटक का न केवल पुनरूत्थान एवं पुनरूद्धार किया, बल्की उसे विकास का नया आयाम भी प्रदान किए। उन्होंने 'एक घूँट' और 'कामना' दो एकांगी लिखी गयी। इसके साथ उन्होंने दस नाटक लिखकर नाटक विधा को चरमविकास पर पहुँचा दिया। जो निम्नलिखित प्रकार से दिए जाते है –

(1) सज्जन – 1911 ई.

(2) कल्यानी परिणय – 1912 ई.

(3) प्रायश्चित – 1914 ई.

(4) राज्यश्री – 1914 ई.

(5) विशाख – 1914 ई.

(6) अजातशत्रू – 1922 ई.

(7) जनमेजय का नागयज्ञ – 1926 ई.

(9) स्कंदपुरान विकृताकाव्य – 1928 ई.

(10) चंद्रगुप्त – 1931 ई.

(11) ध्रुवस्वामिनी – 1933 ई.

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में अजातशत्रू, स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के नाम विशेष उल्लेखनीय है। रंगमंच कला की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व ध्रुवस्वामिनी का है।

2) कथाकार के रूप में :

जयशंकर प्रसाद ने कहानियाँ और उपन्यास हिंदी साहित्य में लिखे है। जो काफी प्रसिद्ध और प्रेरणादायी है।

उनके पाँच कहानी संग्रह प्रसिद्ध है।

(1) छाया

(2) प्रायधीम

(3) आकाशदीप

(4) आँधी

(5) इन्द्रजाल

उनके कहानियों में आदर्श और यथार्थ का वर्तमान और इतिहास का अपूर्व सामंजस्य मिला है। जयशंकर प्रसाद के उपन्यास काफी लिखे है जैसे –

(1) कंकाल

(2) तितली

(3) इरावती (अधुरा)

3) निबंधकार के रूप में :

जयशंकर प्रसाद ने 'इंन्दू', 'जागरण' और 'हंस' जैसे पत्रों में निबंध प्रकाशित हुए। उनके निबंध 'काव्यकला' तथा अन्य निबंध नामक संकलन में प्रकाशित हुए है। उनके निबंधों में गहन–चिंतन–मनन और विद्वत्ता का परिचय दिया है।

4) कवि के रूप में :

जयशंकर प्रसाद जी विविध काव्य रचनाएँ प्रकाशित हुए है। जैसे–

(1) झरना – 1918 ई.

(2) आसूँ – 1925 ई.

(3) लहर – 1933 ई.

(4) कामायनी – 1935 ई.

अन्य रचनाएँ :

(1) उर्वशी – 1909 ई.

(2) वनमिलन – 1909 ई.

(3) प्रेम राज्य – 1909 ई.

(4) आयोध्या का उद्धार – 1910 ई.

(5) शोकाच्छवास – 1910 ई.

(6) वभ्रवाहन – 1911 ई.

(7) कानन कुसुम – 1913 ई.

(8) प्रेम पथिक – 1913 ई.

(9) करनालय – 1913 ई.

(10) महाराणा का महत्त्व – 1914 ई.

जयशंकर प्रसाद के काव्य उर्वशी से लेकर महाराणा का महत्त्व तक के सभी रचनाएँ द्विवेदी युगीन हैं।

कामायनी छायावादी महाकाव्य है। कामायनी में तीन प्रमुख पात्र मनु, श्रद्धा और इडा क्रमश: मन, हृदय और बुद्धि के प्रतीक है, इसमें 15 सर्ग है, लहर एक गीतकाव्य है।

जयशंकर प्रसाद जी काव्य मय जीवन सर्वाधिक उज्वल एवं महत्त्वपूर्ण है। निश्चय ही कवि के रूप में 'कामायमी' जैसे उदात्त महाकाव्य की सृजना करके, तुलसी के 'मानस' के बाद प्रसाद जीने हिंदी साहित्य को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अमर रचना प्रदान की है।

चित्राधार प्रसाद की आरंभिक रचना कृतियों का संकलन है। इसके प्रथम संस्मरण में २० वर्ष के सभी रचनाएँ संकल्पित है। जबकी दुसरे संस्मरण के आयु के २५ साल केवल ब्रजभाष्य में रची रचनाएँ संकीलन है।

'महारणा का महत्त्व' जयशंकर प्रसाद जी की एक प्रमुख स्वतंत्र आच्यानक ऐतिहासिक काव्य रचना है। महाराणा प्रताप के जीवनपर आधारित अत्यंत तेजस्वी रचना है। जो संस्कृति तथा राष्ट्रप्रेम के स्पष्ट परिचायक है।

साहित्य निबंध :

- प्रकृति सौंदर्य
- हिंदी साहित्य सम्मेलन
- हिंदी कविता का विकास
- सरोज

ऐतिहासिक निबंध :

- सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य
- आर्यभट्ट का प्रथम सम्राट

- मौर्य का राज्य परिवर्तन
- दशराज युद्ध

समीक्षात्मक निबंध :

- कवि और कविता
- चम्पू
- कविता का रसास्वाद
- रहस्यवाद
- काव्य और कला
- नाटकों में रस का प्रयोग
- रंगमंच
- नाटकों का प्रारंभ

संक्षेप में जयशंकर प्रसाद ने अनेक रचनाओं का सृजन किया है। वे बहुमुखी प्रतिभासंपन्न छायावादी कवि रहे है। उनके रचनाओं में अनेक पहलुओं को दर्शाया गया है। जैसे - स्पर्धा और प्रेम के कवि प्रसाद जी रहे है। उन्होंने प्राकृतिक वर्तन किया है। प्रेमपत्रिका काव्य में अपने प्रेम की महत्ता का गान किया है।

जयशंकर प्रसाद ने प्रारंभ के दौर में ब्रजभाषा में लिखा। बाद में खडी बोली में लिखने लगे। उन्होंने सरल और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है। जयशंकर प्रसाद प्रेम और आनंद के कवि है। उन्होंने वियोग और संयोग पक्ष को बडी बखुबी से उनके काव्य में उभारा है। 'आँसू' उनका प्रसिद्ध वियोग काव्य है। उनके छंद में विरह की पोज का चित्रण किया है। जैसे -

''जो घनीभूत पीडा थी, मस्तक में स्मृति छायी

दूर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बनसन आयी।''

प्रसाद के काव्य में सौंदर्य वर्णन का सजीव चित्र बडा ही मनमोहक और सजीव-सटीक बन पडा है। जैसे-

''नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मुदुल अधरकता अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।''

जयशंकर प्रसाद का भाव पक्ष तथा कलापक्ष पूर्ण सशक्त और संतुलित है। उनके भाषा शैली अलंकरण, छंद-योजना सभी का यथायोग्य संगम हुआ है। जयशंकर प्रसाद भारतीय संस्कृति के प्रतीक पुरूष थे। उन्होंने वेद, पुराण, इतिहास, पुरातत्व, साहित्य, दर्शनशास्त्र, सानिका गहन अध्ययन किया था। इसलिए भारतीय

संस्कृति के मूल तत्त्व जेसे – अध्यात्मिकता, समन्वयशीलता, विश्वबंधूत्व, कर्मन्यता, साहस, नैतिकता, संयम, त्याग, बलिदान, देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता उनके रचनाओ में देखने को मिलती है। जयशंकर प्रसाद के साहित्य में बिंब, प्रतीक, मिथकीयता आदि दिखाई देती हे। उनके काव्य बिम्बों के पीछे ऐन्दिय अनुभवों की चेतना है। जैसे –

''और उस मुख पर वह मुस्कान
रक्त किसलस पर ले विश्राय
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराय।''

यहाँ प्रसाद जी अलसाई विशेषन से किरण शब्द में एक अद्‌भुत मूर्तिमत्ता आ गयी है। यहाँ सूक्ष्म सौंदर्य बिंब की कल्पना की जा रही है।

मोहन राकेश (1925) :

भूमिका :

मोहन राकेश 'नई कहानी आंदोलन' के नायक के रूप में उन्हें जाना जाता है। मोहन राकेश का जन्म 8 फरवरी 1925 में अमृतसर (पंजाब) में हुआ। उनके पिता पेशे से वकील थे किंतु साहित्य और संगीत में रूचि रखते थे।

मोहन राकेश पहले लाळोर के ओमूचंटल कॉलेज में 'शास्त्री' के परीक्षा पास की। किशोर अवस्था में पिता का देहान्त होने के कारण उनपर अधिक जिम्मेदारी बढ गयी परंतु उन्होंने अपनी हिम्मत को कम नहीं होने दिया। और पढाई उन्होंने जारी रखी। पंजाब विश्वविद्‌यालय से हिंदी और अंग्रेजी में एम. ए. की उपाधि ली। मोहन राकेश आधुनिक हिंदी कथा साहित्य और काव्य साहित्य के प्रमुख स्वासर है। नाट्य साहित्य और कथा साहित्येत्तर अधिक लेखने चलाई है।

परिवार :

मोहन राकेश का जन्म एक कट्टर सनातनी परिवार में हुआ। उनके पिता कर्मचंद गुगलानी पेशे से वकील थे और मानो धार्मिक संस्कारों से जुडे थे। परिवार का खर्च आय से अधिक होने के कारण प्राय: उन्हें उधार लेना पडता था। उनके पिता पढे-खिले होने कारण संस्कृत की शिक्षा उन्होंने अपने पिता से प्राप्त की। तेरह वर्ष के आयु में संस्कृत में छंद रचना करने लगे थे। एक वैष्णव और सात्विक परिवार होने के बावजूद मोहन राकेश आगे चलकर बहुत विद्रोही बन गए।

वैवाहिक जीवन :

सन 1950 में राकेश ने सुशीला नामक आधुनिक युवति से विवाह कर लिया। ज्यादा पढी लिखी होने के कारण और उनमें अहं होने के कारण उनका यह विवाद एक बच्चा होने के बावजूद भी उन दोनों में अनबन होना शुरू हुआ। मोहन राकेश ने दूसरा विवाह – उनके मित्र की बहन 'पुष्पा' से सन 1960 में दूसरा विवाह

कर लिया। यह अधिक दिनों तक टिक नहीं पाया और सन 1963 से वे अनिता औलक के साथ रहना आरंभ कर दिया। अनिता ने मोहन राकेश को समझकर लिया और धीरे-धीरे उनके सारे घाव भर दिए।

रूचि :

मोहन राकेश को दोस्त बताना, काफी हाऊस बैठना और लेखन में अधिक रुचि थी। उन्होंने अपने लेखन को पहला नंबर दिया था। मोहन राकेश का एक और स्वभाव घुमक्कड था। उन्होंने अपने जीवन में जोखिम भरी लम्बी यात्राएँ की थी।

मृत्यु :

मोहन राकेश जी का देहांत 3 दिसंबर को दिल्ली में हृदय हीन बंद होने से अडतालिस वर्ष के आयु में ही उनका आकस्मिक निधन हो गया। श्रीमती इंदिरा गांधी ने उनके निधन पर ''नाटक ओर साहित्य जगत की अपूर्णनीय क्षीम हो गई'' बताया था।

मोहन राकेश का कृतित्व :

मोहन राकेश का योगदान आधुनिक हिंदी साहित्य में बडा रहा है। उन्होंने कहानी, नाटक, एवं उपन्यास विधा में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। उन्होंने साहित्य के विभिन्न विधाओं में लेखन कार्य किया है।

नाटककार के रूप में :

भारतेन्दु और प्रसाद के बाद आधुनिक काल नाटककार के रूप में मोहन राकेश का नाम आना है। उन्होंने हिंदी के क्षेत्रिय सीमाओं मे उठकर राष्ट्रीय स्तर के नाटककारों में उनका नाम हो गया। उनके नाटक के क्षेत्र में योगदान और महत्त्व को रेखांकित करते हुए डॉ. नारायण राय लिखते है -

''शताब्दियों से जड और संवेदनशून्य हो गए। हिंदी रंगमंच में फिर से चेतना का संचार करने में नाटक को रंगमंच से जोडकर नाटक को सही अर्थों और संदर्भों में प्रमाणित करने की दिशा में, रंगमंच की पृष्टभूमि में नाटककार की भूमिका निश्चित करने में, राकेश का बहुत बडा योगदान रहा।'' मोहन राकेश एक ऐसे नाटककार है जिन्होंने नाटक को थिएटर का पर्याय माना। नाटक को काव्य और संचीय स्वरपर सार्थक दिशा के ओर मोडने का श्रेय नाटककार मोहन राकेश को दिया जा सका है। उनके नाट्य साहित्य का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार दिया है।

आषाढ का एक दिन (1958 ई.) :

'आषाढ का एक दिन' नाटक की कथा महाकवि कालिदास के जीवन से संबंधित है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों में 'आषाढ का एक दिन' महत्त्वपूर्ण नाट्यकृति मानी जाती है। प्रस्तुत नाटक तीन अंकों में विभाजित हैं।

आषाढ के प्रथम दिन के वर्षा में भीगकर मल्लीका अपने घर पहुँचती है। माँ को अपने प्रसन्नता का कारण बनाना चाहती है लेकिन उनकी माँ उनमें रूचि नहीं लेना चाहती। मल्लीका का कालीदास के साथ घुमना उन्हें अच्छा नहीं लगता परंतु मल्लीका अपने इच्छा से जीना चाहती है। उसके मन में कालिदास के प्रति प्रेमभाव है।

कालिदास माता-पिता विहिन है। गोचारण ही कालिदास का दिन है। वह भी मल्लिका के साथ प्रेम करता है। यहाँ विधवा अंबिका लोकनिंदा के कारण कालिदास को पसंद नहीं करती। मल्लीका ने 'ऋतुसंहार' कालिदास की रचना पढकर आनंदित होती है। कालिदास 'ऋतुसंहार' के कारण भक्ति प्रसिद्ध होते है और उनकी ख्याति गुप्त सम्राट तक पहुँच जाती है। गुप्त सम्राट उनका सम्मान करना चाहते है। यहाँ मल्लीक को लगता है कि गुप्त सम्राट कालीदास के साथ मेरा विवाह करवा देंगे। परंतु कालिदास को राजकवि का दर्जा दिया जाता है और गुप्तवंश की राजकुमारी प्रियंगुमंजरी से विवाह उनका हो जाता है। यहाँ मल्लीका अपने विरह पीडा व्यक्त करती हे। उधर कालिदास को कश्मिरी का शासक के रूप में नियुक्त सम्राट करता है। काश्मीर जाते समय मल्लीका को कालिदास मिलने का साहस नहीं करता, परंतु मल्लीका के साथ उतना ही प्रेम करता है, जितना पहले करता था।

मातुल के द्वारा मल्लीका को पता चलता है कि काश्मीर में विद्रोह के कारण कालिदास संन्यास ग्रहण कर चुका है। मल्लीका चिंता में खाई रहती है। उसी समय जोरों की वर्षा होती है, वह दिन 'आषाढ का एक दिन' था। कालिदास मल्लीका के साथ अपना जीवन प्रारंभ करना चाहता है, लेकिन दूसरे ही क्षण मल्लीका की बेटी की रोने की आवाज सुनकर स्तब्ध हो जाता है।

संक्षप में कालिदास और मल्लिका का प्रेम भाव को यहाँ रेखांकित किया गया है।

लहरों के राजहंस (1963) :

नाटककार मोहर राकेश की दूसरी नाट्य कृति है, यह रचना ऐतिहासिक आधार लेकर लिखी है। प्रस्तुत नाटक तीन अंकों में विभाजित है। नाटक लहरों के राजहंस में व्यक्ति की निर्णायात्मक स्थिति और मानसिक तणाव ही उद्घाटित हुआ है। इसमें नंद और सुंदरी के पारस्पारिक रिश्तों को इतिहास के माध्यम से देखने का प्रयास किया गया है।

'लहरो के राजहंस' नाटक का प्रारंभ नंद की पत्नी सुंदरी के कामोत्सव के आयोजन से होता है। सुंदरी कामोत्सव का विधान करते है जिसके दूसरे दिन प्रात: काल यशोधरा भिक्षुगी होनी वाली है। सुंदरी के मन मे यशोधरा के प्रति विद्वेश भाव दिखा हुआ है।

नाटक के तीसरे अंक में कथानक एक नया मोड लेता है। गोतमबुद्ध के पास गया हुआ सिर मुण्डन कर लौटता है। सुंदरी की निंद जब टूटती है तो वह नंद को इंगित करके उत्तर देते है।

लौटकर वे नहीं आए है, जो आया है वह व्यक्ति कोई दूसरा ही है। इस बात को सुनकर नंद तिलमता उठता है।

इस प्रकार 'लहरों के राजहंस' में ऐतिहासिकता और आधुनिकता का अद्भुत सामंजस्य है।

आधे-अधूरे (1969 ई.) :

मोहन राकेश का यह तीसरा नाटक है।! इस नाटक में पति-पत्नी के गृह-कलह को आधार बताया है।

नाटक का प्रारंभ पुरूष महेन्द्रनाथ से होता है। वह अपने आप में उलझा हुआ है। महेन्द्रनाथ की पत्नी सावित्री है। जो हर समय अपने पती को भलाबुरा कहती है। वह कहती है कि 'आज सिंघालिया खानेपर आनेवाले हैं जो पुरुष एक को अच्छा नहीं लगता उसकी राय में जुनेजा अच्छा आदमी है। पत्नी को लगता है कि ऐसे दोस्तों ने ही उसका घर बर्बाद किया है। वह अपने बडे लडकके अशोक की नौकरी के बाद सिंघानिया (पुरुष दो) से करना चाहती है। इस समय पुरुष एक जगमोहन (पुरुष-तीन) के बाव करता है। बडे लडके बिन्नी मनोज की प्रेमिका है। जो शादी के बाद भी खुश नहीं है। घर में छोटी लडकी किन्नी सीधे मुँह कभी किसी से बात नहीं करती। छोटे लडकी और अशोक हमेशा लडके रहते है। पुरुष एक लगता है। घर के सभी लोग मेरे साथ दुर्व्यवहार करते है। यहाँ परिवार का पूरा जीवन प्रेमलता में व्यस्त है।। बडी लडकी मनोज के साथ भाग चुकी है, छोटी लडकी सुरेखा के साथ गंदी बातों में रस लेती है। अशोक सेन्टरवाली किसी लडकी के पीछे दीवाना है और गृहलक्ष्मी सावित्री जगमोहन के साथ नया ब्याह रचाने की तैयारी कर चुकी है। जुनेजा बडी लडकी बिन्नी को बताता है कि महेन्द्रनाथ सावित्री को बहुत प्यार करता है। सावित्री जब घर आती है तो जुनेजा से कहती है कि वह सदैव कामपीडित एवं भोगविलास की भूखी रही है।

आधे-अधूरे नाटक में पुरेपन की खोज है। मानवीय जीवन की लीलया और व्यक्तित्व की सार्थकता की आकांशा की अभिव्यक्ति के लिए पुरे पुरुष की खोज नाटक दर्शाया गया है। इस नाटक में आज के मानव को अनियंत्रित अंत होन-यंत्रनाओं के गर्भ में नारी के मुक्त भावना वैवाहिक संबंधों की विडम्बना पुरुष के अधूरेपन तथा विघटन शील जीवन मूल्यों को दर्शाया गया है।

इसके आलावा पैर तले की जमीन (अपूर्व 1975) आडे के दिलके आदि मोहन राकेश एकांकी में गिने जाते हे।

कहानीकार के रूप में :

मोहन राकेश की प्रतिष्ठा कहानियों से होती है। जिसप्रकार मोहन राकेश का नाम नाटककार के रूप में आ जाता है, स्थान कहानीकार उपन्यासकार के रूप में भी आजाता है। उन्होंने नूतन संवेदनात्मक स्थिति और व्यक्ति के अस्तित्व के समस्याओं को उठाया है। इस संदर्भ में उर्मिला मिश्र लिखती है, ''वास्तव में राकेश तरुणोचित रुचियों के कहानीकार थे। वे आधुनिक युवा पीढी के मन:स्थिति और परिस्थिति को लेकर कहानियों की सामग्री तैयार करते थे।''

मोहन राकेश के प्रथम कहानी 'नन्ही' रहे है, जो 'सारिका' में मोहन राकेश स्मृति अंक में प्रकाशित हुई थी। उनके विभिन्न कहानी, संग्रहों के रूप में कुछ कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी है। जैसे-

'इन्सान के खण्डहर - 1950, नए बादल - 1957, जानवर और जानवर - 1958, एक और जिंदगी - 1961 ई, फौलाद का आकाश - 1966, आज के साक्षे - 1967, मिले-जुले चेहरे - 1969, एक एक दुनिया - 1969, पहचान - 1972, मोहन राकेश की श्रेष्ठ कहानियाँ - 1972, चेहरे - 1972, मेरी प्रिय कहानियाँ - 1971 और वामूस - 1972 आदि उनके रचनाएँ प्रकाशित हुई है। मोहन राकेश आधुनिक युग

के अग्रणी साहित्यकार है। कथाकार के रूप में उन्हें नये कहानी साहित्य का प्रेरक माना जाता है।

उपन्यासकार के रूप में :

मोहन राकेश अपने परिवेश से प्रतिबद्ध रचनाकारों में सर्वश्रेष्ठ तथा अविस्मरणीय है। उनकी कथाचेतना में प्रगीनशीलता के भूमि पर आधुनिक का विकास हुआ है। अत: हम उनके उपन्यास के सूची यहाँ देते है।

1) अंधेरे बंद कमरे – 1961

2) न आनेवाला कल – 1968

3) अन्तराल – 1972

4) काँपता हुआ दरिया

5) स्याहा और सफेद

6) गुंसली

7) नीली राशेनी की बाँह आदि।

मोहन राकेश हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में उनका स्थान महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने स्त्री–पुरुष के संबंधों में तणाव एवं बिखराव आदि का चित्रण किया है। मोहन राकेश मध्य वर्ग के मानवीय रिश्तों की पीडा के उपन्यासकार है। 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास की कथा की पृष्ठभूमि स्वतंत्रता के प्राप्ति के बाद दिल्ली का जीवन है। आजादी के बाद महानगर उँची–उँची इमारते है, दूसरे तरफ सामान्यजन की अवस्था, नेता और अधिकारी इन दोनों के बीच मध्यमवर्ग का जीवन है। 'अंधेरे बंद कमरें' उपन्यास के प्रमुख पात्र है – मधुसुदन, हरबंस, शुक्ला और नीलिमा आदि है। और नीलिमा, शुक्ला, सुषमा आदि पात्र स्त्री वर्ग से संबंधित है। उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक है।

मनुष्य महानगरीय जीवन में एक दूसरे से अपरिचीत सा दौडता चला जा रहा है। मोहन राकेश ने दिल्ली के सांस्कृतिक, राजनैतिक और पारिवारिक जीवन के खोखलेपन का चित्रण करते हुए स्त्री–पुरुष के निर्बंध संबंध की विडंबना को चित्रित किया है।

न आनेवाला कल (1968 ई.) :

यह सामाजिक उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास का कथानक संक्षिप्त है। इसका मुख्य पात्र मनोज सक्सेना है। जो शिमला कान्वेट स्कूल में अध्यापक है और वह त्याग पत्र देता है। उपन्यास अध्यायों में बँटा है। जैसे – त्यागपत्र, डर, कुर्सी, सहयोगी, नाटक, सडक और दरवाजे आदि।

उपन्यास का मुख्य नायक मनोज सक्सेना के त्यागपत्र के साथ आरंभ होता है। वे अपनी पत्नी शोभा को पत्र नहीं लिख पाता। शोभा अपने प्रथम पती के साथ सात वर्ष बिताने के बाद, उसके मृत्यु के पश्चात मनोज के पास आती है। शोभा और मनोज के बीच निरंतर तनाव की स्थिति का संकेत उपन्यासकार मोहन राकेश ने दिया है। इस उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक है। मनोज, शोभा, मि. टोनी विहलसर, बुधवानी, पारकर रोज,

चैरी, लैरी, डायना, मिससे एटकिन्स, फादर विल्यम आदि पात्रों के माध्यम से कथानक को रेखांकित किया है।

अन्तराल (1972 ई.) :

मोहन राकेश का यह तीसरा उपन्यास है। आधुनिक युग के परिवारों में स्त्री-पुरुषों के वैवाहिक संबंधों के बनने, बिगडने के पीछे कई सामाजिक कारणों को लेकर उपन्यास में दर्ज किया है। उपन्यास की कथा, आधार बंबई के जीवन को बनाया गया है। इसके प्रमुख पात्र है - कुमार और श्यामा। श्यामा से कुमार की पहली भेंट एक कस्बे में होती है, किसी शादि के पार्टी में और इसके बाद दर्शनशास्त्र के अध्यापक प्रो. कुमार श्यमा एक दूसरे के निकट आते है। कुमार जब बंबई चले जाते है। तब श्यामा से उनका विवाह नहीं होता। इसे ही लेखक ने 'अन्तराल' नाम नामकरण किया है।

इस उपन्यास में देव, श्यामा, कुमार आदि पात्र आते है। श्यामा का विवाह साडे तीन वर्ष पूर्व हुआ था और उस बीच वह केवल डेढ वर्ष अपने पतीदेव के पास रही। विधवा होने के बाद श्यामा एक अजीब से स्थिति का अनुभव कर अपने अतित को भूल जाने का उपक्रम करती है। लेकिन श्यामा और कुमार एक दूजे मिल नहीं सकते, इसी त्रासदी को लेखक ने अभिव्यक्त किया है।

निबंधकार के रूप में :

मोहन राकेश ने निबंध लिखे है। अनेक निबंधों का संग्रह 'परिवेश' सन 1967 प्रकाशित हुआ। 'परिवेश' के ललित निबंध संग्रह में निबंधों को आठ भागों में विभक्त किया है। इसमें से कुल 21 निबंधों का संग्रह है। जैसे - यथार्थ की परिस्थितयाँ, अन्धर का घाव, पुस्तकों को चाहिस, समय और यथार्थ के शिल्प में आदि निबंध प्रकाशित हुए है। इसके अलावा 'ब्याह कर ही लूँ' साहित्यकारों की समस्याएँ, नाटककार और रंगमंच 1968, हथयेपर, रंगमंच और शब्द, नई निगाहों के सवाल, तुलसी एक अपेक्षित मूल्य, उन्हें शिकायत है, एक दिशाहीन दिशा और कॉपती हुई लकीरे आदि उनके प्रसिद्ध कहानियाँ है।

डायरी के रूप में :

नाटककार मोहन राकेश ने डायरी भी लिखी है। 'मोहन राकेश की डायरी' सन 1985 ई. में प्रकाशित हुई है।

अनुवाद के रूप में :

मोहन राकेश ने अनुवाद भी किये है। इन्होंने संस्कृत में से हिंदी तथा अंग्रेजी से हिंदी में विभिन्न कृतियौं का अनुवाद किया गया है। जैसे - मृच्छकटिना - 1961, शाकुन्तल - 1965 ई., एक औरत का चेहरा और हिरोशिमा के फुल आदि।

यात्रा वर्णन :

मोहन राकेश ने यात्रा वर्णन भी लिखा है। उनका पहला यात्रा वृत्त सन 1957 में 'आखिरी चट्टान तक' लिखा है। इसमें पश्चिमी समुद्र तट का यात्रा वर्णन है।

बाल साहित्य के रूप में :

मोहन राकेश ने 'बिन हाड मांस के आदमी' नामक बालसाहित्य 1974 ई. लिखा है।

रिपोर्ताज के रूप में :

मोहन राकेश ने 'संतयुग के लोग' यह रिपोर्ताज और कहानी का मिला जुला रूप है।

संक्षेप में मोहन राकेश जी का व्यक्तित्व नया कृतित्व बहुआयामी रहा है। मोहन राकेश के दो महत्त्वपूर्ण पहलु उनका संघर्ष और लेखन कार्य रहा है। मोहन राकेश आज हमारे सामने नाटककार तथा उपन्यासकार के रूप में काफी चर्चित और महत्त्वपूर्ण हिंदी साहित्य में स्थान रहा है।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न – निम्नलिखित वाक्यों में दिए पर्याय में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रथम लेखक ..... है।
   अ) गार्सा द ताँसी ब) जॉर्ज गिर्यसन क) रामचंद्र शुक्ल ड) मिश्र बंधु

2) आधुनिक काल की मीरा ..... को कहा जाता है।
   अ) सुमित्रानंद पंत ब) महादेवी वर्मा क) राजी शेख ड) मन्नु भंडारी

3) आधुनिक काल में लिखा गयी खडी बोली का प्रथम महाकाव्य ..... है।
   अ) प्रिय प्रवास ब) साकेत क) कामायनी ड) लोकायतन

4) दि्वेदी काल को ..... किस नाम से जाना जाता है।
   अ) प्रगतिवाद ब) जागरण सुधार काल क) सामंतकाल ड) श्रृंगारकाल

5) 'द मॉडर्न वनैक्युलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' के लेखक ..... है।
   अ) राहुल सांस्कृत्यायन ब) जॉर्ज ग्रियर्सन क) गार्सा–द–ताँसी ड) वर्डस्वर्थ

6) आ. रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य में प्रारंभिक काल को ..... नाम से अभिहित किया है।
   अ) श्रृंगारकाल ब) बीजपवन काल क) रासों का ड) बीरगाथा काल

7) कवि नागार्जुन को ..... नाम से जाना जाता है।
   अ) आधुनिक युग का तुलसी ब) आधुनिक युग का कबीर
   क) आधुनिक युग का रहीम ड) आधुनिक युग का कुतबन

8) आधुनिक काल के इनमें से कौनसा नाम नहीं दिया गया है।
   अ) वर्तमानकाल ब) गद्यकाल क) सामाजिक काल ड) आधुनिक काल

9) आधुनिक काल की समय सीमा ..... है।

अ) 1800 ई. ब) 1843 ई. क) 1850 ई. ड) 1857 ई.

10) 'श्रृंगार रस मंडण' ग्रंथ के रचियता ..... है।

अ) गंग कवि ब) चन्दबरदाई क) सुरती मिश्र ड) लाल कवि

11) नासिकेतो पाख्यान के रचियता ..... है।

अ) इशा अल्ला खाँ ब) लल्लूकाल क) सदासुखलाल ड) सदल मिश्र

12) 'राजा भोज का सपना' पुस्तक के लेखक ..... है।

अ) राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ब) लाला श्रीनिवासदास

क) इशा अल्ला खाँ ड) राजा लक्ष्मणसिंह

13) भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार-प्रसाद सर्वप्रथम ..... प्रांत में हुआ।

अ) गुजरात ब) बंगाल क) दिल्ली ड) मुंबई

14) आधुनिक काल के जनक ..... है।

अ) भारतेन्दु ब) महावीर प्रसाद द्विवेदी

क) रामचंद्र शुक्ल ड) हजारी प्रसाद द्विवेदी

15) भारतेन्दु युग के समय सीमा..... है।

अ) 1918 ई. - 1936 ई. ब) 1900 ई. - 1918 ई.

क) 1800 ई. - 1850 ई. ड) 1857 ई. - 1900 ई.

16) महावीर प्रसाद द्विववेदी ने सरस्वती पत्रिका का संपादन ..... से संभाला।

अ) 1920 ई. ब) 1900 ई. क) 1903 ई. ४) 1950 ई.

17) भारतेन्दु जी का जीवन काल ..... रहा है।

अ) 35 वर्ष ब) 30 वर्ष क) 38 वर्ष ड) 40 वर्ष

18) आर्य समाज की स्थापना ..... में हुई।

अ) दिल्ली ब) काशी क) गुजरात ड) मुंबई

19) इनमें से भारतेन्दु जी का नाटक नहीं है।

अ) विशाख ब) नीलदेवी क) अंधरेनगरी, ड) प्रेमजोहीनी

20) 'निज भाषा उन्नीत अहै सब उन्नति कौमूल' यहँ पक्ति ..... की है।

अ) मोहन राकेश ब) मैथिलीशरण गुप्त क) भारतेन्द ड)अयोध्यासिंह उपाध्याय

21) 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आँखो में पानी' यह पंक्तियाँ काव्यकृत की .....है।

अ) यशोधरा ब) पंचवटी क) द्वापर ड) साकेत

22) खडी बोली हिंदी को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय ..... को दिया जाता है।

अ) श्रीधर पाठक ब) मैथिलीशरण गुप्त
क) अयोध्यासिंह उपाध्यायय ड) महावीर प्रसाद द्विवेदी

23) आधुनिक काल में लिखा गया खडी बोली का प्रथम महाकव्य .....है।

अ) साकेत ब) प्रियप्रवास क) कामायनी ड) उर्वशी

24) 'छायावाद' को 'स्कूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' ..... आलोचक ने कहा है।

अ) आ. रामचंद्र शुक्ल ब) नंददुलारे वाजपेयी क) डॉ. नगेंद्र ड) डॉ. नामवर सिंह

25) 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' पंक्ति ..... छायावादी कवि है।

अ) महादेवी वर्मा ब) निराला क) जयशंकर प्रसाद ड) महादेवी वर्मा

26) छायावाद की समय सीमा ..... मानी गई है।

अ) 1900-1920 ई. ब) 1920-1935 ई.
क) 1918-1938 ई. ड) 1940-1950 ई.

27) जयशंकर प्रसाद की अंतिम कृति इनमें से ..... है।

अ) कामायनी ब) आँसू क) झरना ड) लहर

28) कामायनी के कुल ..... सर्ग है।

अ) दस ब) बीस क) तीस ड) पन्द्रह

29) कामायनी का प्रकाशन ..... को हुआ।

अ) 1925 ई. ब) 1935 ई. क) 1940 ई. ड) 1915 ई.

30) जयशंकर प्रसाद द्वार रचित विरह काव्य ..... है।

अ) झरना ब) आँसू क) लहर ड) चित्राहर

31) 'सुधनी साहू' धराने ये ..... का जन्म हुआ था।

अ) सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ब) जयशंकर प्रसाद
क) महादेवी वर्मा ड) सुमित्रानंदन पंत

32) कामायनी में ..... दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है।

अ) बौद्ध दर्शन ब) अद्वैतवाद क) विशिष्ट द्वैववाद ड) शैवदर्शन

33) कामायनी का पात्र 'इडा' ..... का प्रतीक है।

अ) हृदय ब) बुद्धि क) मन ड) धर्म

34) 'आँयू' जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित रचना ..... में प्रकाशित हुई।

अ) 1925 ई. ब) 1935 ई. क) 1945 ई. ड) 1955 ई.

35) आँसू ..... शैली में लिखा रचित विरह काव्य है।

अ) मुक्तक ब) प्रबंध क) छंद ड) मसनवी

36) 'लहर' ..... काव्य है।।

अ) शोक ब) गोत क) करुण ड) बाल

37) जयशंकर प्रसाद ने कुल ..... कहानियाँ लिखी है।

अ) 69 ब) 80 क) 60 ड) 90

38) प्रसाद जी की कहानियाँ ..... पत्रिका में छपती थी।

अ) सरस्वती ब) मर्यादा क) इन्दु ड) प्रताप

39) हिंदी नाटकों का विकास क्रम ..... लेखक के रचनाओं से प्रारंभ हुआ।

अ) उपेन्द्रनाथ अश्क ब) जयशशंकर प्रसाद क) भारतेन्दु ड) इनमें से नहीं

40) सन 1900 से 1950 ई. तक की कालावधी को ..... नाटककार के नाम से जाना जाता है।

अ) भारतेन्दु युग ब) प्रसाद युग क) अश्क युग ड) इनमे से नहीं

41) इनमें से भारतेन्दु का मूल नाटक ..... नहीं है।।

अ) पाखंड विडम्बन ब) सती प्रताप क) नील देवी ड) अन्धेर नगरी

42) इनमें से भारतेन्दु जी का नाटक ..... नहीं है।

अ) सती प्रताप ब) प्रेमजोगिनी

क) वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवनी ड) कारवा

43) भारतेन्दु के पिता गोपालचंद गिरधरदास ने ..... नाटक की रचना की थी।

अ) रामायन महानाटक ब) नहुष क) प्रद्युम्न विजय ड) जानकी मंगल

44) भारतेन्दु जी ने ..... प्रहसन में भ्रष्ट शासन तंत्रपर प्रहार किया है।

अ) नीलदेवी ब) अन्धेरनगरी क) विद्यासुन्दर ड) धनंजय विजय

45) जयशंकर प्रसादजी इनमें से किस वर्ग के नाटककार है।

अ) आदर्शवादी ब) ऐतिहासिक क) समाजसुधारवादी ड) कोई नहीं

46) जयशंकर प्रसादजी का इनमें से ..... यह नाटक नहीं है।

अ) स्कंदगुप्त ब) अजानशत्रू क) जनमेजय का नाग यज्ञ ड) हर्षवर्धन

47) जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित गीत नाट्य ..... है।

अ) अन्धायुग ब) उर्वशी क) कानुन कुसुम ड) करूणालय

48) 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' नामक जयशंकर के ..... नाटक का है।

अ) स्कंदगुप्त ब) चन्द्रगुप्त क) ध्रुवस्वामिनी ड) अजातशत्रू

49) जयशंकर प्रसादजी का नाटक ..... नाटक अभिनेयता की दृष्टि से अपेक्षाकृत सफल है।

अ) राजश्री ब) स्कंदगुप्त क) घ्रुवस्वामिनी ड) जनमेय का नाग यज्ञ

50) इनमें से ..... नाटक मोहन राकेश का है।

अ) आधे-अधुरे ब) कोणार्क क) आठवा सर्ग ड) पहला राजा

51) 'आषाए का एक दिन' नाटक के रचयिता ..... है।

अ) कालीदास ब) मोहन राकेश क) विजय तेंडूलकर ड) मुद्राराक्षस

52) 'लहरों के राजहंस' का नायक नंद ..... का प्रतिक है।

अ) संशयशील मानव का प्रतिक ब) बौद्ध धर्म की विजय का प्रतिक
क) अन्वर्यन से टूटा हुआ व्यक्ति ड) किसी का नहीं

53) आधे-अधुरे की रचना मोहन राकेश ने ..... में की थी।।

अ) 1960 ई. ब) 1989 ई. क) 1979 ई. ड) 1950 ई.

54) 'अण्डे के छिलके' ..... का एकाकी का संकलन है।

अ) विजय तेंडूलकर ब) मोहन राकेश क) हरिकृष्ण प्रेमी ड) गिरिजा कुमार माकर

55) मोहन राकेश कहानियाँ ..... है।

अ) मलबे का आदमी ब) एक और जिंदगी

क) जानवर औरजानवर ड) उपर्युक्त सभी

56) मोहन राकेश के उपन्यास ..... है।

अ) अन्धेरे बन्द कमरे ब) न आनेवाला कल

क) अन्तराल ड) उपर्युक्त सभी

57) मोहन राकेश के नाटक ..... है।

अ) आषाढ का एक दिन ब) लहरों के राजहंस

क) आधे-अधुरे ड) उपर्युक्त सभी

58) जयशंकर प्रसाद जी का एकांकी संग्रह ..... है।

अ) एक घूंट ब) बादल की मृत्यु क) अण्डे के छिलके ड) विषकन्या

59) 'एक घूंट' एकांकी की रचना ..... में हुई।

अ) 1929 ई. ब) 1939 ई. क) 1942 ई. ड) 1925 ई.

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1) सराहना - प्रशंसा
2) क्षुधा - भूख
3) ऊसर - खेती योग्य नही
4) वाकई - सचमुच
5) ऊहापोह - सोच-विचार
6) अमन - शांति
7) झील - तालाब
8) खामोशी - मौन
9) जडता - अचेतना
10) पांडुलिपि - पुस्तक हस्तलिखित प्रत
11) पराधिनता - गुलामी
12) अधिष्ठान - प्रभुत्व
13) उपनाम - पुकारने का नाम
14) सहिष्णु - सहनशील
15) ऋतु - मौसम
16) मिशनरी - ईशाई धमोपदेशक
17) वेदांत - छ. दर्शनों में से एक

18) व्यंग्य – उपहास की दृष्टि से बनाया चित्र
19) ओजस्वी – बलवान
20) जागरण – जागृति
21) द्वैत – दोनां होने का भान
22) जोशीला – जोश से भरा हुआ
23) बाल की खाल निकालना – बहुत छानबीन करना
24) रिपोर्टर – पत्रकार
25) अजात शत्रू – जिसका शत्रू नहीं
26) यथार्थ – वास्तव
27) सृजन – लिखना
28) स्मृति – यादे
29) मेघ – बादल
30) मुख – चेहरा
31) जोखीम – कढीकाइयाँ
32) ग्रह – धर
33) अन्तराल – दो बिंदुओं या कालो के मध्य का आकाश
34) परिवेश – परिधि
35) द्विवेदी – दो वेदों को जाननेवाला
36) स्वातंत्र्योतर – स्वतंत्रता के बाद
37) आलोचना – समीक्षा करना – देखना
38) परिमार्जित – त्रुटिरहित
39) समसामायिकता – समकालीन
40) अंतर्द्वद – आंतरिक संघर्ष

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1) अ	2) ब	3) अ	4) ब
5) क	6) ब	7) ब	8) क
9) ब	10) ब	11) अ	12) ड
13) अ	14) ब	15) अ	16) ड
17) क	18) अ	19) ड	20) अ
21) क	22) अ	23) ड	24) ब
25) क	26) क	27) क	28) अ
29) ड	30) ब	31) ब	32) ब

33) अ	34) ब	35) अ	36) अ
37) ब	38) अ	39) क	40) क
41) ब	42) अ	43) ड	44) ब
45) ब	46) ब	47) ड	48) ड
49) क	50) क	51) अ	52) ब
53) अ	54) ब	55) ब	56) ड
57) ड	58) ड	59) अ	

2.7 सारांश :

आधुनिक काल का साहित्य यह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। जिसमें पद्य के साथ-साथ गद्य, समालोचना, कहानी, नाटक और पत्रकारिता का विकास हुआ। इसी कारण आधुनिक युग की मुख्य विशेषता गद्य के प्रधानता रही। आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रारंभ 19 वी शताब्दी के मध्य से माना जाता है। हिंदी गद्य साहित्य का विकास भारतेन्दु पूर्व युग, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग और शुक्लोत्तर युग के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

भारतेन्दु पूर्व काल में विभिन्न पत्रिओं का उगम हुआ। प्रारंभिक गद्य-साहित्य का सामान्य परिचय उपर्युक्त माध्यम से दिया गया है। साथ ही सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का ऊहापोह किया गया है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र को हिंदी साहित्य में आधुनिक काल का पवर्तक साहित्यकार माना जाता है। भारतेन्दु ने आर्थिक विषयत्ता, स्वाधिनता नारी शिक्षा, धार्मिक पाखंड, हिंदी भाष्य सबपर अपनी नयी सोच। विचार प्रकट किए। उनका अष्टपैलू था। आ. रामचंद्र शुक्प के अनुसार, ''वे साहित्य के नए युग के प्रवर्तक है।''

आधुनिक साहित्य में विभिन्न प्रकार की, विशेषताएँ दिखाई देती है। जैसे -

आधुनिक साहित्य यथार्थ बोध पर आधारित है। जिसमें राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, जनजीवन चित्रण, मानववादी दृष्टिकोन खडी बोली की प्रतिष्ठा आदि का चित्रण इस काल में किया गया है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का जीवन संघर्षमय तथा लोक संयुक्त था इसलिए उनके काव्य में प्रेम सौंदर्य के साथ-साथ सुख-दु:ख, मानव यातना एवं जीवन संघर्ष दिखाई देता है।

आधुनिक काल का साहित्य गद्य विधाओं के दृष्टि से समृद्ध है। साक्षात्कार, भेटवार्ता, यात्रा साहित्य, डायरी लेखन जैसी विधाएँ प्रकाश में आ रही है। किंतू कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध जैसे विधाओं का जो स्थान है वह स्थान अन्य विधाओं का अधिक नहीं है। जो मे हो संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, आत्मकथा तथा रिपोर्ताज जैसी विधाएँ पाठकों का ध्यान आकर्षित कर रहे है।

संक्षेप में इस इकाई के पढने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक काल की परिस्थितियाँ, युग प्रवर्तक साहित्यकार का परिचय प्राप्त होता है और गद्य विधाओं सामान्य परिचय पाठकों तक पहुँचाने में मदद होती है।

2.8 स्वाध्याय :

1) प्रारम्भिक गद्य साहित्य सामान्य परिचय दिजिए।
2) आधुनिक काल की सामाजिक परिस्थितीयों पर प्रकाश डालिए।
3) आधुनिक काल की राजनीतिक परिस्थितीयों पर प्रकाश डालिए।
4) युगप्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चंद्र पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।
5) भारतेन्दु युगीन काव्य में देश भक्ति की भावना मुखरित हुई है, विवेचन कीजिए।
6) हिंदी गद्य का विकास पर संक्षिप्त लिखिए।
7) खडी बोली गद्य की प्रारम्भिक रचनाओं पर टिप्पणी लिखिए।
8) आधुनिक काल के प्रवेश द्वार – भारततेन्दु के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।
9) भारतेन्दु का रचना संसार – स्पष्ट कीजिए।
10) जयशंकर प्रसाद का सामान्य परिचय दीजिए।
11) जयशंकर प्रसाद का रचना संसार पर प्रकाश डालिए।
12) मोहन राकेश का व्यक्तित्व तथा कृतित्व को समझाइए।
13) नाटककार के रूप में मोहन राकेश पर टिप्पणी लिखिए।

2.9 क्षेत्रिय कार्य :

- आधुनिक काल के प्रारंभिक गद्य साहित्य का सामान्य परिचय दीजिए।
- आधुनिक कालीन साहित्य विविध परिस्थितियों का अध्ययन करना।
- आधुनिक काल का प्रवेश द्वार भारतेन्दुजी का व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालना।
- छायावादि कवि जयशंकर प्रसाद के रचना संसार पर प्रकाश डालना।
- नाटककार मोहन राकेशजी का व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालना।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) हिंदी साहित्य का इतिहास – आ. रामचंद्र शुक्ल
2) हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियॉ – डॉ. शिवकुमार शर्मा
3) हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह
4) हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास – आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
5) साठोत्तरी हिंदी कविता – डॉ. रतनकुमार पाण्डेय

●●●

इकाई 3

आधुनिक गद्य विधाओं का विकास

हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं – उपन्यास, नाटक, यात्रा साहित्य का उद्भव और विकास

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय – विवेचन

3.3.1 हिंदी उपन्यास साहित्य : उद्भव और विकास

3.3.2 हिंदी नाटक साहित्य : उद्भव और विकास

3.3.3 हिंदी यात्रा साहित्य : उद्भव और विकास

3.4 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.6 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

1. हिंदी उपन्यास साहित्य के उद्भव और विकास से परिचित होंगे।
2. हिंदी नाटक साहित्य के उद्भव और विकास से अवगत होंगे।
3. हिंदी यात्रा साहित्य के उद्भव और विकास को समझ सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया जाता है – 1. आदिकाल (सं. 1050 से सं. 1375 तक), 2. भक्तिकाल (सं. 1375 से सं. 1700 तक), 3. रीतिकाल (सं. 1700 से सं. 1700 तक) और 4. आधुनिक काल (सं. 1900 से आज तक)। आरंभिक तीन कालों में साहित्य सृजन केवल पद्य रूप में होता रहा है; परंतु आधुनिक काल में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव और प्रेरणा से हिंदी गद्य साहित्य का उद्भव और विकास हुआ। हिंदी गद्य साहित्य का उद्भव और विकास आधुनिक काल की एक महत उपलब्धि मानी जाती है इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग को 'गद्यकाल' कहा है।

हिंदी गद्य के विकास की भूमिका में प्रथम चार हिंदी गद्य आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिनके नाम हैं – मुंशी सदासुखराय, सदल मिश्र, लल्लूलाल और सैय्यद इंशा अला खाँ। यद्यपि भारतेंदु ने विविध शैलियों के प्रयोग से हिंदी गद्य क्षेत्र को समृद्भ करते हुए साहित्य में प्रतिष्ठापित किया। अतः भारतेंदु युग आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का प्रवेश द्वार है। भारतेंदु ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर लेखनी चलाकर खड़ीबोली को गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में प्रतिष्ठित किया। इसी कारण भारतेंदु आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य के 'जनक' माने जाते हैं। संक्षेप में भारतेंदु युग से आज तक हिंदी गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास हो रहा है।

प्रस्तुत इकाई में हम आधुनिक गद्य विधाओं के अंतर्गत हिंदी उपन्यास, नाटक और यात्रा साहित्य के उद्भव और विकास पर क्रमशः विस्तार से विवेचन करेंगे।

3.3 विषय – विवेचन :

3.3.1 नामकरण :

आधुनिक युग में हिंदी गद्य साहित्य के अंतर्गत उपन्यास विधा का महत्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास आधुनिक युग की देन है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने उपन्यास विधा की पृष्ठभूमि में संस्कृत कथा साहित्य हितोपदेश, पंचतंत्र, जातक कथाएँ, दशकुमारचरित, कादंबरी आदि रचनाओं को प्रेरक माना है, परंतु इनमें आधुनिक उपन्यासों के गुणों का अभाव है। अतः हिंदी उपन्यास के आधुनिक स्वरूप पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव रहा है। अंग्रेजी सत्ता और साहित्य के कारण भारत में सबसे पहले बंगला में अंग्रेजी के नावेल शैली के अनुकरण पर उपन्यास लिखे गए तद्नंतर हिंदी में मौलिक उपन्यासों का सृजन हुआ।

संक्षेप में आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य की अन्य विधाओं के समान उपन्यास का विकास भी अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव और संपर्क से हुआ है।

हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास :

हिंदी के प्रथम मौलिक उपन्यास के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतेंदु द्वारा अनुवादित चंद्रप्रभा और पूर्ण प्रकाश को हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास मानते हैं। डॉ. श्रीकृष्ण लाल ने देवकीनंदन खत्री के चंद्रकांता को; तो कुछ विद्वान श्रद्धाराम फुलोरी के भाग्यवती को हिंदी का प्रथम उपन्यास मानते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लाला श्रीनिवासदास कृत परीक्षा गुरु को अंग्रेजी ढंग का पहला उपन्यास माना है। अधिकांश विद्वान परीक्षा गुरु को ही हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास मानते हैं।

उपन्यास : विकास परंपरा :

हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में प्रेमचंद का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। प्रेमचंद ने उपन्यास साहित्य को उत्कर्ष की चरमसीमा पर पहुँचाया। अतः प्रेमचंद को केंद्र में रखकर उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्न भागों में विभाजित किया जाता है –

1. प्रेमचंद पूर्व युग (सन 1882-1915)

2. प्रेमचंद युग (सन 1915-1936)

3 प्रेमचंदोत्तर युग (सन 1936 – से आज तक)

1. प्रेमचंद पूर्व युग :

इस युग के लेखकों को उपन्यास रचना की प्रेरणा मराठी, बंगला और अंग्रेजी के उपन्यासों से प्राप्त हुई। इस काल में तिलस्मी ऐयारी, जासूसी, अद्‌भुत घटना प्रधान, ऐतिहासिक, सामाजिक आदि प्रकार के उपन्यास लिखे गए। साथ – ही – साथ अंग्रेजी, बंगला आदि भाषाओं से उपन्यास अनुवादित करने का काम जारी था। इन उपन्यासों का उद्‌देश्य केवल मनोरंजन था; उनका जनजीवन से कोई संबंध नहीं था। अतः इस युग के सारे उपन्यास घटना प्रधान, कल्पना प्रधान और चमत्कार प्रधान है।

स्वरूप :

स्वरूप तथा उद्‌देश्य के आधार पर इस युग के उपन्यासों के तीन वर्ग किए जा सकते हैं –

(अ) मनोरंजन प्रधान उपन्यास – जिनके अंतर्गत तिलस्मी ऐयारी, जासूसी, अद्‌भुत घटना प्रधान तथा ऐतिहासिक उपन्यास आ जाते हैं।

(आ) जागरण – सुधारवादी उपन्यास – इसके अंतर्गत सामाजिक उपन्यास आ जाते हैं

(इ) अनूदित उपन्यास – जिनके अंतर्गत अन्य भाषा से अनुवादित उपन्यास आ जाते हैं ।

इन सबका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार हैं –

(अ) मनोरंजन प्रधान उपन्यास :

1. तिलस्मी ऐयारी उपन्यास : इस प्रकार के उपन्यासों की परंपरा भारतेंदु काल में प्रारंभ हुई। देवकीनंदन खत्री ने 'काजर की कोठरी', 'अनूठी बेगम', 'भूतनाथ' आदि उपन्यासों का सृजन किया। इसी परंपरा को आगे

बढ़ाने वाले उपन्यासकारों में हरेकृष्णा जौहर ने 'मयंकमोहिनी' या मायाजाल, 'कमल कुमारी', 'भयानक खून', किशोरीलाल गोस्वामी ने 'तिलस्मी शीशमहल', रामलाल वर्मा ने 'पुतली महल' आदि उपन्यास लिखें है।

2. जासूसी उपन्यास : जासूसी उपन्यासों के अग्रगण्य और लोकप्रिय लेखक गोपालराम गहमरी रहे हैं। उन्होंने 'सरकटी लाश', 'चक्करदार चोरी', 'जासूस की भूल', 'जासूसी पर जासूसी', 'जासूस चक्कर में', 'गुप्तभेद', 'जासूस की तैयारी' आदि उपन्यास लिखें। गहमरी की इसी परंपरा को रामलाल वर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, जयरामदास गुप्त आदि ने आगे बढ़ाया।

3. अद्‌भुत घटना प्रधान उपन्यास : इस युग में रहस्यमयी तथा अद्भुत घटनाक्रमों के आधार पर लिखे उपन्यास पाठकों का मनोरंजन करते रहे हैं। इनमें विट्ठलदास नागर के 'किस्मत का खेल', बाँकेलाल चतुर्वेदी के 'खौफनाक खेल', प्रेम विलास वर्मा के 'प्रेममाधुरी' या 'अनंगकांता' तथा दुर्गाप्रसाद खत्री के 'अद्भुत भूत' आदि प्रमुख है।

4. ऐतिहासिक उपन्यास : इस युग में राष्ट्रप्रेम तथा राष्ट्रीय जागरण के उद्देश्य से ऐतिहासिक घटना और चरित्रों के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यास लिखे गए। इस दृष्टि से किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास आदर्श रहे हैं। इनमें तारा वा 'क्षात्रकुलकमलिनी', 'लवंगलता', 'आदर्शबाला', 'सुल्ताना रजिया बेगम', 'रंगमहल में हलाहल', 'मल्लिकादेवी' या 'बंगसरोजिनी' तथा 'लखनऊ की कब्र' आदि लोकप्रिय उपन्यास हैं। जयरामदास के 'कश्मीर पतन', मथुरा प्रसाद शर्मा के 'नूरजहाँ बेगम' व 'जहाँगीर', गंगाप्रसाद गुप्ता के 'नूरजहाँ', 'कुमारसिंह सेनापति', 'हम्मीर' आदि ऐतिहासिक उपन्यास प्रमुख हैं; परंतु इनमें इतिहास कम और कल्पना अधिक है। अतः ऐतिहासिक उपन्यासों की कसौटी पर यह उपन्यास खरे नहीं उतरते।

(आ) जागरण – सुधारवादी उपन्यास :

इस युग के उपन्यासों में समाज सुधारवादी दृष्टिकोण आरंभ हुआ। सामाजिक परंपरा, रूढ़ि – ग्रस्तता तथा समस्याओं को प्रस्तुत किया गया, साथ ही समस्याओं को सुलझाने की प्रवृत्ति का भी उदय हुआ। इस दृष्टि से लज्जाराम शर्मा कृत 'आदर्श दम्पति', 'आदर्श हिंदू', किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'लीलावती' व 'आदर्श सती', 'अँगूठी का नगीना', अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत 'अधखिला फूल', राधिकारमण प्रसाद सिंह कृत 'नवजीवन' या 'प्रेमलहरी', बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान एक सुजान' आदि सामाजिक उपन्यास प्रसिद्ध है। इनमें सुधारवादी दृष्टि प्रधान रही है।

(इ) अनूदित उपन्यास :

इस युग में मौलिक उपन्यासों की अपेक्षा अनूदित उपन्यासों की संख्या अधिक है। इस काल में अंग्रेजी, मराठी, उर्दू, बंगला आदि भाषाओं के उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद हुआ है। विशेषत: बंगला भाषा के उपन्यासों के अनुवाद काफी मात्रा में हुए बंगला से दामोदर मुखोपाध्याय, बंकिमचंद्र, रवीन्द्रनाथ टैगोर, रमेशचंद्र दत्त के उपन्यासों के अनुवाद हुए है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस काल के उपन्यासों में एक ओर मनोरंजन की प्रधानता रही है तो

दूसरी ओर समाज सुधार की दृष्टि भी विकसित हो रही थी। इस युग के उपन्यासों में वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक तथा संभाषण जैसी शैलियों का प्रयोग किया गया है भाषा के तीन रूप अपनाए गए हैं – संस्कृत मिश्रित हिंदी, उर्दू मिश्रित तथा सरल भाषा। अतः इस युग में विभिन्न उपन्यास अवश्य लिखें गए परंतु उनमें जीवन के यथार्थ का अभाव ही रहा है।

2. प्रेमचंद युग :

हिंदी उपन्यास साहित्य को समृद्ध प्रदान करने में प्रेमचंद का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। प्रेमचंद और उनके सहयोगी उपन्यासकारों ने हिंदी उपन्यास को एक नई दिशा दी। प्रेमचंद ने एक ओर पहली बार हिंदी उपन्यास को मनोरंजन के स्तर से उठाकर जनजीवन के साथ जोड़ने का काम किया तो दूसरी ओर उपन्यास विधा को गंभीरता और गरिमा प्रदान की प्रेमचंद ने जनजीवन की समस्याओं को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। पराधीनता, किसानों मजदूरों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अंधविश्वास, दहेज प्रथा, नारी की स्थिति, वेश्याओं की जिंदगी. वृद्ध विवाह, विधवा विवाह, सांप्रदायिक वैमनस्य, अस्पृश्यता, मध्यवर्ग की कुंठा आदि सामयिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण कर जन सामान्य को वाणी देने का प्रयास किया। प्रेमचंद ने विषय और शैली दोनों दृष्टियों से हिंदी उपन्यास को समृद्ध बनाया। अतः प्रेमचंद उपन्यास साहित्य में युग प्रवर्तक साबित हुए; इसी कारण प्रेमचंद को उपन्यास सम्राट कहा जाता है।

प्रेमचंद ने जनजीवन के आदर्श और यथार्थ को दस्तावेज बनाकर अनेक उपन्यास लिखे हैं। 'प्रेमा' तथा 'रूठी रानी' के बाद प्रेमचंद का पहला प्रौढ़ उपन्यास सेवासदन प्रकाशित हुआ। जिसमें मध्यवर्ग की विडंबना का चित्रण है। तत्पश्चात वरदान, प्रेमाश्रय, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, प्रतिज्ञा, गबन, कर्मभूमि, गोदान, मंगलसूत्र (अपूर्ण) जैसी औपन्यासिक रचनाएँ हिंदी जगत के समक्ष प्रस्तुत हुई। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में समाज के सभी वर्गों का चित्रण किया ह। इनका प्रत्येक पात्र समाज के किसी – न – किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। 'गोदान' एवं 'गबन' इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। 'गोदान' भारतीय किसान की पीड़ा का सशक्त दस्तावेज ह। इसलिए गोदान को भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य कहा गया है। प्रेमचंद के सेवासदन, रंगभूमि, प्रेमाश्रय, कर्मभूमि जैसे उपन्यासों पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव रहा है। उनके अधिकतर उपन्यासों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के दर्शन होते हैं; लेकिन निर्मला और गोदान में वे पूरी तरह से यथार्थवादी रहे हैं।

प्रेमचंद ने यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ हिंदी उपन्यास को शिल्प और भाषा की दृष्टि से भी समृद्ध बनाया। विषयवस्तु के अनुकूल शिल्प प्रदान किया। जनसामान्य की भाषा को स्वीकारते हुए ग्राम्य शब्दों का प्रयोग भी सहज रूप में किया है।

अन्य उपन्यासकार :

प्रेमचंद की प्रेरणा तथा अनुकरण से अनेक लेखकों ने उपन्यास लिखने प्रारंभ किए। इनमें जयशंकर प्रसाद के कंकाल और तितली, चतुरसेन शास्त्री के राधा की परख, हृदय की प्यास, अमर अभिलाषा, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के अप्सरा, अलका, निरुपमा, प्रभावती आदि उल्लेखनीय उपन्यास है।

प्रेमचंद की परंपरा में विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक और सुदर्शन का स्थान भी महत्वपूर्ण है। कौशिक के माँ, भिखारिणी तथा सुदर्शन का भाग्यवती उपन्यास उल्लेखनीय है। साथ ही भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा) प्रताप नारायण श्रीवास्तव (विदा, विजय) सियारामशरण गुप्त (गोद, अंतिम साक्ष्य), शिवपूजन सहाय (देहाती दुनिया) आदि उपन्यासकार प्रेमचंद की परंपरा को समृद्ध करने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस युग में प्रेमचंद को आदर्श मानकर उपन्यास लिखने वालों की तादाद लगी हुई है। इन उपन्यासकारों ने उपन्यास को मनोरंजन के स्तर से ऊपर उठाकर जन – जीवन से जोड़ने का प्रयास किया। इनमें सबसे अधिक समाज का उपेक्षित वर्ग केंद्र में रहा है। इनके माध्यम से गांधीवाद, मानवतावाद और आदर्शवाद की स्थापना करने का प्रयास किया गया है।

३. प्रेमचंदोत्तर युग :

प्रेमचंदोत्तर युग में हिंदी उपन्यास साहित्य का विविधमुखी विकास हुआ। प्रेमचंद युगीन प्रवृत्तियाँ इस युग में भी विकसित हुई। प्रेमचंदोत्तर युग में उपन्यास साहित्य नवीन सामाजिक – आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर अग्रसर हुआ। सन 1950 ई. तक अधिकांश उपन्यास फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित हैं। इन उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के स्तर पर मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से उभरी है। अतः प्रेमचंदोत्तर युगीन उपन्यास साहित्य को निम्न रूप में विभाजित किया जा सकता है –

1. सामाजिक उपन्यास

2. मनोवैज्ञानिक उपन्यास

3. साम्यवादी उपन्यास

4. ऐतिहासिक उपन्यास

5. आँचलिक उपन्यास

6. प्रयोगशील और आधुनिक बोध के उपन्यास

1. सामाजिक उपन्यास :

युग में अनेक लेखकों ने प्रेमचंद की सामाजिक उपन्यासों की परंपरा को आगे बढ़ाया सामाजिक उपन्यासों में बदलती हुई परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण है। सामाजिक समस्याओं का चित्रण समाजसुधार की दृष्टि से हुआ है। सामाजिक उपन्यास की परंपरा में उपेंद्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर आदि प्रमुख हैं।

उपेंद्रनाथ अश्क इस युग के सशक्त उपन्यासकार हैं। 'गिरती दीवारें' इनका सर्वाधिक प्रख्यात यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास है। 'सितारों के खेल', 'गर्म राख', 'बड़ी – बड़ी आँखें' आदि उपन्यासों में मध्यवर्गीय सामाजिक समस्याओं का चित्रण है। भगवतीचरण वर्मा के 'तीन वर्ष', 'टेढ़े – मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाँव', 'भूले बिसरे चित्र', 'सबहि नचावत राम गुसाई' आदि महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास हैं। अमृतलाल नागर के चर्चित

उपन्यासों में 'सेठ बाँकेलाल', 'बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर' आदि प्रमुख हैं। इसमें व्यक्ति और समाज के संबंधों को तटस्थ भाव से चित्रित किया है।

अन्य सामाजिक उपन्यासकारों में विष्णु प्रभाकर (तट के बंधन), राजेंद्र यादव (सारा आकाश, उखड़े हुए लोग), भगवतीप्रसाद वाजपेयी (निमंत्रण, विश्वास का बल), उदयशंकर भट्ट (सागर, लहरें और मनुष्य) आदि उल्लेखनीय हैं।

2. मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में उपन्यासकारों ने फ्रायड, युंग एडलर आदि के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर उपन्यास लिखें। उपन्यासकारों ने अपने पात्रों की यौन वृत्तियाँ, दमित वासना, ग्रंथियों का विश्लेषण अपने उपन्यासों में प्रस्तुत की है। मनोविश्लेषणवादी परंपरा में जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय. डॉ. देवराज आदि प्रमुख हैं। जैनेंद्र के सुनीता, परख, कल्याणी, त्यागपत्र आदि उपन्यासों में नारी मन के द्वंद्व तथा आत्म – यातनाओं को प्रस्तुत किया गया है। इलाचंद्र जोशी के सन्यासी, पर्दे के रानी, प्रेत और छाया, मुक्तिपथ, जहाज का पंछी आदि उपन्यासों में फ्रायड, एडलर, युंग आदि के सिद्धांतों के आधार पर काम, अहं एवं आत्महीनता आदि का चित्रण अत्यंत सूक्ष्म एवं यथार्थ के स्तर पर किया गया है। अज्ञेय के उपन्यासों में सूक्ष्म संवेदना, गहन दार्शनिकता, मृदु रोमांस और परिपक्व कला का अद्वितीय चित्रण है। शेखर एक जीवनी (दो भाग), नदी के द्वीप और अपने – अपने अजनबी में क्रमशः जीवन का आग्रह, व्यक्ति मन की भावनाएँ और अस्तित्ववाद के दर्शन होते हैं। अतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में अज्ञेय सर्वोत्कृष्ट माने जाते हैं। डॉ. देवराज कृत पथ की खोज, बाहर भीतर, अजय की डायरी, इसी परंपरा के महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

3. साम्यवादी उपन्यास :

प्रेमचंद युग में गांधीवादी विचारधारा के अतिरिक्त मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आधार पर लिखे उपन्यास साम्यवादी उपन्यास की श्रेणी में आते हैं इसमें वर्ग विषमता, आर्थिक शोषण, जीवन संघर्ष आदि का यथार्थ चित्रण है। लगभग सभी लेखकों ने प्रचलित सामाजिक व्यवस्थाओं का विरोध कर नवीन दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह किया है। इस दृष्टिकोण को लेकर उतरने वालों में यशपाल सर्व प्रमुख उपन्यासकार हैं। इनका 'झूठा – सच' समाजवादी यथार्थ का अंकन करने वाला बहुचर्चित उपन्यास है। यथार्थवादी परंपरा को स्वर देने वाले इनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं – दादा कामरेड, देशद्रोही, पार्टी कामरेड, मनुष्य के रूप आदि।

साम्यवादी उपन्यासकारों की परंपरा में रांगेय राघव (घरौंदा, विषाद मठ, कब तक पुकारूँ), रामेश्वर शुक्ल अंचल (चढ़ती धूप, नई इमारत, उल्का), नागार्जुन (रतिनाथ की चाची, दुःख मोचन, नई पौध, वरुण के बेटे, बाबा बटेश्वरनाथ) आदि उल्लेखनीय है।

4. ऐतिहासिक उपन्यास :

इस युग में भी ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा विकसित होती गई। ऐतिहासिक घटना और पात्रों के आधार पर उपन्यास लिखे गए; परंतु इनमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण दिखाई देता है। ऐतिहासिक उपन्यासों

की परंपरा में वृंदावनलाल वर्मा प्रमुख हैं। इन्होंने ऐतिहासिक प्रसंगों का सजीव चित्रण किया है। वर्मा जी के झाँसी की रानी, गढ़ कुंडार मृगनयनी, विराट की पद्मिनी, कचनार, अहिल्याबाई, माधवजी सिंधिया आदि महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है। इन उपन्यासों में बुंदेलखंडीय गौरव, प्रकृति चित्रण, प्रेम का उदात्त स्वरूप, स्वराज्य संघर्ष, आदर्श पात्र आदि की सृष्टि हुई है।

अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाणभट्ट की आत्मकथा, चारुचंद्र लेख, अनामदास का पोथा आदि महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनमें इतिहास संस्कृति और आधुनिक बोध का सुंदर संगम देखने को मिलता है। इनके अतिरिक्त चतुरसेन शास्त्री के वैशाली की नगरवधू, सोना और खून, अमरसिंह, आलमगीर, सेनापति, राहुल सांकृत्यायन के सिंह सेनापति, मधुर स्वप्न, रांगेय राघव के मुर्दों का टीला, प्रतिदान, अंधेरे का जुगनू आदि चर्चित ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

5. आँचलिक उपन्यास :

आंचलिक उपन्यासों में किसी अंचल या प्रदेश विशेष के वातावरण एवं लोकसंस्कृति का सजीव चित्रण होता है। वहाँ की लोकभाषा, लोकगीत, जनजीवन की विशेषता, सामाजिक मान्यताएँ आदि का चित्रण किया जाता है। आँचलिक उपन्यासों के प्रवर्तक फणीश्वरनाथ रेणु को माना जाता है। इनके मैला आँचल और परती परिकथा विशेष उल्लेखनीय आँचलिक उपन्यास हैं। इनमें बिहार प्रांत के अंचल विशेष के जनजीवन का सजीव चित्रण है। इनके अतिरिक्त नागार्जुन (बलचनमा), उदयशंकर भट्ट (लोक परलोक), राजेंद्र अवस्थी (जंगल का फूल), राही मासूम रजा (आधा गाँव), रामदरश मिश्र (पानी की प्राचीर), हिमांशु श्रीवास्तव (रथ के पहिए), डॉ. रमानाथ त्रिपाठी (ओस और माटी, कली और धुआँ) आदि ने आँचलिक उपन्यासों की परंपरा को आगे बढ़ाया।

6. प्रयोगशील और आधुनिक बोध के उपन्यास :

साहित्य के अन्य अंगों के समान उपन्यास क्षेत्र में भी आज नए - नए प्रयोग किए जा रहे हैं। विशेषत: शिल्प विधान की दृष्टि से इस क्षेत्र में नवीन प्रयोग किए गए। इस परंपरा में प्रभाकर माचवे के परंतु, धर्मवीर भारती के सूरज का सातवाँ घोड़ा, गिरिधर गोपाल के चांदनी रात के खंडहर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के सोया हुआ जल, आदि उल्लेखनीय उपन्यास है।

आधुनिक युग में औद्योगिकीकरण, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, पूँजीवाद, यांत्रिकीकरण, वैश्वीकरण आदि के कारण परिवर्तित परिस्थितियों का चित्रण उपन्यासों में होने लगा। मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरे में', निर्मल वर्मा के 'लालटेन की छत', राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई', शैलेश मटियानी के 'कबूतरखाना', उषा प्रियंवदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें', मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी', आदि उपन्यासों में वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक विषमताओं के साथ आधुनिक जीवन की त्रासदी, पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव आदि का चित्रण किया गया है। साथ ही नारी जीवन की आधुनिक समस्याओं को केंद्र में रखकर

लिखने वाले उपन्यासकारों में मृदुला गर्ग (कठगुलाब), मालती जोशी (सहचारिणी), मैत्रेयी पुष्पा (स्मृतिदंश), नासिरा शर्मा (जिंदा मुहावरें) उल्लेखनीय है।

इस प्रकार एक लंबी शृंखला के पश्चात आज हिंदी उपन्यास मानव जीवन की समस्याओं को मूल और यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर रहा है। प्रतिदिन नए विषय और शैलियों के प्रयोग के कारण हिंदी उपन्यास साहित्य निरंतर विकसित हो रहा है।

3.3.2 हिंदी नाटक साहित्य – उद्‌भव और विकास :

नाटक एक समृद्ध साहित्यिक विधा है। रंगमंच पर अभिनय के द्वारा प्रस्तुत करने की दृष्टि से गद्य या गद्य–पद्य मिश्रित रचना को नाटक या रूपक कहा जाता है। भारतीय नाटक को कुछ विद्वान यूनानी नाट्यकला की देन मानते हैं। वस्तुतः भारत में नाटकों का प्रचलन यूनानी नाटकों से बहुत पहले हो चुका था क्योंकि संस्कृत नाट्य साहित्य अत्यंत समृद्‌ध है। आगे चलकर हिंदी में इसका विकास हुआ रामलीला, नौटंकी, स्वांग, आदि रूपों में यह परंपरा अग्रसर होती रही। यद्‌यपि आधुनिक हिंदी नाटकों में इस लोक परंपरा का कोई खास प्रभाव नहीं है। नाटक के उद्‌भव एवं तात्विक विवेचन की दृष्टि से भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रंथ माना गया है। डॉ. दशरथ ओझा के अनुसार नाटक का उद्‌भव 13 वीं सदी में हुआ है उनके मतानुसार हिंदी का सर्वप्रथम नाटक 'गाय सुकुमार रास है' परंतु इसमें नाटकीय तत्वों का अभाव दिखाई देता है। अतः इसे हिंदी का सर्वप्रथम नाटक नहीं माना जा सकता।

भक्तिकाल और रीतिकाल में गद्‌य – पद्‌य मिश्रित नाटक जैसी अनेक रचनाएँ लिखी गयी है, परंतु उनमें नाटक की नाटकीयता और रंगमंच का नितांत अभाव था 19 वीं शताब्दी में बंगला और संस्कृत नाटकों की प्रेरणा और प्रभाव से हिंदी नाटक साहित्य का प्रारंभ हुआ। वास्तविक रूप में रंगमंच और अभिनय की दृष्टि से सफल नाटक आधुनिक काल से पहले नहीं लिखे गए। हिंदी साहित्य में नाटकों का वास्तविक आरंभ भारतेंदु काल से ही माना जाता है।

हिंदी का प्रथम मौलिक नाटक :

इस संबंध में विद्‌वानों में पर्याप्त मतभेद है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने पिताजी बाबू गोपालचंद्र के 'नहुष' नाटक को हिंदी का प्रथम नाटक माना है। डॉ. शिवदान सिंह चौहान ने भारतेंदु के 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' को हिंदी का प्रथम नाटक माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह कृत 'आनंद रघुनंदन' को हिंदी का प्रथम मौलिक नाटक माना है। अधिकांश विद्वान 'आनंद रघुनंदन' को ही हिंदी का प्रथम मौलिक नाटक मानते हैं।

नाटक साहित्य – उद्‌भव विकास :

हिंदी नाटक साहित्य का समुचित विकास आधुनिक काल में ही हुआ है। वस्तुतः खड़ी बोली के नाटकों के आरंभ का श्रेय भारतेंदु को ही जाता है भारतेंदु ने स्वयं नाटक लिखकर हिंदी नाटक साहित्य का प्रवर्तन किया। हिंदी नाटक साहित्य विकास क्रम को अध्ययन की सुविधा के लिए इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है।

1. भारतेंदु युगीन नाटक

2. द्विवेदी युगीन नाटक

3. प्रसाद युगीन नाटक

4. प्रसादोत्तर युगीन नाटक

1. भारतेंदु युगीन नाटक :

हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं के समान नाटक विधा के विकास में भी भारतेंदु का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। भारतेंदु ने संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला नाटकों की प्रेरणा से हिंदी में नाटक लिखे। भारतेंदु ने अपने नाटकों के लिए विषय का चुनाव इतिहास, पुराण तथा धर्मग्रंथों के अलावा समकालीन समाज, राजनीति और व्यक्तियों से भी किया। साथ ही अपने नाटकों में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का भी चित्रण किया है। नाटकों के माध्यम से भारतेंदु ने व्यक्ति और समाज, धर्म और राजनीति तथा राष्ट्रीय भावना के विकास का प्रयास किया है।

भारतेंदु ने हिंदी नाटकों का सूत्रपात केवल मौलिक हिंदी नाटक लिखकर ही नहीं किया अपितु संस्कृत और अंग्रेजी से अनेक नाटकों का हिंदी अनुवाद भी किया है। अतः भारतेंदु ने दो प्रकार के नाटक लिखें – मौलिक नाटक और अनूदित नाटक। उनके प्रमुख नाटक हैं वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावली, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेरी नगरी, सती प्रताप, प्रेमयोगिनी, विषस्य विषमौषधम्, मुद्राराक्षस, धनंजय – विजय, विद्यासुंदरी, भारत जननी, सत्य हरिश्चंद्र, कर्पूरमंजिरी, पाखंड विडंबन, रत्नावली, दुर्लभबंधु आदि। भारतेंदु के नाटकों में जीवन और कला, मनोरंजन और लोकहित की भावना का सुंदर समन्वय हुआ है। इनकी नाट्यशैली सरल, सरस, रोचक और स्वाभाविक है।

भारतेंदु ने स्वयं नाटक विधा का सूजन किया परंतु अपने समय की साहित्यिक मित्र – मंडली को भी नाट्य लेखन के लिए प्रेरित किया। इनमें प्रमुख हैं – लाला श्रीनिवासदास (तप्ता संवरण, संयोगिता स्वयंवर, प्रेममोहिनी – हिंदी का पहला दुखांत नाटक), पंडित प्रतापनारायण मिश्र (गो संकट, कलीप्रभाव, जुआरी खुआरी, हट्टी हमीर हम्मीर), राधाकृष्णदास (दु:खिनी बाला, महारानी पद्मावती, महाराणा प्रतापसिंह), बालकृष्ण भट्ट (चंद्रसेन, मृच्छकटिक, शिशुपाल वध, नल दमयंती, शिक्षा दान), बदरीनाथ चौधरी (भारत सौभाग्य) आदि।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतेंदु युगीन हिंदी नाटक विषय और शैली की दृष्टि से बहुआयामी है। साथ ही समाजसुधार, राष्ट्रप्रेम, देशहित आदि की दृष्टि से भी उच्च एवं परिपूर्ण है।

2. द्विवेदी युगीन नाटक :

भारतेंदु के बाद द्विवेदी युग में हिंदी नाटक सूजन में एक ठहराव – सा आ गया। द्विवेदी युग में नाट्य लेखन जारी था परंतु उनमें कहीं – कहीं साहित्यिक तथा नाटकीय तत्व नगण्य दिखाई देते हैं। भारतेंदु युग की तुलना में द्विवेदी युग के नाटकों में जनजीवन का अभाव रहा है। इस युग के नाटककार उनको एक तो परंपरागत रंगमंच उपलब्ध नहीं हुआ और इसी बीच लगातार मध्यवर्ग की वृद्धि के कारण जन – जीवन से इनका सहज

संबंध टूट गया। संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला के नाटकों के अनुवाद की परंपरा इस युग में चलती रही परंतु मौलिक नाटक कम ही लिखे गए। द्विवेदी युग के कुछ नाटकों में पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से जनता को उपदेश देने का स्वर भी दिखाई देता है।

इस युग के उल्लेखनीय नाटककार हैं – बदरीनाथ भट्ट (चुंगी की उम्मीदवारी, विवाह विज्ञापन, मिस अमेरिका, चंद्रगुप्त, तुलसीदास), माखनलाल चतुर्वेदी (कृष्णार्जुन युद्ध), मिश्र बंधु (नेत्रोंन्मीलन), लोचन शर्मा (प्रेम प्रशंसा), राधेश्याम कथावाचक (साहब बहादुर), नारायण प्रसाद बेताब (कृष्ण सुदामा) आदि।

इस प्रकार द्विवेदी युग के नाटकों का समाज पर सुरुचिपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा और न ही इन नाटकों को भारतेंदु काल जैसी रंगमंचीय लोकप्रियता मिली। परंतु इन सभी नाटकों ने विकास की अगली सीढ़ी पर चढ़ने की भूमिका तैयार की थी। अतः नाटक साहित्य की विकास परंपरा को अग्रसर करने में दिवेदी युगीन नाटकों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

3. प्रसाद युगीन नाटक :

हिंदी नाटकों की वास्तविक विकास यात्रा जयशंकर प्रसाद के आगमन से आरंभ हुई। प्रसाद ने हिंदी नाटक साहित्य को नई दिशा दी। उन्होंने सर्वप्रथम हिंदी नाटकों को हल्के-फुल्के, हास्य-व्यंग्य, अस्त-व्यस्त कथावस्तु, असंगत कथोपकथन तथा और अव्यावहारिक चरित्र – चित्रण आदि की शृंखला से मुक्त कर उन्हें शुद्ध ऐतिहासिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं विशिष्ट चिंतनधारा के अनुकूल बनाया प्रसाद के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक है। उनके नाटकों के पात्र ऐतिहासिक होते हुए भी समस्याओं की दृष्टि से वर्तमान है। ऐतिहासिक विषयों के आधार पर उन्होंने भारत के प्राचीन गौरव, सभ्यता और संस्कृति के प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किए हैं। अतः प्रसाद के नाटकों में इतिहास एवं संस्कृति का सूक्ष्म चित्रण मिलता है।

प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से नारी रूप को भी महानता, सूक्ष्मता एवं गंभीरता देने का प्रयास किया। आदर्श नारी पात्रों की सृष्टि उनकी उल्लेखनीय विशेषता है। उन्होंने पाश्चात्य और भारतीय कला का समन्वय करके अनेक श्रेष्ठ और मौलिक नाटक लिखे हैं। इनके प्रमुख नाटक हैं सज्जन, एक घूँट, कल्याणी परिणय, करुणालय, प्रायश्चित, राज्यश्री, विशाखा, अजातशत्रु, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि। संक्षेप में प्रसाद ने अपने नाटकों में एक ओर भारत के इतिहास का गौरवगान किया है तो दूसरी ओर नारी जीवन की समस्याओं का भी चित्रण किया है। प्रसाद ने भारतेंदु द्वारा स्थापित नाटक और रंगमंच की परंपरा को नया जीवन और नई दिशा प्रदान की। अतः प्रसाद हिंदी नाट्य साहित्य के युग प्रवर्तक सिद्ध हुए हैं।

प्रसाद युग के अन्य प्रमुख नाटककार हैं – हरिकृष्ण प्रेमी, गोविंदवल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट आदि।

हरिकृष्ण प्रेमी ने मुगलकाल के ऐतिहासिक कथानकों पर नाटक लिखकर हिंदू – मुसलमानों के बीच प्रेमभाव बढ़ाने का प्रयास किया। उनके रक्षाबंधन, जौहर, आहुति, स्वप्नभंग;, विषपान, प्रतिशोध, शिवा-साधना, शीशदान आदि उल्लेखनीय नाटक है। जिसमें राष्ट्रीयता, त्याग और बलिदान के भाव प्रमुख है।

गोविंदवल्लभ पंत ने इतिहास, पुराण तथा समाज से कथा चुनकर वरमाला, राजमुकुट, कंजूस की खोपड़ी, अंगूर की बेटी, सिंदूर बिंदी, ययाति, विषकन्या, सुजाता आदि नाटक लिखे हैं। इन नाटकों में अभिनेयता का गुण प्रमुख है। इसी परंपरा में उदयशंकर भट्ट के विक्रमादित्य, अम्बा, सागर विजय, मत्स्यगंधा, विश्वमित्र, मुक्तिपथ आदि उल्लेखनीय नाटक है।

4. प्रसादोत्तर युगीन नाटक :

इस युग में वास्तव में हिंदी नाटक रंगमंच और यथार्थ नाटक से जुड़ गया। नाटककारों का ध्यान पौराणिक, ऐतिहासिक विषयों की अपेक्षा समस्या मूलक विषयों की ओर अधिक हो गया। इस युग में चरित्रों के वर्गीय स्वरूप तथा मनोवैज्ञानिकता का अंकन हुआ। इस युग में विभिन्न नाटक तथा नाटककारों की एक परंपरा रही। इस युग के नाटकों को सुविधा के लिए हम निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. ऐतिहासिक नाटक : इस युग में ऐतिहासिक घटना और चरित्रों के आधार पर नाटक लिखे गए। इनका उद्देश्य आदर्शों की स्थापना करना है। ऐतिहासिक नाटकों में ऐतिहासिक घटना तथा सांस्कृतिक परिवेश के माध्यम से राष्ट्रप्रेम, आत्मत्याग, बलिदान, हिंदू – मुस्लिम एकता की स्थापना करने का प्रयास किया गया है। इस परंपरा में वृंदावनलाल वर्मा के झाँसी की रानी, पूर्व की ओर, बीरबल, ललित विक्रम, चंद्रगुप्त विद्यालंकार के अशोक, लक्ष्मीनारायण मिश्रा के वत्सराज, वितस्ता की लहरें, चतुरसेन शास्त्री के छत्रसाल आदि उल्लेखनीय ऐतिहासिक नाटक है।

2. समस्या प्रधान नाटक : इस युग में हिंदी नाटकों को रोमांस के कटघरे से बाहर निकालकर यथार्थवाद के साथ जोड़ने का सफल प्रयास हुआ। इस प्रकार के नाटकों पर पाश्चात्य नाटककार इब्सन, बर्नाड शाँ आदि का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। नाटकों में सामाजिक समस्याओं का चित्रण यथार्थ के स्तर पर होने लगा। पात्रों की मनोवैज्ञानिकता का भी चित्रण अधिक मात्रा में हुआ है। इस दृष्टि से लक्ष्मीनारायण मिश्र के सिंदूर की होली, राक्षस का मंदिर, सन्यासी, उपेंद्रनाथ अश्क के अलग – अलग रास्ते, कैद, उड़ान, स्वर्ग की झलक, सेठ गोविंददास के हिंसा और अहिंसा, विनोद रस्तोगी के आजादी के बाद, नरेश मेहता के सुबह के घंटे, आदि उल्लेखनीय नाटक है। इन नाटकों में मनोवैज्ञानिक समस्याओं के साथ सामाजिक समस्याओं का भी कलात्मक विवेचन किया गया है।

3. भाव प्रधान नाटक : इस युग के नाटकों में भाव प्रधानता के साथ – साथ पद्य का भी प्रयोग किया गया। शैली की दृष्टि से इन नाटकों को गीति नाटक भी कहा जाता है। आधुनिक युग में जयशंकर प्रसाद कृत करुणालय हिंदी का पहला गीति नाटक माना जाता है। आधुनिक भाव बोध को रूपायित करने वाले नाटकों में धर्मवीर भारती के अंधायुग इस गीति नाट्य का भी विशेष स्थान है। इनके अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत कृत रजत शिखर, शिल्पी, गिरिजाकुमार माथुर कृत कल्पांतर, दुष्यंत कुमार कृत एक कंठ विषपायी, मैथिलीशरण गुप्त कृत अनघ आदि उल्लेखनीय गीति नाटक है।

4. प्रतीकवादी नाटक : इस परंपरा का जन्म प्रसाद के कामना नाटक से माना जाता है। प्रतीकवादी नाटक परंपरा में सुमित्रानंदन पंत रचित ज्योत्सका, भगवतीप्रसाद वाजपेयी कृत छलना सेठ गोविंददास कृत नवरस लक्ष्मीनारायण लाल कृत मादाकैक्टस आदि चर्चित है।

5. स्वातंत्र्योत्तर नाटक : स्वातंत्र्योत्तर युग में हिंदी नाटक साहित्य का विकास तेजी से हुआ। नाटककारों ने विषय और शिल्प के नए प्रयोग से हिंदी नाट्य साहित्य को समृद्ध किया। इस युग में विशेष रुप से व्यक्तिवादी, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि चेतना प्रधान नाटक लिखे गए।

स्वातंत्र्योत्तर युग में स्वार्थी भावना, अनीति, भ्रष्ट प्रवृत्ति आदि के कारण अनेक सामाजिक समस्याएँ निर्माण हुई। नाटककारों ने इनका यथार्थ चित्रण कर समाज सुधार के दृष्टिकोण को विकसित किया। इस युग में भारत के अनेक राज्यों में विविध हिंदी रंगमंचों की स्थापना होने के कारण अनेक महत्वपूर्ण मंचीय नाटकों का सृजन हुआ। इनमें आधुनिकता, अनास्था, विसंगतियाँ आदि का व्यंग्यात्मक चित्रण कर जनचेतना का प्रयास किया गया है। इस दृष्टि से जगदीशचंद्र माथुर (कोणार्क, पहला राजा), मोहन राकेश (आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे अधूरे), विपिन कुमार (तीन अपाहिज), ज्ञानदेव चतुर्वेदी (शुतुरमुर्ग), गिरिराज किशोर (नरभेद), सुरेंद्र वर्मा (द्रोपदी) सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (बकरी) आदि उल्लेखनीय नाटककार हैं।

इस युग में मौलिक नाटकों के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के नाटकों का हिंदी अनुवाद करने की परंपरा भी जारी थी। इनमें श्रीमती केशवचंद वर्मा ने विजय तेंदुलकर का मराठी नाटक पंछी ऐसे आते हैं का, प्रतिभा अग्रवाल ने बादल सरकार के बंगाली नाटक पागल घोड़ा आदि का सफल अनुवाद किया है।

संक्षेप में आज हिंदी नाटक परंपरा और प्रयोग की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ निरंतर विकास की ओर अग्रसर हो रहा है और अधिक नई ऊँचाइयाँ पाने की कोशिश में है।

3.3.3 हिंदी यात्रा साहित्य : उद्‌भव और विकास यात्रा :

यात्रा संस्कृत संज्ञा हैं। जिसे अरबी भाषा में सफर तो अंग्रेजी में ट्रेव्हलोग या जर्नी संज्ञा का प्रयोग किया जाता है। यात्रा का कार्य व्यापार, स्वरूप, उद्देश्य आदि को लेकर उसके प्रयोजन में भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यात्रा को ही भ्रमण करना, तीर्थाटन पर हो आना, मेला, घुमक्कड़, यायावर, खानाबदोश, चलवासी, मटरगश्ती (भटकंती), विचरण, आना जाना, चक्कर, फेरी, घूमना, भटकना, आवारागर्दी, बाहर जाकर समय बिताना आदि प्रतिशब्दों का प्रयोग किया जाता है। 'यात्रा' शब्द का अर्थ है - एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने की किया। यात्रा का प्रमुख लक्षण है - संचरणशीलता अर्थात निरंतर स्थान परिवर्तन करना और एक स्थान से दूसरे स्थान को चलते जाना। वस्तुतः यात्रा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। अनादि काल से मनुष्य यात्रा करता आया है। पहले वह जीविकोपार्जन के लिए इधर-उधर भटकता रहता था; परंतु धीरे - धीरे उसका क्षेत्र व्यापक बना और उसने अपनी जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिए यात्राएँ आरंभ की। अतः मानव का विकास यात्रा से संबंध रखता है यात्रा ही उसकी सर्वांगीण प्रगति का प्रथम सोपान है।

स्वरूप :

प्राचीन काल से ही मनुष्य यात्राओं का आदी हो गया है। यात्रा मूलत: घुमक्कड़ वृत्ति का परिणाम है, परंतु व्यापार, सांस्कृतिक आदान – प्रदान और राजनीतिक उद्देश्यों से भी यात्राएँ की जाती है। यात्रा ने ही मनुष्य जीवन में विविध प्राकृतिक सौंदर्य, विभिन्न सांस्कृतिक परिवेश, बहुआयामी व्यक्तित्व तथा अनुभूतियों का गंभीर ज्ञान दिया है। आज जो कुछ साहित्य है वह यात्राओं से प्राप्त ज्ञान संपत्ति की ही उपज है। इसका संबंध यात्रा के दौरान देखें – सुने और अनुभव किए गए स्थान, घटना, व्यक्ति, रीति रिवाज, भाषा, गीत, नृत्य, संगीत, व्यवहार आदि का यात्री व्यक्ति के द्वारा तैयार किए गए लेखा–जोखा से है।

प्राचीन काल से ही यात्रा साहित्य का उद्गम माना जाता है। प्राचीन काल से ही यात्री लोग अपनी यात्रा का विवरण प्रस्तुत करते आए हैं मध्ययुग में यात्रा का उद्देश्य मात्र तीर्थ दर्शन होता था। वैदिक काल में ऋषि मुनियों ने अपनी रचनाओं में यात्रा की अनुभूतियों का वर्णन किया है। लोक साहित्य में भी अनेक स्थलों पर यात्रा वृत्तांत वर्णित किए गए हैं। कालिदास के 'रघुवंश' में दक्षिण यात्रा, 'कुमारसंभव' में हिमालय का वर्णन, 'मेघदूत' में उत्तर भारत की यात्रा आदि काव्य में यात्रा वर्णन मिलते हैं। इस प्रकार यात्रा वृत्त का स्वरूप प्राचीन साहित्य में मिलता रहा है किंतु आधुनिक युग में इसे स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकार किया गया है।

आधुनिक युग में जहाँ तक यात्रा साहित्य का संबंध है उसका विकास साहित्य की अन्य विधाओं के समान अंग्रेजी साहित्य के संपर्क की ही देन है। आधुनिक युग में व्यापार, पठन – पाठन तथा पर्यटन की दृष्टि से यात्राओं का आयोजन होने लगा है। अतः भोगी हुई स्थितियों की आत्मानुभूति की अभिव्यंजना ही यात्रा वृत्तांत है। यात्रा साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है –

1. तीर्थ–स्थानों की यात्राएँ
2. महानगर की भावबोधक यात्राएँ
3. सांस्कृतिक यात्राएँ
4. ग्रामीण यात्राएँ
5. पर्वतीय यात्राएँ
6. विदेश यात्राएँ आदि

यात्रा साहित्य – विकास परंपरा :

यात्रा साहित्य से ज्ञान की वृद्धि, मनोरंजन तो होता है परंतु यात्रा का अपने अनुभवों के आधार पर सूचना, मार्गदर्शन, उपदेश भी देता रहता है। यात्रा साहित्य का उद्देश्य साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्न नहीं है। अतः यात्रा साहित्य का कार्य, उद्देश्य को देखते हुए यात्रा – साहित्य एक परिपूर्ण एवं स्वतंत्र विधा है।

यात्रा साहित्य के विकास को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्न भागों में विभाजित किया जाता है –

1. भारतेंदु युगीन यात्रा साहित्य :

2. द्विवेदी युगीन यात्रा साहित्य

4. छायावादी युगीन यात्रा साहित्य

5. स्वातंत्र्योत्तर युगीन यात्रा साहित्य

1. भारतेंदु युगीन यात्रा साहित्य :

साहित्य की अन्य विधाओं के समान मौलिक यात्रा साहित्य का आरंभ भी भारतेंदु युग से ही माना जाता है। भारतेंदु ने स्वयं अपने द्वारा संपादित कविवचन सुधा नामक पत्रिका में कई यात्रा वृत्तांत प्रकाशित किए है। इस पत्रिका में प्रकाशित भारतेंदु के सरयूपार की यात्रा, लखनऊ की यात्रा, हरिद्वार की यात्रा, मेहदावल की यात्रा, वैद्यनाथ की यात्रा आदि यात्रा परक लेखों से यात्रा साहित्य का आरंभ माना जाता है। अपने यात्रा वृत्तांत में भारतेंदु ने प्राकृतिक सौंदर्य, रीति रिवाज, खानपान, बोलचाल आदि का वर्णन किया है। इस परंपरा में पंडित दामोदर शास्त्री की मेरी पूर्वादिग्यात्रा, मेरी दक्षिण यात्रा, बालकृष्ण भट्ट की गया यात्रा उल्लेखनीय है।

भारतेंदु युग की एक महत उपलब्धि यह है कि इस युग में यात्रा साहित्य के ग्रंथों का मुद्रण होने लगा। इस दृष्टि से हिंदी की सर्वप्रथम यात्रा पुस्तक श्रीमती हरदेवी की लंदन यात्रा है। इस ग्रंथ के बाद विलायती यात्रा वर्णन का दौर शुरू हुआ। इसमें भगवानदास वर्मा कृत लंदन की यात्रा, प्रताप नारायण मिश्र की विलायत यात्रा महत्वपूर्ण है। कन्हैयालाल मिश्र की हमारी जापान यात्रा वेणी शुक्ल की लंदन पेरिस की सैर, रामनारायण मिश्र की यूरोप यात्रा में छह मास आदि महत्वपूर्ण यात्रा वर्णन है। भारत में भी यात्राएँ होती रही है विशेषत: ब्रजभूमि की यात्राएँ प्रमुख रही हैं। लाला कल्याणचंद कृत केदारनाथ यात्रा, देवी प्रसाद खत्री की रामेश्वर यात्रा, तोताराम वर्मा कृत ब्रज विनोद, पंडित विभु मिश्र कृत ब्रज यात्रा आदि यात्रा वर्णन इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतेंदु युग में एक ओर तीर्थ यात्राओं का महत्व बढ़ रहा था तो दूसरी ओर विदेशी यात्राओं के प्रति भारतीयों की रूचि भी बढ़ती हुई दिखाई देती हैं।अतः इस युग के लेखकों ने यात्रा साहित्य को समृद्धि की ओर अग्रसर करने का प्रयास किया है।

2. द्विवेदी युगीन यात्रा साहित्य :

भारतेंदु युग का यात्रा साहित्य द्विवेदी युग में भी विकास की ओर अग्रसर हुआ है। इस युग में पत्र-पत्रिकाओं और स्वतंत्र पुस्तक रूप में अनेक महत्वपूर्ण यात्रा वृत्त प्रकाशित हुए। स्वामी - सन्यासियों और लेखक प्रवाचकों के द्वारा देश - विदेश की यात्रा के अनेक यात्रा वृत्त लिखे गए हैं। साथ ही साथ तत्कालीन प्रमुख पत्रिकाओं सरस्वती, मर्यादा, इंदु आदि में उत्तर और दक्षिण ध्रुव की यात्रा, विलायत की सैर, समुद्र यात्रा, युद्ध क्षेत्र की सैर, जापान की सैर, मारीशस यात्रा, रामेश्वर यात्रा, देहरादून - शिमला यात्रा आदि विविध क्षेत्रों के यात्रा वृत्तांत प्रकाशित हुए हैं द्विवेदी युग में तीन प्रकार के साहित्यिक यात्रा ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं।

1. विदेश यात्रा

2. देश यात्रा

3. तीर्थ – स्थान यात्रा :

1. विदेश यात्रा : विदेश यात्रा विषयक ग्रंथों में उल्लेखनीय है – ठाकुर गदाधर सिंह कृत हमारी एडवर्ड तिलक विलायत यात्रा, गोपालराम गहमरी ने लंका यात्रा का विवरण सन 1936 में पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया पुस्तककार के रूप में विदेशी यात्रा वर्णन प्रकाशित करने वालों में शिवप्रसाद गुप्ता की पृथ्वी प्रदक्षिणा, केशरी शुक्ल की लंदन पेरिस की सैर, महता जैमिनी की श्यामा देश की यात्रा, स्वामी मंगलानंद की अफ्रीका यात्रा, मारीशस यात्रा, हमारी जापान यात्रा, कृपानाथ मिश्र की विदेश की बात, गणेश नारायण सोमानी की मेरी यूरोप यात्रा आदि उल्लेखनीय है।

2. देश यात्रा : इस युग में विदेशी यात्राओं की अपेक्षा देशी यात्रा के वृत्तांत कम ही लिखे गए है। इस दृष्टि से साधुचरण प्रसाद कृत भारत भ्रमण (५ भाग), पंडित रमाशंकर व्यास कृत पंजाब यात्रा, हरिकृष्ण झांझडीया कृत मेरी दक्षिण भारत यात्रा, सत्येंद्र नारायण कृत दक्षिण भारत की यात्रा, उमा नेहरू की युद्ध क्षेत्र की सैर, लोचनप्रसाद पांडेय की हमारी यात्रा आदि उल्लेखनीय है।

3. तीर्थ – स्थान यात्रा : तीर्थ – स्थान यात्राओं में देवीप्रसाद खत्री कृत बद्रिकाश्रम यात्रा, प्रो. मनोरंजन की उत्तराखंड के पथ पर, आदि महत्वपूर्ण है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि द्विवेदी युग में स्वदेश एवं विदेशों की यात्राओं का विस्तृत वर्णन हुआ है लेखकों ने यात्रावृत्त साहित्यिक परंपरा को समृद्ध करने का प्रयास किया है साथ ही हिंदी भाषा को परिष्कृत रूप प्रदान किया है।

3. छायावादी युगीन यात्रा साहित्य :

द्विवेदी युग के बाद यात्रा साहित्य का विकास तेजी के साथ हुआ। इस युग में देश – विदेश यात्रा वृत्तों का लेखन और प्रकाशन विशेष रूप से हुआ। उनमें साहित्यिक, राजनीतिक और मनोरंजनात्मक सभी प्रकार की यात्राएँ सम्मिलित हैं। भारतीय धर्म, संस्कृति, शिक्षा, पर्यटन आदि के प्रचार – प्रसार के कारण देश के बहुसंख्य लेखकों ने देश – विदेश की यात्राएँ की और अपने अनुभव का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया। देश – विदेशों के क्षेत्रों की विस्तृत जानकारी मिलने लगी। इस युग के कुछ महत्वपूर्ण यात्रियों में सत्यदेव परिव्राजक उल्लेखनीय है। इन्होंने अपने यात्रा वर्णनों में जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, पत्र आदि सभी विधाओं का मिश्रण कर यात्रा वृत्तांत लिखें। इनके उल्लेखनीय यात्रा वर्णन है – मेरी जर्मन यात्रा, यात्री मित्र, यूरोप की सुखद स्मृतियाँ, ज्ञान के उद्यान में, नई दुनिया के मेरे अद्भुत संस्मरण, अमेरिका प्रवास की मेरी अद्भुत कहानी, मेरी पाँचवीं जर्मनी यात्रा आदि। इनकी मेरी पाँचवीं जर्मन यात्रा इस पुस्तक में पर्यटन और ज्ञान के लिए, आँखों के इलाज के लिए की गई यात्रा का वर्णन प्रस्तुत है।

इस युग में सर्वाधिक चर्चित घुमक्कड़ प्रवृत्ति के यात्राकार पंडित राहुल सांकृत्यायन रहे हैं। इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय यात्रा करने में ही बिताया है। इनका महत्वपूर्ण उद्देश्य शिक्षा, शोध, ग्रंथ संग्रह, अध्ययन, देश–विदेश दर्शन, राजनीति आदि रहा है। इनके महत्वपूर्ण यात्रा वृत्त इस प्रकार हैं – तिब्बत में सवा

वर्ष, मेरी यूरोप यात्रा, मेरी तिब्बत यात्रा। इनमें राहुल जी ने तिब्बत के प्राकृतिक सौंदर्य और वहाँ की संस्कृति का सुंदर वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इनके राहुल यात्री, यात्रा के पन्ने, एशिया के दुर्लभ भूखंडों में आदि यात्रा वृत्त इनके घुमक्कड़पन और सूक्ष्म पर्यवेक्षण के परिचायक हैं। पंडित राहुल सांकृत्यायन ने पाठकों में यात्रा की रुचि और प्रेरणा भरने के लिए घुमक्कड़ शास्त्र नामक पुस्तक लिखी। इसमें यात्रा करने की कला का रोचक विवेचन करने के साथ – साथ देश–विदेश की यात्राओं का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है। अतः यात्रा साहित्य के उद्देश्य और सार्थकता पर प्रकाश डालने वाली यह एक महत्वपूर्ण तथा लोकप्रिय पुस्तक मानी जाती है। छायावादी युग के अन्य यात्रावृत्तकार इस प्रकार हैं शिवनंदन सहाय (कैलाश दर्शन), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (इराक की यात्रा), आदि उल्लेखनीय हैं।

अतः कहा जा सकता है कि इस युग में यात्रा साहित्य के लिए विविध शैलियों का प्रयोग किया गया है। देश भ्रमण की अपेक्षा विदेश भ्रमण की यात्राएँ अधिक लिखी गयी है।

4. स्वातंत्र्योत्तर यात्रा साहित्य :

स्वातंत्र्योत्तर काल में विषय की विविधता, यातायात की सुविधा, स्वच्छंदता, शिल्पा विधान आदि की दृष्टि से यात्रा साहित्य बहुत ही समृद्ध है। स्वाधीनता के बाद भारत के विश्व के अन्य देशों के साथ राजनीतिक, प्रशासनिक तथा सांस्कृतिक संबंध दृढ़ होने लगे। परिणामत: देश – विदेश की यात्राओं का दौर शुरू हुआ और अनेक साहित्यकारों ने निजी अनुभव के आधार पर यात्रा वृत्तांत प्रस्तुत किए। स्वातंत्र्योत्तर युग में यात्रा वृत्त लेखन की दिशा में विविध आयाम प्रस्तुत हुए हैं। अतः इस युग में हिंदी यात्रा साहित्य का विपुल सृजन हो रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर यात्रा साहित्य को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. विदेश यात्रा साहित्य

2. स्वदेश यात्रा साहित्य

1. विदेश यात्रा साहित्य :

विदेश यात्रा साहित्य के अंतर्गत सबसे अधिक यात्राएँ रूस की हुई है। रूस की यात्रा करने वालों में डॉ. सत्यनारायण, राहुल सांकृत्यायन, महेशप्रसाद श्रीवास्तव, यशपाल, जवाहरलाल नेहरू, रामकृष्ण रघुनाथ, डॉ. नगेंद्र आदि उल्लेखनीय हैं। डॉ. सत्यनारायण ने रोमांचक रूस में रूस की बहुमुखी प्रगति का विवरण किया है। यशपाल ने 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' तथा 'राहबीती' में साम्यवाद तथा पूँजीवाद शासन प्रणाली के अंतर को स्पष्ट किया है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'आँखों देखा रूस', 'रूस की सैर' नामक उल्लेखनीय यात्रा वृत्त लिखे है। जिसमें रूस की प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ रूस के बहुमुखी विकास का चित्रण किया है। डॉ. नगेंद्र का 'तंत्रालोक से यंत्रालोक' एक सर्वोत्तम तथा प्रौढ़ यात्रा वर्णन है। महेश प्रसाद श्रीवास्तव ने 'दिल्ली से मास्को' में रोचक शैली में रूस का वर्णन किया है।

रूस के अतिरिक्त चीन, इंग्लैंड, अमेरिका, जापान, फ्रांस, अरब, इराक आदि प्रांतों की यात्राएँ भी हुई है।डॉ. सत्यनारायण ने यूरोप के झरोके में और युद्ध यात्रा में यूरोप में हुए द्वितीय महायुद्ध के परिणामों का लेखा-जोखा लिया है। भगवतीशरण उपाध्याय ने 'विश्व यात्री' में यूरोप और अरब देशों के यात्रा वर्णन दिए हैं। पंडित सूर्यनारायण व्यास ने 'सागर प्रवास' में स्वीटजरलैंड, जर्मनी, फ्रांस, इटली आदि देशों की यात्राओं की झलक दी है।

अन्य यात्राकार :

योगेंद्र सिन्हा (दुनिया की सैर), सेठ गोविंददास (पृथ्वी परिक्रमा), रामवृक्ष बेनीपुरी (पैरों में पंख बांधकर, उड़ते चलो उड़ते चलो) ब्रजकिशोर नारायण (नंदन से लंदन), रामकुमार (यूरोप के स्केच), धीरेंद्र वर्मा (यूरोप के पत्र), विमल कपूर (अनजान देशों में) प्रभाकर माचवे (गोरी नजरों में हम), निर्मल वर्मा (चीड़ों पर चाँदनीं), रामकृष्ण बजाज (जापान के सैर) डॉ. हरिवंशराय बच्चन (प्रवास की डायरी) आदि महत्वपूर्ण है।

इस परंपरा में हिंदी यात्रा साहित्य को गौरव प्रदान करने वाली अज्ञेय की एक बूँद सहसा उछली महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसमें स्वीटजरलैंड, बर्लिन, पेरिस आदि के रमणीय स्थलों के साथ कवियों और लेखकों की भेंट का विवरण दिया गया है। इस प्रकार उपरोक्त यात्रा वर्णनों में विश्व के विभिन्न देशों के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि जीवन का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

2. स्वदेश यात्रा साहित्य :

विदेशी यात्राओं को लेकर अनेक लेखकों ने विवेचन किया है परंतु इस दिशा में स्वदेशी यात्रा वर्णन भी काफी समृद्ध है। स्वदेशी यात्राओं में कैलाश, कश्मीर, संयुक्त प्रांत और हिमालय आदि प्रदेश की यात्राएँ अधिक हुई हैं। कश्मीर की प्राकृतिक सुंदरता का वर्णन करने वाली मुख्य रुप से श्री गोपाल नेवटिया की कश्मीर, देवदत्त शास्त्री की मेरी कश्मीर यात्रा और सत्यवती मल्लिक की कश्मीर की सैर उल्लेखनीय कृतियाँ है।

स्वामी प्रणवानंद की 'कैलाश मानसरोवर', स्वामी रामानंद ब्रह्मचारी की 'कैलाश दर्शन', हिमालय की सुंदरता का वर्णन करने वाली उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इसमें कहीं - कहीं दार्शनिकता और भावुकता के भी दर्शन होते हैं। इस दृष्टि से लक्ष्मीनारायण टंडन की संयुक्त प्रांत के तीर्थ स्थान, संयुक्त प्रांत की पहाड़ी यात्राएँ, चक्रधर की भारतवर्ष के कुछ दर्शनीय स्थान, राहुल सांकृत्यायन की किन्नर देश में, दार्जिलिंग परिचय, यशपाल जैन की उत्तराखंड के पथ पर आदि यात्रा वृत्तांत उल्लेखनीय है। स्वदेश यात्रा परंपरा में अज्ञेय की 'अरे यायावर रहेगा याद' और मोहन राकेश की 'आखिरी चट्टान तक' महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। अज्ञेय ने अपनी आसाम से लेकर पश्चिमी सीमा तक की यात्रा का विस्तृत वर्णन किया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिंदी यात्रा साहित्य लेखकों ने स्वदेश वर्णन की अपेक्षा विदेश वर्णन के प्रति रुचि प्रदर्शित की है। प्राकृतिक सौंदर्य के साथ - साथ सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक वर्णन को भी विशेष स्थान दिया है। अतः आधुनिक युग का हिंदी यात्रा साहित्य शैली और उद्देश्य की दृष्टि से विकास की ओर अग्रसर हैं।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 अ) निम्नलिखित वाक्यों में के नीचे दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. आ. रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को ..... कहा है।

   अ) पद्य काल ब) गद्य काल क) काव्य काल ड) गद्य – पद्य मिश्रित काल

2. ..... युग आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का प्रवेश द्वार माना जाता है।

   अ) भारतेंदु ब) द्विवेदी क) प्रेमचंद ड) शुक्ल

3. आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य के जनक..... माने जाते ह

   अ) प्रेमचंद ब) द्विवेदी क) भारतेंदु ड) आ. रामचंद्र शुक्ल

4. भारत में सबसे पहले ..... भाषा में उपन्यास लिखे गए

   अ) मराठी ब) गुजराती क) उर्दू ड) बंगला

5. आ. रामचंद्र शुक्ल..... उपन्यास को हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास मानते है।

   अ) भाग्यवती ब) चंद्रकांता क) परीक्षा गुरु ड) चंद्रप्रभा

5. जासूसी उपन्यासों के अग्रगण्य लेखक..... माने जाते हैं।

   अ) रामलाल वर्मा ब) देवकीनंदन खत्री क) किशोरीलाल गोस्वामी ड) गोपालराम गहमरी

7. ..... को उपन्यास सम्राट कहा जाता है।

   अ) प्रेमचंद ब) यशपाल क) जैनेंद्र ड) अज्ञेय

8. गोदान ..... का सुप्रसिद्ध उपन्यास है।

   अ) जयशंकर प्रसाद ब) निराला क) प्रेमचंद ड) अज्ञेय

9. प्रेमचंद के ..... उपन्यास को भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य माना जाता है।

   अ) रंगभूमि ब) कर्मभूमि क) कायाकल्प ड) गोदान

10. गढ़कुंडार ..... का प्रसिद्ध उपन्यास है।

    अ) वृंदावनलाल वर्मा ब) जयशंकर प्रसाद क) निराला ड) यशपाल

11. गिरती दीवारें ..... का सर्वाधिक प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है।

    अ) उपेंद्रनाथ अश्क ब) भगवतीचरण वर्मा क) अमृतलाल नागर क) विष्णु प्रभाकर

12. कल्याणी उपन्यास के लेखक..... हैं।

अ) डॉ. देवराज ब) इलाचंद्र जोशी क) जैनेंद्र ड) अज्ञेय

13. सन्यासी ..... का प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यास है।

अ) जैनेंद्र ब) अज्ञेय क) इलाचंद्र जोशी ड) डॉ. देवराज

14. शेखर एक जीवनी उपन्यास के लेखक..... है।

अ) यशपाल ब) प्रेमचंद क) जैनेंद्र ड) अज्ञेय

15. झूठा-सच उपन्यास के उपन्यासकार..... है।

अ) नागार्जुन ब) यशपाल क) अज्ञेय ड) जैनेंद्र

16. आँचलिक उपन्यासों के प्रवर्तक .....को माना जाता ह।

अ) फणीश्वरनाथ रेणु ब) नागार्जुन क) रांगेय राघव ड) चतुरसेन शास्त्री

17. मैला आँचल..... का प्रसिद्ध आँचलिक उपन्यास है।

अ) नागार्जुन ब) उदयशंकर भट्ट क) राजेंद्र अवस्थी ड) फणीश्वरनाथ रेणु

18. नाट्यशास्त्र ग्रंथ के रचनाकार..... है।

अ) महामुनी ब) भरतमुनि क) आ. रामचंद्र शुक्ला ड) आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी

19. आ. रामचंद्र शुक्ल ने..... को हिंदी का पहला नाटक माना हैं।

अ) आनंद रघुनंदन ब) नहुष क) प्रेमयोगिनी ड) भारत दुर्दशा

20. भारत दुर्दशा नाटक के नाटककार..... है।

अ) प्रसाद ब) बालकृष्ण भट्ट क) लाला श्रीनिवासदास ड) भारतेंदु

21. अजातशत्रु नाटक के नाटककार ..... है।

अ) लक्ष्मीनारायण लाल ब) वृंदावनलाल वर्मा क) जयशंकर प्रसाद ड) हरिकृष्ण प्रेमी

22. ध्रुवस्वामिनी नाटक के रचयिता..... है।

अ) भारतेंदु ब) प्रसाद क) बालकृष्ण भट्ट ड) धर्मवीर भारती

23. झाँसी की रानी नाटक के नाटककार.....है।

अ) लक्ष्मीनारायण लाल ब) वृंदावनलाल वर्मा क) चतुरसेन शास्त्री ड) रामकुमार वर्मा

24. संन्यासी नाटक के लेखक..... है।

अ) उपेंद्रनाथ अश्क ब) सेठ गोविंददास क) लक्ष्मीनारायण मिश्र ड) विनोद रस्तोगी

25. धर्मवीर भारती का अंधायुग..... नाटक है।

अ) ऐतिहासिक ब) समस्या प्रधान क) प्रतीकवादी ड) गीति

26. मादाकैक्टस..... का प्रसिद्ध नाटक हैं।

अ) सेठ गोविंददास ब) चतुरसेन शास्त्री क) विनोद रस्तोगी ड) लक्ष्मीनारायण लाल

27. आषाढ़ का एक दिन नाटक के नाटककार..... हैं ।

अ) मोहन राकेश ब) सर्वेश्वर दयाल सक्सेना क) ज्ञानदेव चतुर्वेदी ड) गिरिराज किशोर

28. यात्रा;..... संज्ञा है।

अ) अंग्रेजी ब) संस्कृत क) अरबी ड) उर्दू

29. कविवचन सुधा नामक पत्रिका के संपादक..... है।

अ) आ.महावीर प्रसाद द्विवेदी ब)भारतेंदु हरिश्चंद्र क) प्रतापनारायण मिश्र ड) बालकृष्ण भट्ट

30. हिंदी की सर्वप्रथम यात्रा पुस्तक लंदन यात्रा..... की मानी जाती है।

अ) हरिकृष्ण प्रेमी ब) श्रीमती हरदेवी क) पं. दामोदर शास्त्री ड) भारतेंदु

31. ज्ञान के उद्यान में ..... का प्रसिद्ध यात्रावृत्त है।

अ) राहुल सांकृत्यायन ब) जवाहरलाल नेहरू क) सत्यदेव परिव्राजक ड) डॉ. सत्यनारायण

32. किन्नर देश में यात्रावृत्त के लेखक.....है।

अ) सत्यदेव परिव्राजक ब) पं. राहुल सांकृत्यायन क) शिवनंदन सहाय ड) डॉ. सत्यनारायण

33. रामवृक्ष बेनीपुरी का.....प्रसिद्ध यात्रा वृत्त है।

अ) दुनिया की सैर ब) जापान की सैर क) पैरों में पंख बाँधकर ड) पृथ्वी परिक्रमा

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. उद्भव – उत्पत्ति जन्म
2. आदिकाल – प्रारंभिक काल
3. अंकन चित्रण
4. आधुनिक – आज का नए जमाने का
5. जनक – जन्मदाता स्रष्टा
6. नावेल – उपन्यास
7. विधा – साहित्य के रूप या प्रकार

8. चरमसीमा – किसी बात या कार्य की अंतिम अवस्था हद

9. तिलिस्मी जादू इंद्रजाल अलौकिक व्यापार

10. जासूसी – गुप्त रूप से किसी बात का पता लगाना

11. यथार्थ – सत्य जैसा है वैसा

12. प्रख्यात – प्रसिद्ध

13. सृजन – रचना करना निर्माण करना

14. त्रासदी – अप्रिय दुखद

15. सूत्रपात – किसी कार्य का आरंभ

16. वृद्धि – प्रगति विकास

17. अग्रसर – आगे बढ़ता हुआ विकासशील

18. आदी – अभ्यस्त

19. विशाल – व्यापक विस्तृत

20. योगदान – कार्यों में सहभाग

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. गद्य काल	2. भारतेंदु	3. भारतेंदु	4. बंगला
5. परीक्षा गुरु	6. गोपालराम गहमरी	7. प्रेमचंद	8. प्रेमचंद
9. गोदान	10. वृंदावनलाल वर्मा	11. उपेंद्रनाथ अश्क	12. जैनेंद्र
13. इलाचंद्र जोशी	14. अज्ञेय	15. यशपाल	16. फणीश्वरनाथ रेणु
17. फणीश्वरनाथ रेणु	18. भरतमुनि	19. आनंद रघुनंदन	20. भारतेंदु
21. जयशंकर प्रसाद	22. प्रसाद	23. वृंदावनलाल वर्मा	24. लक्ष्मीनारायण मिश्र
25. गीति	26. लक्ष्मीनारायण लाल	27. मोहन राकेश	28. संस्कृत
29. भारतेंदु हरिश्चंद्र	30. श्रीमती हरदेवी	31. सत्यदेव परिव्राजक	32. पं. राहुल सांकृत्यायन

33. पैरों में पंख बाँधकर

3.7 सारांश :

1. हिंदी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया गया है – आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल। सं. 1900 से आज तक के कालखंड को आधुनिक काल कहा जाता है। हिंदी गद्य साहित्य का उद्‌भव और विकास आधुनिक काल की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग को गद्य काल कहा है।

2. आधुनिक काल में गद्य साहित्य की सभी विधाओं का प्रारंभ भारतेंदु युग से माना जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने स्वयं गद्य की विभिन्न विधाओं पर अपनी लेखनी चलायी है। भारतेंदु युग आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का प्रवेश द्वार है। अतः भारतेंदु आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य के जनक माने जाते हैं।

3. आधुनिक काल में उपन्यास साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु युग से माना जाता है। अधिकांश विद्वान लाला श्रीनिवासदास कृत परीक्षा गुरु को हिंदी का पहला उपन्यास मानते हैं। उपन्यास विधा को समृद्ध करने के लिए प्रेमचंद्र का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। प्रेमचंद्र ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का चित्रण कर जन सामान्य को वाणी देने का प्रयास किया है इसलिए प्रेमचंद को उपन्यास सम्राट कहा जाता है। प्रेमचंद को केंद्र में रखकर उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा को तीन कालखंड में विभाजित किया गया है – 1. प्रेमचंद पूर्व युग 2. प्रेमचंद युग 3. प्रेमचंदोत्तर युग। प्रेमचंद के बाद भी उपन्यास साहित्य का विविधमुखी विकास हुआ है।

4. साहित्य की अन्य विधाओं के समान हिंदी नाटक साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु युग से ही माना जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अनेक मौलिक और अनूदित नाटक लिखकर हिंदी नाटक साहित्य का प्रवर्तन किया। तत्पश्चात जयशंकर प्रसाद ने हिंदी नाटक को उत्कर्ष की चरमसीमा पर पहुँचाया। प्रसाद हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार माने जाते है। भारतेंदु से लेकर आज तक के नाटक साहित्य के विकास क्रम को चार कालखंडों में विभाजित किया जाता है – 1. भारतेंदु युग 2. द्विवेदी युग 3. प्रसाद युग 4. प्रसादोत्तर युग। प्रसादोत्तर युग में रंगमंच और यथार्थ की दृष्टि से हिंदी नाटक का विकास हुआ।

5. प्राचीन काल से ही यात्रा साहित्य का उद्गम माना जाता है। परंतु आधुनिक युग में इसे स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकार किया गया है। यात्रा साहित्य के विकास क्रम को इस प्रकार विभाजित किया जाता है – 1. भारतेंदु युगीन यात्रा साहित्य, 2. द्विवेदी युगीन यात्रा साहित्य, 3. छायावादी युगीन यात्रा साहित्य, 4. स्वातंत्र्योत्तर युगीन यात्रा साहित्य। आधुनिक काल में भारतेंदु ने स्वयं यात्रा वृत्तांत लिखकर यात्रा साहित्य को समृद्ध बनाया। भारतेंदु युग से आज तक हिंदी यात्रा साहित्य विकास की ओर अग्रसर हो रहा है।

3.8 स्वाध्याय :

प्रश्न 1. दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. हिंदी उपन्यास साहित्य के उद्भव एवं विकास का विवेचन कीजिए।
2. हिंदी नाटक साहित्य का परिचय दीजिए।
3. हिंदी यात्रा साहित्य के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

3.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. हिंदी के प्रमुख उपन्यासकारों एवं नाटककारों की सूची बनाइए।
2. किसी एक प्रसिद्ध क्षेत्र की सफर कर यात्रा वृत्तांत लिखिए।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. हिंदी साहित्य का सही इतिहास – डॉ. चंद्रभानु सोनावने
2. हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ डॉ.शिवकुमार शर्मा
3. हिंदी साहित्य का इतिहास : नए विचार नई दृष्टि डॉ. सुरेशकुमार जैन
4. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त

●●●

इकाई 4

आधुनिक काल

काव्य की विभिन्न धाराओं की विशेषताएँ – छायावाद, प्रगतिवाद, समकालीन (साठोत्तरी) कविता

अनुक्रम

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय – विवेचन

4.3.1 छायावाद

4.3.2 प्रगतिवाद

4.3.3 समकालीन कविता

4.4 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य :

आधुनिक काल में छायावाद, प्रगतिवाद और समकालीन कविता इन तीन प्रमुख काव्यधाराओं का विवेचन और विश्लेषण किया है। इस इकाई को पढने के बाद आप –

1. छायावादी काव्य का अर्थ, परिभाषा एवं छायावाद की विशेषताओं को समझेंगे।
2. प्रगतिवाद काव्य का अर्थ, परिभाषा एवं प्रगतिवाद की विशेषताओं को समझेंगे।
3. समकालीन कविता का अर्थ, परिभाषा एवं समकालीन कविता की विशेषताओं को समझेंगे।

4.2 प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य को अध्ययन की सुविधा के लिए विभिन्न कालखंडों में विभाजित किया है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल इन चार कालखंडों में हिंदी साहित्य का विभाजन किया है। सन 1900 ई. से अबतक के कालखंड को आधुनिक काल कहा जाता है। आधुनिक काल का अध्ययन करने के लिए फिर उसे विभिन्न भागों में विभाजित किया है। जैसे– भारतेंदु युग (1850 ई. से 1900 ई.), द्विवेदी युग (1900 ई. से 1920 ई.), छायावाद (1920 ई. से 1936 ई.), प्रगतिवाद (1936 ई. से 1943 ई.), प्रयोगवाद/नई कविता (1943 ई. से 1960 ई.) और साठोत्तरी कविता (1960 ई. से आगे)। आधुनिक काल में मनुष्य के जीवन में काफी परिवर्तन हुए है। उसी तरह कविता के भाषा और शिल्प में भी काफी परिवर्तन देखने मिलते हैं। आधुनिक काल की कविता उत्तरोत्तर आम जन की कविता बनती गई है। इसमें सर्वसामान्य लोगों की जीवन की विभिन्न विषयों एवं समस्याओं को रेखांकित करने का प्रयास कवियों ने किया। इसकारण आधुनिक कविता के विभिन्न कालखंड में लोकतत्व की प्रधानता रही है। अत: इस इकाई में छायावाद, प्रगतिवाद और साठोत्तरी/समकालीन कविता पृष्ठभूमि को साथ उनकी विशेषताओं का विश्लेषण किया है।

4.3 विषय – विवेचन :

4.3.1 छायावाद : अर्थ, स्वरूप, परिभाषा एवं छायावाद की विशेषताएँ :

हिंदी की रोमांटिक स्वछंदतावादी काव्यधारा की विकसित अवस्था को छायावाद नाम से जाना जाता है। मौटे तौर पर छायावाद का विकास द्विवेदीयुगीन कविता के उपरान्त हिंदी में हुआ। छायावादी काव्य की समय सीमा अधिकतर विद्वानों ने सन 1918 ई. से 1936 ई. तक माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी छायावाद का प्रारंभ 1918 से ही माना है क्योंकि छायावाद के प्रमुख कवियों पन्त, प्रसाद, निराला ने अपनी रचनाएँ लगभग इसी वर्ष के आस–पास लिखनी आरंभ की थीं। इस युग में छायावाद इतनी प्रमुख प्रवृत्ति रहने के कारण सभी कवि इससे प्रभावित हुए और इसके नाम पर ही इस युग को छायावादी युग कहा जाने लगा। छायावाद युग को साहित्यिक खड़ीबोली का स्वर्ण युग कहा जाता है। आधुनिक हिंदी काव्यधारा के विकास में छायावाद का स्थान महत्वपूर्ण है। छायावाद ने केवल अंतर्वस्तु के स्तर पर समृद्ध किया अपितु काव्य भाषा और संरचना की दृष्टि से से भी हिंदी कविता को समृद्ध किया है। अत: यहाँ पर हम छायावाद कविता का अध्ययन करेंगे। इसमें छायावाद कविता की पृष्ठभूमि, छायावाद का अर्थ, परिभाषा, छायावाद के प्रमुख कवि, छायावादी कविता की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण किया जाएगा।

● **छायावाद का स्वरूप एवं अर्थ :**

छायावाद के स्वरूप को समझने के लिए हमें इसके पूर्ववर्ती युग यानी द्विवेदी युग को समझ लेना अनिवार्य होगा जिससे छायावाद का अर्विभाव हुआ। साहित्य के क्षेत्र में सामान्यत: यह देखा गया है कि पूर्ववर्ती युग के अबावों को दूर करने के लिए परवर्तीयुग का जन्म होता है। छायावाद के मूल में भी यही नियम कार्य कर रहा था। छायावादी काव्य का जन्म द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ क्योंकि व्दिवेदीयुगीन कविता विषयनिष्ठ, वर्णन प्रधान और स्थूल थी किन्तु साहित्य के अभाव तथा उपदेशात्मक पद्धति ने उस कविता में एकरूपता पैदा कर दी थी। इस काल में विकसित होनेवाली काव्य प्रवृत्तियों में घोर उपयोगितावाद, अतिआदर्शवाद, अतिकथात्मकता आदि के कारण उसमें इतिवृतात्मकता की प्रवृत्ति अधिक थी। 'द्विवेदी युग' में हिन्दी कविता कोरी उपदेश मात्र बन गई थी। उसमें समाज सुधार की चर्चा व्यापक रूप से की जाती थी और कुछ आख्यानों का वर्णन किया जाता था। उपदेशात्मकता और नैतिकता की प्रधानता के कारण कविता में नीरसता आ गई। कवि का हृदय उस निरसता से ऊब गया और कविता में सरसता लाने के लिए वह छटपटा उठा। इसके लिए उसने प्रकृति को माध्यम बनाया। प्रकृति के माध्यम से जब मानव-भावनाओं का चित्रण होने लगा, तभी 'छायावाद' का जन्म हुआ और कविता 'इतिवृत्तात्मकता' को छोड़कर कल्पना लोक में विचरण करने लगी। छायावादी कविता व्यक्तिनिष्ठ, कल्पना प्रधान एवं सूक्ष्म है। आरंभ में छायावाद का प्रयोग व्यंग के रूप में उन कविताओं के लिए किया गया जो अस्पष्ट थी, जिनकी छाया (अर्थ) कहीं और पड़ती थी, किन्तु कालान्तर में यह नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया जिनमें मानव और प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान होता था और वेदना की रहस्यमयी अनुभूति की लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यंजना की जाती थी। छायावाद में चिरन्तन मानविय मूल्य, भाषागत बारीक व्यंजनाएँ तथा तराशे गए शब्दों में अर्थ की नई संभावनाएँ पैदा करने की जरूरत को पूरा करने का उद्देश्य छायावाद ने चुना। छायावादी कताव्यधारा में युवा मत की स्वच्छंद भावनाएँ और उनके विकास के गतिशील मानचित्र, राष्ट्रीय स्वाधीनता और व्यक्ति स्वातंत्र्य का स्वर तथा जन-जागरण की विश्वव्यापी लहर को संवार कर प्रवाहमान बनाने का दायित्व छायावादी कवियों ने निभाया। छायावादी काव्यधारा की महत्वपूर्ण विशेषत: यह थी कि इसमें बाह्य अर्थ से भिन्न एक भीतरी सूक्ष्म-अर्थ की छवि की छाया प्रतीत हो रही थी, इसलिए इस कविता को छायावाद नाम दिया गया।

● **छायावाद शब्द का प्रयोग :**

छायावाद शैली के सुपरिचित कवि श्री मुकुंधर पाण्डेय ने जबलपुर से प्रकाशित श्री शारदा नामक पत्रिका के 1920 के अंकों में हिंदी कविता में छायावाद नाम से एक लेखमाला आरंभ की और उसमें न केवल पहली बार छायावाद का नामकरण किया, बल्कि छायावादी कविता के आरम्भिक चरण-चिन्हों को अंकित भी किया। उन्होंने लिखा था - छायावाद एक मायामय सूक्ष्म वस्तु है। इसमें शब्द और अर्थ का सामंजस्य बहुत कम रहता है। मुकुटधर पाण्डेय ने छायावादी शब्द का प्रयोग उन कविताओं के लिए किया था, जिनमें उन्हें अस्पष्टता और भावों में धुँधलापन दिखाई पड़ा। मुकुटधर पांडेय जी द्वारा रचित कविता 'कुररी के प्रति' छायावाद की प्रथम कविता मानी जाती है । इसके अतिरिक्त 1921 ई. में सरस्वती पत्रिका में सुशील कुमार ने हिंदी में

छायावाद शीर्षक से एक संवादात्मक निबंध लिखा था। इस प्रकार सर्वप्रथम छायावाद शब्द का प्रयोग मुकुटधर पांडेय ने किया था छायावाद को मिस्टिसिजम के अर्थ के रूप में प्रयोग किया गया था आरंभ में छायावाद शब्द का प्रयोग व्यंग्य के रूप में किया गया था लेकिन बाद में इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया गया।

● **छायावाद परिभाषा :**

छायावाद के अर्थ को लेकर विभिन्न मतभेद दिखाई देते हैं। प्रारंभ में छायावाद इस शब्द को व्यंग्य के रूप में लिया गया। लेकिन बाद में काव्य की गहराई को समझते हुए छायावाद यह शब्द रूढ होता गया और सभी ने इसे सहर्ष स्वीकारा। आ. रामचंद्र शुक्ल जी ने छायावाद का संबंध रहस्यवाद और विशेष काव्य शैली सेड़ा है। अत: छायावाद के अर्थ को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं को देखना जरूरी है।

1. आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी :

''छायावाद से लोगों का क्या मतलब है कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।'' (''आजकल के हिंदी कवि और कविता' – सरस्वती पत्रिका)।

2. सुमित्रानंदन पंत :

छायावाद चित्रभाषा पद्धति है।

3. डॉ. रामकुमार वर्मा :

जब परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में तो यही छायावाद है।

4. नंददुलारे वाजपेई :

छायावाद संसारिक वस्तुओं में दिव्य सौंदर्य का प्रत्यय है।

5. डॉ. नगेंद्र :

स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद है।

6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल :

छायावाद का सामान्य अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छाया के रुप में अप्रस्तुत का कथन।

7. जयशंकर प्रसाद :

कविता के क्षेत्र में जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।

8. महादेवी वर्मा :

प्रकृति में चेतना का आरोप, सूक्ष्म सौंदर्य का उद्‌घाटन एवं असीम के प्रति अनुरागमय आत्म विसर्जन की प्रवृत्तियों का गीतात्मक एवं नवीन शैली में व्याप्त रुप छायावाद है।

9. गंगाप्रसाद पाण्डेय :

किसी वस्तु में एक अज्ञात, सप्राण छाया की झॉकी पाना अथवा आरोप करना छायावाद है । अर्थात यह स्पष्ट होता है की रहस्यवाद की अंतिम परिणति छायावाद है।

10. रामविलास शर्मा :

छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा, वरन थोथी नैतिकता, रूढिवाद और सामंती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह रहा है। यह विद्रोह मध्य वर्ग के तत्वावधान में हुआ था इसलिए उसके साथ मध्यवर्गीय असंगति,पराजय और पलायन की भावना भी जुडी हुई है ।

उपरोक्त परिभाषाओं के सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि 1. छायावाद कविता की विशेष पद्‌धति है। 2. इसमें अज्ञात सत्ता के प्रति आध्यात्मिक सजगता है। 3. छायावाद कविता का वैचारिक आधार दार्शनिक अनुभूति है। 4. छायावादी कविता प्रेम और सौंदर्य की कविता है। 5. इसमें रूढिवाद का विरोध है। 6. छायावाद प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। 7. छायावाद में स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।

● **छायावाद के प्रमुख कवि :**

आधुनिक हिंदी कविता में छायावाद के प्रमुख कवि के रूप में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्हें छायावाद चतुष्टय कहा जाता है। अत: इन चार कवियों का संक्षिप्त परिचय लेना जरूरी है–

1. जयशंकर प्रसाद (1889 ई. से 1937 ई.) :

जयशंकर प्रसाद हिंदी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि थे। कवि होने के साथ वे एक गंभीर चिंतक थे जिसका प्रभाव उनकी कविताओं में देखने मिलता है। उनकी काव्यभाषा ने हिंदी कविता में अपनी विशेष पहचान बनाई है। प्रसाद जी ने हिंदी साहित्य में पहली बार अपने काव्य में मानव के सुख–दु:ख, चिंतन आदि सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण करके एक नए युग का प्रारंभ किया जो छायावाद से जाना जाता है। इसकारण उन्हें छायावाद का प्रवर्तक माना जाता है। उनकी काव्य–कृतियाँ इस प्रकार है –

1. चम्पू – उर्वशी और बभ्रूवाहन।
2. महाकाव्य – कामायनी ।
3. काव्य रूपक – करूणालय।
4. खंड काव्य – प्रेमराज्य, प्रेम–पथिक, महाराणा का महत्त्व और आँसू।
5. गीति–काव्य – शोकोच्छवास, कानन–कुसुम, चित्राधार, झरना और लहर।

2. सुमित्रानंदन पंत (१९०० ई. से १९७७ ई.)

सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म बागेश्वर ज़िले के कौसानी नामक ग्राम में 20 मई, 1900 ई. को हुआ। जन्म के छह घंटे बाद ही उनकी माँ का निधन हो गया। उनका लालन-पालन उनकी दादी ने किया। उनका नाम गोसाईं दत्त रखा गया। वह गंगादत्त पंत की आठवीं संतान थे। 1910 ई. में शिक्षा प्राप्त करने गवर्नमेंट हाईस्कूल अल्मोड़ा गये। यहीं उन्होंने अपना नाम गोसाईं दत्त से बदलकर सुमित्रानंदन पंत रख लिया। 1918 ई. में मँझले भाई के साथ काशी गये और क्वींस कॉलेज में पढ़ने लगे। वहाँ से हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर म्योर कालेज में पढ़ने के लिए इलाहाबाद चले गए। 1921 ई. में असहयोग आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी के भारतीयों से अंग्रेजी विद्यालयों, महाविद्यालयों, न्यायालयों एवं अन्य सरकारी कार्यालयों का बहिष्कार करने के आह्वान पर उन्होंने महाविद्यालय छोड़ दिया और घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी भाषा-साहित्य का अध्ययन करने लगे। इलाहाबाद में ही उनकी काव्यचेतना का विकास हुआ।

महात्मा गाँधी के सान्निध्य में उन्हें आत्मा के प्रकाश का अनुभव हुआ। 1938 ई. में प्रगतिशील मासिक पत्रिका 'रूपाभ' का सम्पादन किया। श्री अरविन्द आश्रम की यात्रा से आध्यात्मिक चेतना का विकास हुआ। 1950 ई. से 1957 ई. तक आकाशवाणी में परामर्शदाता रहे। 1958 ई. में 'युगवाणी' से 'वाणी' काव्य संग्रहों की प्रतिनिधि कविताओं का संकलन 'चिदम्बरा' प्रकाशित हुआ, जिसपर 1968 ई. में उन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ' पुरस्कार प्राप्त हुआ। 1960 ई. में 'कला और बूढ़ा चाँद' काव्य संग्रह के लिए 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्राप्त हुआ। 1961 ई. में 'पद्मभूषण' की उपाधि से विभूषित हुये। 1964 ई. में विशाल महाकाव्य 'लोकायतन' का प्रकाशन हुआ। कालान्तर में उनके अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। वह जीवन-पर्यन्त रचनारत रहे। अविवाहित पंत जी के अंतस्थल में नारी और प्रकृति के प्रति आजीवन सौन्दर्यपरक भावना रही। उनकी मृत्यु 28 दिसम्बर 1977 ई. को हुई।

● **सुमित्रानंदन पंत का साहित्य :**

१. काव्य-साहित्य –

* छायावादी काव्य- ग्रंथि (1920 ई.), वीणा (1927 ई.), पल्लव (1928 ई.), गुंजन (1932 ई.)।
* प्रगतिवादी काव्य - युगवाणी, ग्राम्या, युगांत।
* अरविंद दर्शन काव्य - स्वर्ण किरण, स्वर्णधुलि, उतरा, वाणी।
* मानवतावादी काव्य - लोकातयन (महात्मा गांधी पर), चिंदबरा, शशि की तरी।
* लंबी कविता - परिवर्तन, मौन निमंत्रण।

२. नाटक – रजत शिखर, शिल्पी, युगपुरुष, अंतिमा, ज्योत्सका, सत्यकाम।

३. आलोचना ग्रंथ – गद्य-पद्य शिल्प और दर्शन, छायावाद : पुन:मूल्यांकन, पल्लव की भूमिका।

४. **आत्मकथा –** साठ वर्ष एक रेखांकन।

3. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला (1899 ई. से 1961 ई.) :

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म बंगाल की महिषादल रियासत के मेदिनीपुर में माघ शुक्ल 11, संवत् 1955, तदनुसार 21 फ़रवरी, सन् 1899 ई. में हुआ था। वसंत पंचमी पर उनका जन्मदिन मनाने की परंपरा 1930 ई. में प्रारंभ हुई। उनका जन्म मंगलवार को हुआ था। जन्म-कुण्डली बनाने वाले पंडित के कहने से उनका नाम सुर्जकुमार रखा गया। उनके पिता पंडित रामसहाय तिवारी (बैसवाड़ा) के रहने वाले थे और महिषादल में सिपाही की नौकरी करते थे। वे मूल रूप से उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के गढकोला नामक गाँव के निवासी थे।

● **निराला की साहित्यिक कृतियाँ :**

निराला बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे बंगला और पाश्चात्य साहित्य के अनुशीलन से प्रेरित होकर निराला ने सन् 1916 ई में प्रकाशित अपनी रचना जूही की कली से हिंदी जगत में अनुप्रवेश किया इसमें स्वच्छंदतावादी काव्यधारा की संपूर्ण विशेषताएँ निहित हैं। इसके बाद वे सतत काव्य रचना में संलग्न रहे। उनकी अनेक रचनाओं का हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। सम्पूर्ण निराला साहित्य का विहंगावलोकन निम्न प्रकार से किया जा सकता है –

1. काव्य-साहित्य – अनामिका, परिमल, गीतिका, अनामिका (दूसरा संग्रह), तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, अपरा, बेला, नये पत्ते, अर्चना, आराधना, गीतगुंज एवं सांध्यकाकली आदि।

2. उपन्यास साहित्य – अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, चोटी की पकड़, काले कारनामे एवं चमेली (अपूर्ण)।

3. कहानी संग्रह – लिली, सखी, सुकुन की बीबी एवं चतुरी चमार।

4. रेखाचित्र – कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा।

5. निबंध-संग्रह – प्रबन्ध पद्म, प्रबन्ध प्रतिभा एवं चाबुक।

6. आलोचना-ग्रंथ – रविंद्र कविता कानन, ग्यारह बंगला उपन्यासों का हिंदी अनुवाद, तीन अप्रकाशितनाटक एवं दो जीवन चरित्र।

7. अनुदित-कृतियाँ – देवी चौधरानी, कपाल कुंडला, चंद्रशेखर, स्वामी विवेकानंद के भाषण, आनन्दमठ एवं हिंदी बंगला शिक्षा।

4. महादेवी वर्मा (1907 ई. से 1987 ई.) :

महादेवी वर्मा का जन्म होली के दिन 24 मार्च, 1987 ई. में फर्रूखाबाद में हुआ। हिंदी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से थीं। वे हिंदी साहित्य में छायावादी युग के प्रमुख चार कवियों में से एक मानी जाती

हैं। आधुनिक हिन्दी कविता के कालखंड में उन्हें आधुनिक मीरा के नाम से भी जाना जाता है। कवि निराला ने उन्हें हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती कहा है। महादेवी ने स्वतन्त्रता के पहले का भारत भी देखा और उसके बाद का भी। वे उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा, परखा और करुण होकर अन्धकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। न केवल उनका काव्य बल्कि उनके सामाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना भी इस दृष्टि से प्रभावित रहे।

- **महादेवी वर्मा का साहित्य – कविता संग्रह :**

1. नीहार (1930)
2. रश्मि (1932)
3. नीरजा (1934)
4. सांध्यगीत (1936)
5. दीपशिखा (1942)
6. सप्तपर्णा (अनूदित–1959)
7. प्रथम आयाम (1974)
8. अग्निरेखा (1990)
9. आत्मिका, परिक्रमा, सन्धिनी (1965)
10. यामा (1936)
11. गीतपर्व, दीपगीत, स्मारिका, नीलांबरा, आधुनिक कवि महादेवी आदि।

- **महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य :**

◆ **रेखाचित्र :** अतीत के चलचित्र (1941) और स्मृति की रेखाएं (1943)।

◆ **संस्मरण :** पथ के साथी (1956) और मेरा परिवार (1972) और संस्मरण (1983)।

◆ **चुने हुए भाषणों का संकलन :** संभाषण (1974)

◆ **निबंध :** शृंखला की कडियाँ (1942), विवेचनात्मक गद्य (1942), साहित्यकार की आस्था और ललित निबंध (1962), संकल्पिता (1969)।

◆ **ललित निबंध :** क्षणदा (1956)।

◆ **कहानियाँ :** गिल्लू।

◆ **संस्मरण, रेखाचित्र और निबंधों का संग्रह :** हिमालय (1963)।

महादेवी वर्मा का बाल साहित्य :

महादेवी वर्मा की बाल कविताओं के दो संकलन छपे हैं।

1. ठाकुरजी भोले हैं 2. आज खरीदेंगे हम ज्वाला।

छायावाद के उपरोक्त प्रमुख चार कवियों के साथ मुकुटधर पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, श्रीरायकृष्णदास, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, बालकृष्ण शर्मा नवीन माखनलाल चतुवेदी, सुमित्राकुमारी सिन्हा, विद्यावती कोकिल, मोहनलाल महतो वियोगी, नरेंद्र शर्मा, उदयशंकर भट्ट, रामेश्वर शुक्ल अंचल,हरिकृष्ण प्रेमी, जानकीवल्लभ शास्त्री, केदारनाथ मिश्र प्रभात आदि कवियों ने भी छायावादी काव्यधारा में बहमोल योगदान दिया।

● **छायावाद की विशेषताएँ :**

छायावाद की विषेशताएँ (प्रवृत्तियाँ) छायावाद की परिभाषाओं के अध्ययन के दौरान हमने यह देखा कि उनमें प्रसाद आदि कवियों ने छाया को परिभाषित करने का प्रयास किया है । किसी भी परिभाषा में छायावाद शब्द का अर्थ स्पष्ट रूप से विश्लेषित नहीं हो पाया। इन परिभाषाओं में छायावादी काव्य की विशेषताओं पर अवश्य प्रकाश डाला गया है। उपरोक्त लंबे विचार-विनिमय के बाद हमें यह सप्ष्ट हो गया होगा कि छायावाद न रहस्यवाद है, न केवल शैली है और न ही केवल स्थूल के प्रति सूक्ष्म का आग्रह। उपरोक्त सभी परिभाषाओं में उसकी एक प्रमुख विशेषता की ओर संकेत तो मिलता है पर उसकी समग्रता को परिभाषाति नहीं होती। छायावाद इनमें संकेतिक हर विशेषता से कुछ अधिक है। छायावादी कविता में प्रेम, सौन्दर्य, निराशावाद, पलायनवाद, कल्पनाशीलता, भावप्रणता, कोमलकान्त पदावली आदि रोमेण्टिक प्रवृत्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि छायावादी कविता रोमण्टिक कविता है। इस युग के परिस्थितियों में रोमेण्टिक प्रवृत्तियों बोलबाला होने के कारण उस कविता के युग को रोमेण्टिक युग कहा जा सकता है। हिन्दी के प्रमुख रोमेण्टिक कवियों, प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी इत्यादि की कविताओं में भी कमोबेश वडर्सवर्थ, शेली, कीट्स, कॉलरीज, बायरन आदि कविताओं में कमोबेश वही रोमेण्टिक प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती है। छायावादी काव्यधारा एवं उसके कवियों को हिंदी के प्रमुख रोमेण्टिक कवि कहा जा सकता है। संक्षेप में छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नवत् रेखांकित की जा सकती हैं -

1. आत्माभिव्यक्ति :

छायावादी काव्यधारा के सभी कवियों ने कविता का मूल विषय अपने अनुभव को मेरा अनुभव कहकर व्यक्त किया। काव्य की विष्य वस्तु को अपने व्यक्तिगत जीवन से ही खोजने का प्रयास किया है। छायावादी काव्य में किसी जाति, महाजाति के सुख-दुख की नहीं अपितु साधारण व्यक्ति के सुख-दुख की खुलकर अभिव्यक्ति हुई है कवि अपनी कविता की विषय-वस्तु की खोज बाहर से नहीं अपितु अपने भीतर से करता है इसीलिए छायावादी काव्य में कहीं-कहीं अहम भावना की अति है परंतु यह अहम भाव असामाजिक नहीं है इसमें सर्व मिला हुआ है प्रसाद कृत आँसू काव्य और पंत कृत उच्छवास नामक कविता इस कथन के समर्थन में पेश की जा सकती है। पन्त जी ने अपनी प्रिया को मन मन्दिर में बसाकर उसे पूजने का उल्लेख निम्न पंक्तियों में किया है।

विधुर उस के मृदुभावों से तुम्हार कर नित वन श्रृंगार ।

पूजता हूँ तूम्हें कुमारि, मूंद दुहरे दृग व्दार ।। – पन्त

निराला की अधिकतर कविताओं में उनके व्.क्तिगत जीवन का सत्य व्यक्त हुआ है। राम की शक्तिपूजा कविता में राम की हताशा, निराशा में कवि के अपनी जीवन की निराशा की अभिव्यक्ति हुई है। उन्हें जीवन भर लोगों के जिस विरोध को झेलना पड़ा उसकी झलक निम पंक्तियों मे दिखाई देती है –

धिक जीवन जो पाता ही आया विरोध ।

धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध ।। – निराला

2. प्रकृति चित्रण :

छायावाद और प्रकृति का अभिन्न संबंध रहा है। इसे हम अलग करके देख नहीं सकते। छायावादी कविता प्रकृति चित्रण के अभाव में प्राणहीन हो जाती है। इस युग के कवियों न प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग प्रदर्शित किया है। ऐसा लगता है कि इन कवियों ने मावन हृदय और प्रकृति का संबंध को प्रकृति के डोर से बाँध दिया है। प्रकृति के मृदु और मोहक चित्रों की लंबी श्रृंखला छायावादी काव्यधारा में प्रमुखत से दिखाई देती है। छायावादी कविताओं में प्रकृति का आलंबन, उद्दीपन, मानवीकरण,रहस्यमयी आदि शक्ति रूपों का वर्णन विशेष रूप से दिखाई देता है। छायावादी कवियों ने प्रकृति से प्रेम करना सिखाया। आधुनिक जीवन ने प्रकृति को देखने समझने की नयी दृष्टि प्रदान की है। उन्होंने प्रकृति के महत्व को समझा, उसे अपना मित्र, सहचर,प्रेयसी और माँ सब कुछ माना।

छायावादी कवि प्रकृति के कुशल चितेरे हैं। इन कवियों नेन प्रकृति पर मानवीय चेतना का आरोप करते हुए उसे हंसते–रोते हुए भी दिखाया है –

अचिरज देख जगत की आप, शून्य भरता समीर निश्वास।

डालता पातों पर चुपचाप

ओस की आँसू नीलाकाश ।। – पन्त

छायावादी कवियों ने प्रकृति वर्णन में नारी सौन्दर्य एवं प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं। प्रकृति वर्णन में नारी सोन्दर्य और प्रेम भावना की व्यंजना करते हुए प्रसाद कहते है –

पगली हो संभाल ले कैसे छूट पड़ा तेरा अँचल।

देख बिखरती है मणिराजी अरी उठा। बेसूध चंचल।

3. नारी संवेदना की गम्भीर मार्मिक अभिव्यक्ति :

छायावादी कविता में नारी के प्रति पवित्र और पूज्य भावना का संचार देखने को मिलता है। नारी संवेदन की यह दात्त भावना प्रियप्रवास, यशोधरा, साकेत से होती हुई राम की शक्तिपूजा, तुलसीदास,सरोज स्मृति जैसी

रचनाओं में व्यक्त महादेवी वर्मा की अनेक कविताओं तक व्याप्त है। छायावादी कविता में नारी के प्रति संवेदना का भाव बहुत मार्मिक और उत्कृष्ट है। रीतिकालीन कवियों ने नारी को विलास की वस्तु और उपभोग की समाग्री माना जबकि छायावादी कवियो ने उसे प्रेरणा का पावन उत्स मानते हुए उसे गरिमा प्रदान की। वह दया, क्षमा, करूणा, प्रेम की देवी है और अपने इन गुणों के कारण श्रध्दा की पात्र है –

नारी तुम केवल श्रध्दा हो, नारी तुम केवल श्रद्धा हो।

विश्वास रजत नग पगतल में।

पियुष स्त्रोत सी बहा करो,

पीयूष स्त्रोत–सी बहा करों, जीवन के सुंदर समतल में। – प्रसाद

निराला ने भी नारो को पुरूष के हृदय में आशा का संचार वाली शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। राम की शक्ति पूजा में राम के निराश हृदय में सीता की स्मृति मात्र से आशा का संचार होते दिखाया गया है –

ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विधुत।

जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत ।। – निराला

4. रहस्य भावना :

रहस्य भावना छायावादी कविता की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। इसी कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद का अर्थ रहस्यवाद माना। रहस्यवाद की प्रवृत्ति प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी के काव्य में दिखाई देता है। छायावादी कवि को अज्ञात सत्ता के प्रति एक विशेष आकर्षण रहा है। वह प्रकृति के प्रत्यक पदार्थ में इसी सत्ता के दर्शन कराता है। पंत की मौन निमंद्रण कविता में इसकी अभिव्यक्ति प्रस्तुत होती है –

न जाने कौन अए द्युतिमान, जान मुझको अबोध अज्ञान।

सुझाते हो तुम पथ अनजान, फूंक देते छिद्रों में गान ।। – पंत

5. प्रेम और सौन्दर्य चित्रण :

छायावादी कवि मूलत: प्रेम एवं सोन्दर्य के कवि हैं। किन्तु उनकी सौन्दर्य भावना सूक्ष्म एवं उदात्त है। छायावादियों को सौन्दर्यानुभूति में नारी – सौन्दर्य और प्रकृति सौन्दर्य के सूक्ष्म, व्यंजक और मार्मिक चित्र देखने को मिलते है। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी के सभी कविताओं में सूक्ष्म सौन्दर्यभाव मिलता है। इन कवियों ने नारी सौन्दर्य के विभिन्न रंगों का अवरण पहनाकर अभिव्यक्त किया है। सौन्दर्य वर्णन में इन कवियों की वृत्ति बाह्य वर्णनों में उतनी नहीं रमी,जितनी आंतरिक सौन्दर्य के उद्घाटन में भाव एवं दशाओं के वर्णन में रमी। नारी के शारीरिक अंगों की कान्ति का वर्णन भी उससे बड़े आकर्षक ढंग से हुआ है। कामायनी में प्रसाद जी ने श्रध्दा के सौन्दर्य का वर्णन निम्न प्रकार किया है –

नीर परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।

खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।। – प्रसाद

नारीसौन्दर्य के चित्रण में छायावादी कवि नवीन एवं मौलिक दृष्टि का परिचय देते हैं, जहाँ नई प्रतीकों एवं उपमानों के माध्यम से नारीसौन्दर्य के विस्मयकारी चित्र मनोहारी ढंग से प्रस्तुत किया है।

6. राष्ट्र प्रेम की अभिव्यक्ति :

राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति और देशप्रेम के उदात्त भावों से ओतप्रोत कविताओं का सर्जन आधुनिक हिंदी कविता की एक उल्लेखनीय विशेषता है। छायावादी कविताओं में राष्ट्रीय प्रेम प्रमुखतत्व के रूप में उभरकर आया है। राष्ट्र प्रेम की दृष्टि से छायावाद बहुत समृध्द है। राष्ट्रीयता से ओतप्रोत रचनाओं की सृष्टि सभी छायावादी कवियों ने की हैं। जयशंकर प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी कविताओं में राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना प्रमुखता से अभिव्यक्त हुई है। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में जो गीत की योजना की है, उसमें राष्ट्रीय भावना की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने भारत के अतीत गौरव के चित्र अंकित करते हुए देश की महिमा का बखान किया है –

अरूण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।। – प्रसाद

माखनलाल चतुर्वेदी के गीतों में राष्ट्रभक्ति अपने चरम उत्कर्ष पर है। पुष्प की अभिलाषा में उन्होंने एक पुष्प की इच्छा व्यक्त की है कि उस शहिदों के चरणों तले आने का सौभाग्य मिले। वे लिखते है –

मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमिं पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ पर जावें वीर अनेक ।। – माखनलाल चतुर्वेदी

छायावादी कविता की इस राष्ट्रीय चेतना को देखकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कवि अपने युग से नितांत असंपृक्त नहीं थे।

7. दुःख और वेदना की विवृत्ती :

छायावादी कविता में वेदना की अभिव्यक्ति करूणा और निराशा के रूप में दिखाई देती है। हर्ष–शोक,हास–रूदन, जन्म–मरण, विरह–मिलन आदि से उत्पन्न विषमताओं से घिरे मानव–जीवन को देखकर छायावादी कवि हृदय में वेदना एवं करुणा उमड़ पड़ती है। छायावादी कविता जिस दौर का प्रतिनिधित्व करती है, उस परिवेश में सर्जित काव्य में नैराश्य की अभिव्यक्ति स्वाभाविक मानी जाती है।छायावादी कवियों ने निराशा से उपजे अवसाद के कारण अपने काव्यसर्जन में वेदना की गहण अनुभूतियों को सहज रूप में व्यक्त किया है। प्रसाद की कामायनी का आरंभ निराशा और चिन्ता से होता है वहीं प्रसाद के आँसू में वेदना का अविस्मरणीय चित्रण है। महादेवी की अनेक कविताओं में व्यक्त निराशा और वेदना उन्हें वेदना की कवयित्री के रूप में प्रस्तुत करती है। निराला की भी अकेली जैसी कविता में निराशाभरी भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। महादेवी अपने वेदना विह्व हृदल की तुला मेघखण्ड से करती हुई कहती है –

मैं नीर भरी दु:ख की बदली

विस्तृत नभ का कोई कोना

मेरा न कभी अपना होना

परिचय इतना इतिहास यही

उमड़ी कल थी मिट आज चली ।। – महादेवी वर्मा

8. मानवतावादी दृष्टिकोण :

छायावादी कवि विश्वमानव के कल्याण की कामना करते हैं। विशद मानवीय दृष्टि छायावादी कविता की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। सम्भव है कि इस क्रम में उन्होंने रविन्द्र, अरविन्द, टैगोर, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद और महात्मा गांधी के मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया हो। प्रसाद के विजयिनी मानवता हो जाए से लेकर निराला की बादलराग, भिक्षुक, तोड़ती पत्थर, विधवा और पन्त के मानव तुम सबसे सुन्दरतम आदि कविताओं में छायावादी कवियों की मावतावादी भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। प्रसाद के काव्य में मनुष्य को क्षुद्रता उपर उठकर आनंद व समरसता के परिवेश में लाने का प्रयास किया है। कवि अपनी नीजी वेदना को व्यापक रूप प्रदान कर दु:खी मानवता को गले लगाने की बात करते हुए कहता है।

दु:खी पर करूणा क्षण भर हो

प्रार्थना पहरों के बदले

मुझे विश्वास है कि वह सत्य

करेगा आकर तब सम्मान।। – जयशंकर प्रसाद

इन कविताओं के माध्यम से विश्वकल्याण, व्यक्तिस्वातंत्र्य, नारी के प्रति संवेदना, सामाजिक उपेक्षा के शिकार आमजन के कल्याण की कामना आदि विविध विषयों में कवियों का विशद मानवीय दृष्टिकोण परिलक्षित होता है।

9. नवीन छन्दों का प्रयोग :

छायावादी कविताओं में नूतन छन्द के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। छायावाद प्रमुख स्तंभ निराला ने वन गति, नव लय, ताल, छन्द, नव/नवल कण्ठ नव,जलद मन्द्र रव की भावना से, खुल गये छन्द के बन्ध के उध्दोषके साथ छन्दों के अनावश्यक बन्धनों को अस्वीकार किया। निराला मुक्तछन्द के प्रर्वतक माने जाते हैं। छायावाद के परवर्ती काल में भी मुक्तछन्द नवीन भावाभिव्यक्ति के लिए सशक्त माध्यम की तरह स्वीकृत हुआ। मुक्तछन्द का पथ प्रशस्त करनेवाली निराला की कविता जुही की कली कइस दिशा में प्रथम अभिधान स्वीकार किया जाता है। छायावाद के अन्य प्रमुख कवियों पन्त महादेवी वर्मा भी नवीन छन्द प्रयोग के आग्रही रहें हैं। छन्द प्रयोग से काव्यकलेवर की कोमलतम प्रस्तुति छायावादी काव्य की मौलिक विशेषता है।

10. शैलीगत प्रवृतियाँ :

छायावादी कविताओं में काव्य की विषय-वस्तु एवं शिल्प नवीनता से ओत-प्रोत है। इन कविताओं में लाक्षणिक भाषा का प्रयोग, प्रतीकात्मक शैली, उपचारवक्रता एवं नवीन अंलकार विधान के कारण इस काव्यधारा में शिल्प की नवीनता दिखाई देती है। पन्त की निम्न पंक्तियों में प्रतिकात्मकता एवं लाक्षणिकता को देखा जा सकता है -

अभी तो मुकुट बंधा था माथ
हुए कल ही हल्दी के हाथ ।
खुले भी न थे लाज के बोल
खिले भी चुम्बन शून्य कपोल।।
हाय रूक गया यही संसार
बना सिन्दूर अंगार ।। – पन्त

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि छायावाद हिन्दी काव्य की गौरवपूर्ण अध्याय है। प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी इस युग के ऐसे हस्ताक्षर हैं जिनके योगदान से ही हिन्दी साहित्य को समृद्धि प्रप्त हुई है।

4.3.2 प्रगतिवाद :

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का आरंभ सन् 1936 से माना जाता है। सन् 1936 तक की कविताओं को प्रगतिवादी काव्यधारा कहा जाता है। प्रगतिवादी काव्यधारा का मूल आधार मार्क्सवाद है। प्रगतिवाद रचना एवं आलोचना के क्षेत्र में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण लेकर आया। प्रगतिवाद केवल सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही स्वीकारता है। प्रगतिवाद साहित्य के सोद्श्य को स्वीकारता है। प्रगतिवाद का मुख्य उद्देश्य कुरूप, शोषक, सड़ी गली, विसंगतिग्रस्त शक्तियों से पर्दा हटाना एवं नई सामाजिक शक्तियों से संघर्षों, युयुत्सा तथा आस्था को सबल बनाना है। प्रगतिवादी कविता सामाजिक जीवन की वास्तविकता को लकर चलता है इसलिए उसे जनता तक पहुंचना तथा जनता के जीवन की बात कहना उसका लक्ष बन गया था। यही कारण है कि उसने छायावाद की वायवी, असमान्य, रेशमी परिधान शालिनी सूक्ष्म भाषा का परित्याग कर सुस्पष्ट, सामान्य, प्रचलित भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्य बनाया। उसने प्रतिकों, शब्दो, मुहावरों तथा चित्रों का चयन जन-जीन से लिया है। इसलिए उनकी भाषा में सादगी होते हुए भी जीवंतता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो प्रगतिवादी कवि छायावादी रंगीन कुहासे को तोड़कर विषम यथार्थ के धरातल पर आ गया। सन् 1935 के आसपास ई. में डॉ. मुल्कराज आनंद एवं सज्जाद जहीर ने भारतीय प्रगतिशील लेख संघ की स्थापना की। सन् 1936 ई. में प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील साहित्य का प्रचार-प्रसार करने के लिए लखनऊ में पहला अधिवेशन संपन्न हुआ। इस अधिवेशन के बाद समग्र भारतीय भाषाओं के अनेक लेखक इस में सक्रिय हुए। हिन्दी के प्रमुख के रूप में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, डॉ. रांगेय राघव और त्रिलोचन शास्त्री आदि थे।

प्रगतिवाद का अर्थ :

प्रगति का अर्थ आगे बढ़ना या विकासोन्मुखता की ओर बढ़ना व्यवस्था के साथ समाज मनुष्य में परिवर्तन लाना जीवन को गतिशील बनाना एवं स्वस्थ एवं सुन्दर बनाना है। राजनीतिक पार्टी में जो लक्ष कम्यूनिष्ट पार्टी का रहा वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद का रहा। लंबे अरसे से साहित्य में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिए साहित्य लिखा जा रहा था। अब सामान्य मनुष्य की प्रतिष्ठा, उसके जीवन की जरूरी समस्या, उसके चकनाचूर होनेवाले सपने, भावनाएं, संवेदनाएँ, हर्ष, सुख, दु:ख की पीड़ाएँ, सर्वहारा के लिए प्रगत शस्त्र के रूप में उनके हाथ में आयीं। साहित्य अब मनोरंजन के बार निकलकर सामाजिक हितार्थ को अभिव्यक्त किया जाने लगा। विव्दनों यह माना कि राजनीति के क्षेत्र में जो साम्यवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद है।

प्रगतिवाद ने देश, समाज, व्यक्ति में बौध्दिक, आद्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, भाग्यवादी, ईश्वरीय क्षमता से मुक्त होने की प्रेरणा दी । कल्पना की जगह यथार्थ, रहस्य की जगह लोकीकता, वैयक्तिकता की जगह सामाजिकता, प्रकृति की जगह मनुष्य को लाने का सारा श्रेय प्रगतिवाद को ही जाता है।

प्रगतिवाद की परिभाषा :

हिन्दी के कवि, समीक्षकों और विचारको प्रगतिवाद की अलग-अलग परिभाषाएँ दी है। किन्तु सभी परिभाषाओं में मार्क्सीय दर्शन की ही साहित्यिक अभिव्यंजना को प्रगतिवाद कहा गया है।

1. लक्ष्मीकांत वर्मा :

प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चल गया वह साहित्यिक आंदोलन है जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तु-सत्य को उत्तर छायावाद काल में प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी।

2. शिवदान सिंह चौहान :

प्रगतिवाद साहित्य की धारा नहीं, साहित्य का मार्क्सवादीय दृष्टिकोण है, जैसे रस सिध्दान्त साहित्य की दारा नहीं, साहित्य का प्राचीन आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। अत: प्रगतिवाद को सौन्दर्यशास्त्र संबंधी मार्क्सीय दृष्टिकोण और लक्षों की संपूर्ति के लिए लिखा गया प्रचारात्मक साहित्य है।

3. डॉ. नगेन्द्र :

प्रगतिवाद साम्यवाद का पोषक है और पूँजीवाद का शत्रू है, बल्कि यो कहना चाहिए कि प्रगतिवाद साम्यवाद की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है।

प्रगतिवाद के प्रमुख कवि :

छायावादी यों को छोड़कर स्वतंत्र प्रगतिवादी आंदोलन से उपजे कवियों ने जनवादी विचारधार को जनमानस में बिठा दिया। इन कवियों में महत्तवूर्ण है केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रांगेय़ राघव, डॉ. रामविलास शर्मा, भवानीप्रसाद मिश्र, शिवमंगल सिंह सुमन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, त्रिलोचन, अमृतराय आदि। केदारनाथ

अग्रवाल, नागार्जुन तथा त्रिलोचन की विशिष्टता प्रगतिशील साहित्य में रही। परवर्ती कवियों मे मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह जैसे उत्कृष्ठ कवियों की विचारधारा इसी दर्शन से बनी-बुनी है। संक्षेप में प्रगतिवादी काव्यधारा ने हिंदी कविता को समृध्द, विस्तृत और युगचिंताओं से व्याप्त किया।

प्रगतिवाद की प्रवृत्तियाँ :

उर्पयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है की प्रगतिवाद ने समाजवादी व्यवस्था का लक्ष रचनाकार के सामने रखा। कल्पना एवं सौन्दर्य के स्वप्नजीवी कवियों ने उसका विरोध कर प्रगतिवाद को अपनाया। कविता में कल्पना के जगह यथार्थ,सामाजिकता को अपनी कविता को केन्द्रबिंदु बनाया। प्रगतिवादी काव्यधारा ने शोषक एवं शोषित वर्ग की बाँटा और उपपर विचार-विनिमय किया। प्रगतिवादी कविता में दलित, मजदूर,शोषित के प्रति विशेष भाव व्यक्त किया गया है। प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएं निम्नप्रकार हैं -

1. शोषितों की दीनता का चित्रण :

प्रगतिवादी कवियों ने शोषक वर्ग को घोर स्वार्थी, निर्दयी एवं कपटी रूप में चित्रित किया है। इस काव्यधारा का मूल केन्द्र शोषण की चक्की में पिसनेवाला किसान, मजदूर, पीड़ित की दशा का प्रगतिवादी कवि ने सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया है। इनका मानना है कि पूँजीपति निर्धनों का रक्त चूसकर चैन की नींद सोते हैं। वह बड़े व्यापारी, उद्योगपति तथा जमीनदार जैसे शोषकों के चिथड़े-चिथड़े होते हुए देखना चाहते हैं। इसी शोषक वर्ग चित्रण दिनकर ने किया है -

श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र,
भूखे बालक आकुलातें है।
मां की छाती से ठीठुर,जाड़ो की रात बिताते हैं । - दिनकर

2. धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था :

प्रगतिवादी कविता में धर्म, रूढी, परंपरा और ईश्वर का विरोध का चित्रण हुआ है। वे धर्म और ईश्वर में विश्वास नहीं करते बल्कि इन्हें शोषण का हथियार मानते हैं। दिनकर जी ने कुरूक्षेत्र में लिखा है -

भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का।
जिससे रचता दबा एक जन भाग दूसरे जन का ।। - दिनकर

रूढ़ी, प्रथा, परंपरा की बेडियों से मनुष्य मनुष्ता को मुक्त करने की चाह प्रगतिवादी कवियों में रही है। प्रगति का अर्थ भी यही है।

3. शोषितों का करूण गान :

प्रगतिवादी कविता में शोषण एवं अन्याय की चक्की में पीसते हुए मजदूर एवं किसान वर्गों के प्रति करूणा का भाव देखने को मिलता है। समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए जनता में उसके प्रति सहानुभूति निर्माण करने के लिये सका करूण गाण कविता में आया है। किसान, मजदूर अर्थात शोषितों में एकता होगी तभी वह शोषण मुक्त पायेंगे। मुक्तिबोध ने लिखा है -

कभी अकले में मुक्ति नहीं मिलती,
यदि वह है तो सबके ही साथ है। – मुक्तिबोध

कारखानों ने काम करनेवाले श्रमिक किस तरह से मालिक की सुख-सुविधा से दूर रहते है, इसका चित्रण दरिद्री नारायण किसान मजदूर का चित्र कविता में व्यक्त किया है-

ओ मजदूर, ओ मजदूर
तु सब चीजों का कर्ता, तू ही सब चीजों से दूर
ओ मजदूर, ओ मजदूर।

शोषितों की पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति इस काल कविता की खास प्रवृत्ति है।

4. शोषक वर्ग के प्रति घृणा :

प्रगतिवादी कविताओं के आक्रोश का केन्दबिन्दु पूँजीपति वर्ग से है। मार्क्स के अनुसार पूँजीपतियों द्वारा स्थापित उद्योगों में उत्पादन का कार्य मजदूर करते हैं किन्तु उससे पैदा होने वाले धन पर पूँजीपति हड़ कर जाते हैं। इन कवियों का मानना है कि ये लोग स्वार्थ के लिए पूँजीवादी व्यवस्था बनाए रखना चाहते है और जब तक पूँजीवादी व्यव्यस्ता बनी रहेगी तब तक शोषण एवं अन्याय का खात्मा होना असंभव है। प्रगतिवादी कवि इस व्यवस्था को उखाड़ फेंकना चाहते हैं। इसलिए वह कहता है -

हो यह समाज चिथड़े-चिथड़े,
शोषण पर जिसकी नींव पड़ी।

5. क्रांति की भावना :

प्रगतिवादी कवियों ने क्रांति की भावना चित्रण शोषकों में स्फूर्ति भरने, अपनी स्थिति से अवगत होने, अपनी शक्ति का परिचय पाने और अपने अस्तित्व को जानने के लिए किया है। यह क्रांति सामाजिक एवं राष्ट्रीय दोनों रूप में अभिव्यक्त करती है। प्रगतिवादी कवि प्राचीन परम्परा, वर्ण-सभ्यता, व्यवस्था का समूल विनाश क्रांति के व्दारा ही संभव माना है। जीर्ण पुरातन के नष्ट होने और नये नुतन का पल्लिवतहोने के लिए कवि पंन्त का स्वर मुखर हो उठता है -

नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंश-भ्रंश जग के जड़ बन्धन।
पावक गज घरआवे नुतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन ।। – पन्त

6. मार्क्सवाद में विश्वास :

प्रगतिवादी कविता का केन्द्रबिंदु मार्क्सवाद होने के कारण इन कविताओं में उस विचाराधारा के प्रति विश्वास होना स्वाभाविक है। प्रगतिवादी कवि साम्यवादी के आदर्श में पूरा विश्वास रखते हैं। मार्क्स के साथ-

साथ ये कवि रूस का गुणगान किया है। पंत जी कार्ल मार्क्स के प्रति कुछ इस प्रकार से भाव प्रदर्शित करते हैं –

धन्य मार्क्स चिर तमाच्छन्न पृथ्वी के उदर शिखर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर ।। – पन्त

उपर्युक्त पंक्तियों में पन्त जी ने मार्क्स को प्रलयंकारी शिव का तीसरा नेत्र बताया है। नरेन्द्र शर्मा रूस का गुणगान करते हुए कहते हैं –

लाल रूस है ढाल साथियों,
सब मजदूर किसानों की। – नरेन्द्र शर्मा

7. नारी चित्रण :

प्रगतिवादी कवियों ने नारी का यथार्थ चित्रण किया है। प्रगतिवाद नारी स्वततंत्र का पक्षधर है। उसने नारी को पुरूष के समकालीन उसकी सहयोगिनी के रूप में स्वीकार किया है। नारी को लिंग भेद के आधार पर इसे कम आँकना मान्य नहीं है। नारी युग–युग से सामंतवाद की धारा में पुरूष की दासता की श्रृंखलाओं में बन्दिनी के रूप में पड़ी है और वह केवल वासना तप्ति का उपकरण है। पन्त लिखते हैं –

योनी नहीं हे रे नारी वह भी मानवी प्रतिष्ठित।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित ।। पन्त

8. वेदना का चित्रण :

प्रगतिवाद की वेदना संघर्षों से जूझने सामाजिक वेदना है। निराशा के लिए उसे कहीं स्थान नहीं है। प्रगतिवादी कवि वेदना के संसार को ही स्वर्ग बनाना चाहते हैं, जिसमें वर्ग भेद, शोषण और रूढ़ियों का नामोंनिशान न हो। कवि निराला बंगाल के अकाल पर लिखते है –

बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर, धर्म दीरज प्राण खोकर हो रही अनरीति बर्बर
राष्ट्र सारा देखता है। – निराला

9. मानवतावादी दृष्टिकोण :

प्रगतिवादी कवियों ने मानव की शक्तियों पर असीम आस्ता रखता है। उनका मानना है कि मावन ही अपने भाग्य का विधाता है न कि ईश्वर। ईश्वर के नाम पर हो रहे शोषण से कुपित होकर वह कहता है –

जिसे तुम कहते हो भगवान
जो बरसाता है जीवन में
रोग, शोक, दु:ख दैन्य अपार
उसे सुनाने चले पुकार ।।

10. शैलीगत विशेषताएं :

प्रगतिवादी कवियों की भाषा सरल है। वे कला से ज्यादा विषय को अधिक महत्त्व देते हैं। उनकी शैली अलंकारविहीन है और उन्होंने मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। वे सामान्य जनमानस को समझने वाली भाषा को अपनाया है। इनकी भाषा में व्यंग्यात्मकता में दिखाई देती है। इन कवियों की भाषा में कहीं बनावट नहीं है। वह आम आदमी की भाषा है। पन्त जी लिखते है –

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार – पन्त

प्रगतिवादी कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से साम्यवाद का प्रचार किया। व्यक्तिवाद के स्थान पर जनवाद की स्थापना की, जनता को सुख- दु:ख की वाणी दी तथा शोषितों-पीड़ीतों की उन्नति के लिए जोरदार समर्थन किया।

4.3.2 समकालीन कविता :

हिंदी कविता में साठ के दशक के बाद लिखी गई कविताएँ समकालीन कविता की श्रेणी में आती है। इसके पूर्व के कालखंड में लिखी गई कविताएँ एक विशेष प्रवृत्ति को लेकर लिखी गई लेकिन समकालीन कविता में वर्तमान जीवन और उसकी जद्दोजहद को प्रमुखता से रेखांकित किया है। समकालीन से तात्पर्य है, अपने समय की कविता। छठा दशक और उसके बाद की कविता के संदर्भ में समकालीन कविता शब्द प्रयोग होने लगा। कई आलोचक इसे साठोत्तरी कविता कहना उपयुक्त समझते हैं। लेकिन इस काल में लिखी कविता समकालीन ही हो ऐसा आवश्यक नहीं था लेकिन वर्तमान युग-बोध के साथ भूत और भविष्य का समुचित समन्वय इन कविताओं में था। वर्तमान बोध के साथ आधुनिकता भी समकालीन कविता का विशेष अंग था। आधुनिकता और उससे बदलते जीवनमूल्यों से प्रभावित समाज जीवन समकालीन कविता की मुख्य धारा माना जाता है। आम आदमी की संवेदना को साकार करना इसका प्रधान उद्देश्य था। इसलिए समकालीन कविता सार्वकालिक है।

- **समकालीन कविता से तात्पर्य :**

समकालीन कविता, आधुनिक कविता के विकास में नयी चेतना, नयी भाव-भूमि, नयी संवेदना तथा नये शिल्प के बदलाव की सूचक काव्यधारा है। समकालीनता बोध युग-बोध की पहचान का महत्त्वपूर्ण आधार है। समकालीन कविता में सामाजिक यथार्थ, सपाटबयानी के साथ राजनीति एवं व्यंग्य इसके महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। समकालीन कविता को साठोत्तरी कविता, अकविता के नाम से भी पहचाना जाता है।

- **समकालीन कविता की पृष्ठभूमि :**

हिंदी कविता जगत में सन 1959 में तिसरा सप्तक प्रकाशन हो चुका था। सन 1960 के बाद हिंदी कविता में नए बदलाव आने लगे। इस नई कविता को क्या नाम दिया जाए, इसे लेकर काफी वाद-विवाद होने लगे। छठे दशक के बाद की कविता व्यक्तिवाद और आधुनिकतावाद के साथ ही अधिक तीव्रता से विकसित हुई

लेकिन इसके तेवर अलग थे। साठोत्तरी काल की कविता को लेकर कई आंदोलन चलाए गए जिसमें अकविता, विद्रोही कविता, बीट कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, युयुत्सावादी कविता, नूतन कविता, सहज कविता, विचार कविता आदि नामों से कविता के नए तेवर और भाव-भंगिमा दिखाई देने लगी। लेकिन ये सभी आंदोलन क्षणजीवी साबित हुए और सातवे दशक से इन कविताओं को साठोत्तरी या समकालीन कविता कहा जाने लगा। सन 1967-68 के बाद भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में काफी परिवर्तन दिखाई देने लगे। राजनीतिक भ्रष्टाचार और सामाजिक मोहभंग की स्थितियों ने कवियों का काफी प्रभावित किया। कवि परंपरागत राहों को छोड़कर पूर्ण रूप से नया मार्ग खोजने लगे। समकालीन कविता का क्षेत्र व्यापक था। सामाजिक एवं राजनीतिक मोहभंग की स्थितियों ने कवियों को समाज के प्रति अधिक सजग बनाया। उनमें व्यवस्था के विरूद्ध सबकुछ कहने का साहस निर्माण हुआ। व्यवस्था का शिकार हुए आम आदमी की संवेदना को साकार करने की पूरी क्षमता इन कवियों में है। समकालीन कविता की यह धारा साठोत्तरी कविता, प्रगतिशील-जनवादी कविता और नवगीत परंपरा के परिप्रेक्ष्य में समझना जरूरी है।

● **समकालीन कविता के प्रमुख कवि :**

साठोत्तरी हिंदी काव्य-धारा में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले कवियों में जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार और गंगाप्रसाद विमल का नाम विशेष प्रसिद्ध है। इन कवियों ने ही प्राय: अकविता आंदोलन की शुरुआत की थी। इनके अतिरिक्त कवि श्रीकांत वर्मा, सौमित्र मोहन, लीलाधर जगूड़ी, मुद्राराक्षस, राजकमल चौधरी का नाम प्रमुख हैं।

1. जगदीश चतुर्वेदी :

कवि जगदीश चतुर्वेदी को समकालीन कविता के प्रवर्तक माना जाता है। उनकी कविताओं में निषेधात्मक प्रवृत्ति का आग्रह दिखाई देता है। उनके प्रारंभ (1963), विजप (1967), इतिहासहंता (1970), निषेध (1972) और डूबते इतिहास की गवाह (1980) में संकलित अधिकांश कविताएं अकविता की निषेधवादी भावना का स्वर प्रधान है। उनकी कविताओं में यौन-बिंबों का प्रयोग अधिक हुआ है जो पराजित व्यक्ति की मनोदशा को प्रकट करता है।

2. राजकमल चौधरी :

राजकमल चौधरी की कविता में मृत्यु और स्वतंत्रता बुनियादी तत्व हैं। यौन प्रतिक एवं बिंब उनकी कविता में अतिरंजना की सीमा तक पहुँच जाते हैं। उनकी कविता में व्यक्त मृत्यु पराजय का प्रतीक है लेकिन स्वाधीनता की भावना राजकमल को अकविता के दायरे से बाहर लाती है। कंकावती उनकी विवादास्पद कविता है। लेकिन मुक्ति प्रसंग उनकी सर्जनात्मक ऊर्जा का उत्कर्ष है।

3. धूमिल (1936-1975) :

सातवें दशक के युवा वर्ग के आक्रोश का प्रतिनिधि कवि के रूप में धूमिल को पहचाना जाता है। इनका वास्तविक नाम सुदाम पांडे था लेकिन अल्पायु में ही इनका देहांत हुआ। राजनीतिक और सामाजिक मोहभंग

की स्थितियों से आहत हुए युवाओं के आक्रोश को उन्होंने बखूबी रेखांकित किया है। उनकी कविता में समाज में व्याप्त मूल्यहीनता, ढोंग, पाखंड और अमानवीय स्वार्थपरता का पर्दापाश किया गया है। उनकी लंबी कविता इस दृष्टि से बेहद कारगर है। संसद से सड़क तक (1972) और कल सुनना मुझे उनके बेहद लोकप्रिय कविता संग्रह है।

4. सौमित्र मोहन (1938) :

समकालीन कविता की धारा के एक प्रमुख कवि के रूप में सौमित्र मोहन को पहचाना जाता है। सातवें दशक की कविता में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रयोग कर उन्होंने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया। उनकी लुकमान अली नामक लंबी कविता बहुचर्चित रही। इसमें घृणा, वितृष्णा, रतिक्रीड़ा और आध्यात्मिक अभिसंधियों के विरूद्ध आक्रामक काव्यानुभव दिखाई देते हैं। चाकू से खेलते हुए (1972), लुकमान अली तथा अन्य कविताएं (1978), निषेध (1972) उनके बहुचर्चित काव्य-संग्रह रह चुके हैं।

5. लीलाधर जगूड़ी :

लीलाधर जगूड़ी अकविता से जनवादी कविता की ओर बढने वाले प्रमुख कवि है। जनवादी बोध से उनकी कविता प्रभावित होने के बावजूद उनपर अकविता का प्रभाव रहा है। उनकी कविता की भावभूमि भले ही समकालीन कवियों के समान हो लेकिन उसमें संवेदना का प्रभाव क्षीण है। नाटक जारी है, इस यात्रा में, रात अब भी मौजूद है, बची हुई पृथ्वी और घबराए हुए शब्द आदि उनके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं। बलदेव खटिक उनकी उल्लेखनीय लंबी कविता है।

इन कवियों के साथ समकालीन कविता में शंभुनाथ सिंह, वीरेंद्र मिश्र, रवींद्र भम्रर, ओम प्रभाकर, ठाकुर प्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, उमाकांत मालवीय, अशोक वाजपेयी, कुमार विकल, मंगलेश डबराल, असद जैदी, इब्बार रब्बी आदि के नाम प्रमुख हैं। जनवादी गीतकारों में शंभुनाथ सिंह और रमेश रंजक का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

● समकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

समकालीन कविता का क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह अपने समय के मुख्य अंतरविरोधों और द्वंद्व की कविता है। इस कविता को पढकर वर्तमान काल का बोध हो सकता है क्योंकि उसमें जीवन के लिए निरंतर संघर्षरत आम आदमी का चित्रण है। संवेदना और वास्तविकता से समकालीन कविता का नजदीकी संबंध है। अत: इसकी व्यापकता को समझने के लिए उसकी विशेषताओं को समझना जरूरी है। वह इसप्रकार है-

1. यथार्थ जीवन का चित्रण :

समकालीन कवि कल्पना की भूल-भूलैय्या में नहीं उलझता। उसे कोरी कल्पना पर विश्वास नहीं है। वह जीवन की सच्चाई और वास्तविकता को अपनी कविता के माध्यम से साकार करना चाहता है। वह दखियानुसी पारंपारिक आदर्शों को नकारते हुए जीवन की सच्चाई से सबको रूबरू करना चाहता है। समकालीन कविता में वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था का यथार्थवादी चित्रण हुआ है। देश की आजादी के

बाद यहाँ की आम जनता ने सुराज्य का सपना देखा था। लेकिन जनता का मोहभंग हुआ। आम आदमी रोटी, कपड़ा और मकान इन बुनियादी जरूरतों के लिए आम आदमी तरसता दिखाई देता है। एक ओर रहने के लिए झोपड़ी तक का इंतजाम नहीं तो दूसरी ओर सामंतवादी अपने बड़े-बड़े महलों में राज ऐश्वर्य भोग रहे हैं। इस विषम स्थितियों को बेबाक सच्चाई के साथ समकालीन कवियों ने साकार किया है। इसलिए यथार्थ जीवन का चित्रण समकालीन कविता की विशेष प्रवृत्ति रही है। इस संदर्भ में कवि धूमिल की पटकथा कविता की यह पँक्तियाँ दृष्टव्य है- ''**मेरे सामने वही चिर परिस्थितीत अंधकार है,/संशय की अनिश्चयग्रस्त ठंडी मुद्राएँ है।/ हर तरफ शब्दभेदी सन्नाटा है।/घृणा में डूबा हुआ सारा देश।/पहले की तरह आज भी मेरा कारागार है। (धूमिल- पटकथा)**

इस तरह भोगा हुआ यथार्थ कवि की कविता में साकार हुआ है। केदारनाथ सिंह, प्रयाग शुक्ल, राजकमल चौधरी, धूमिल की कविताएं सीधे साक्षात्मकार की कविताएं है। उन्होने सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ बेखौफ प्रस्तुत किया है। उनकी कविताएं जीवन की कडवी सच्चाई से हमें रूबरू कराती है। धूमिल जैसे कवि ने तो देश की यथार्थ स्थिति को नाटकीय धरातल पर प्रस्तुत करने का साहस दिखाया है। उनका संसद से सड़क तक काव्य-संग्रह देश की पूँजीवादी व्यवस्था में शोषण का शिकार बनाए जा रहे राजनीतिक षड्यंत्र का कट्टा-चिट्ठा खोल देता है।

2. राजनीतिक व्यंग्य की कविता :

समकालीन कविता राजनीति से पूरी तरह प्रभावित रही है। क्योंकि वर्तमान समय में मनुष्य का जीवन राजनीति से पूरी तरह से प्रभावित हो चुका है। हमारे सामाजिक जीवन के गणित भी अब राजनीति पर बनते-बिगड़ते हैं। राजनीति अब आम-आदमी के जीवन का अभिन्न अंग बनी है तो भले कविता इससे अछूती कैसे रहती। समकालीन कविता में राजनीति और उससे प्रभावित समाज जीवन को गहराई के साथ साकार किया है। लेकिन राजनीति की तिकड़मबाजी को चुटले व्यंग्य का सहारा लेकर व्यक्त करने में कवियों ने कोई कसर बाकी नहीं छोड़ी है। धूमिल, लिलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले, श्रीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय आदि कवियों ने राजनीति के संदर्भ में कई बुनियादी सवाल बेबाकी से उठाए हैं। उन्होंने भारत के लोकतंत्र पर ही सवालिया निशाण लगाया है। लोकतंत्र है, तो यहाँ आम आदमी भूखा क्यों मर रहा है? का सवाल अंदर तक चीरता है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना लिखते हैं-''**लोकतंत्र को जूते की तरह,/लाठी में लटकाए,/आगे भागे जा रहे हैं,/ वे सभी सीना फुलाए। (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना-)**

सुदामा पांडे धूमिल ने तो राजनीतिक व्यवस्था पर समय-समय पर अपनी चुटीली भाषा में व्यंग्य कसे हैं। आजादी के बाद राजनीति के पतन पर उन्होंने बेबाकी से कविताएं लिखी है। वे कहते है- ''**दर असल अपने यहाँ जनतंत्र एक ऐसा तमाशा है जिसकी जान मदारी की भाषा है।**''

रघुवीर सहाय ने देश की राजनीतिक दलों एवं उनकी गुटबाजी राजनीति पर करारा व्यंग्य किया है। वे लिखते हैं- ''**पूछेगा संसद में भोला भाला मंत्री/मामला बताओ हम कारवाई करेंगे।/हाय-हाय करता हुआ,/ हाँ-हाँ करता हुआ, हे करता हुआ।/दल का दल पाप छिपा रखेने के लिए एक जुट हो जाएगा/जितना बड़ा दल**

होगा उतना ही खाएगा देश को। (रघुवीर सहाय) इस तरह समकालीन कविता में भारतीय राजनीति की अवसरवादिता, भ्रष्ट नेता, आम आदमी के शोषण के राजनीतिक हथकंडे, पूँजीवादी मानसिकता के पक्षधर राजनेता आदि का व्यंग्यात्मक चित्रण हुआ है जो प्रभावशाली बना है।

3. सामाजिक युग–बोध की कविता :

समकालीन कवियों की कविता सतही नहीं है बल्कि उन्होंने समाज और उसकी विसंगतियों को गहराई से अनुभूत किया था। इसलिए उनकी कविता में सामाजिक बोध संपूर्ण विसंगतियों और विडंबनाओं के साथ अभिव्यक्त हुआ है। समकालीन कविता के प्रसंग एवं संदर्भ पूर्ण रूप से समाजिक सरोकार से जुड़े हैं। समकालीन कविता की सार्थकता उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता पर देखी जा सकती है। कवि समाज के हर बदलते रूप एवं उनके मूल्यों को महसूस करता है और उन्हें उद्घाटित करता है। इसकारण समकालीन सामाजिक परिदृश्य इस कविता में चित्रित हुआ है। पंजाब में खलिस्तान की माँग पर उभरे दंगों का वर्णन करते हुए कवि लिखता है– **''सड़क पर गुंजती है एक तेज वाहन की आवाज,/छुट गया किसी के हाथ से गिलास,/बंद हो गए खटाखट सारे किवाड़। ()**

आतंकवाद से कश्मीर के विस्थापित जन–जीवन का वर्णन भी कवियों ने किया है। एक विस्थापित कवि की करूण दशा का वर्णन करते हुए वह लिखता है– **''विस्थापिता शिबिरों में सो रहे बच्चों की खुशियाँ,/अनिश्चय के गर्भ में है,/बच्चों के रंग विरंग कपड़े, पिछे छूट चुके हैं संदुकचियों में,/जो हमारे चुराये गये घरों में पड़ी है,/निर्जन कोने में बच्चों का संसार खोजना,/कुछ अदृश्य फैसलों का वास्तुशिल्प है।()** इस तरह समकालीन कविता समाज के प्रतिबद्ध कविता है। उसका समाज से परे आकलन नहीं हो सकता।

1. विचारधारा का विरोध :

समकालीन कविता में विचारधारा और राजनीति का विरोध दिखाई देता है। आजादी दिलाने के लिए जिन विचारधाराओं ने सहायता की बाद में राजनेताओं ने अपने स्वार्थ के लिए उन विचारधाराओं को तिलांजलि दी। इसलिए समकालीन कवि राजनीतिक विचारधारा पर विश्वास नहीं करते हैं। जगदीश चतुर्वेदी ने विचारधारा का निषेध किया और स्वविवेक पर बल दिया है। इन कवियों ने लोकतंत्र, देशप्रेम, क्रांति, परिवर्तन, प्यार आदि हर उस विचार और भावना का मजाक उड़ाया जो मनुष्य को मनुष्य होने का एहसास कराती है।

जैसे – ''कुछ लोग मूर्तियाँ बनाकर/फिर बेचेंगे क्रांति की (अथवा षड्यंत्र की)/कुछ और लोग/सारा समय कसमें खायेंगे/लोकतंत्र की।'' (श्रीकांत वर्मा, माया दर्पण)

'मुझे तानाशाही से लगाव है, जनतंत्र के रिरियाते गीदड से नहीं।' (जगदीश चतुर्वेदी– इतिहासहंता)

इस तरह समकालीन कवियों ने विचारधारा और राजनीति का हमेशा विरोध किया है।

1. भीड़ में भी अकेलेपन का दर्द :

समकालीन कवियों का महानगरों के जीवन से नजदीकी रिश्ता रहा है। अधिकांश कवि इन्हीं महानगरों के रोज–मर्रा के जीवन को जीते आए हैं। महानगर की भीड़ का वे भी हिस्सा रह चुके हैं। महानगरों के यंत्रवत

जीवन के वे अभ्यस्त बन चुके है अपितु अधिकांश कवियों का बचपन देहातों में बीता है। उस देहाती सुकून को वे महानगरों में तलाशने की कोशिश करते हैं लेकिन भीड़ में भी अकेल रह जाते हैं। महानगरों की बदलती अबोहवा के आतंक ने इन कवियों को अकेला बनाया है। वे इस विषैले माहौल से निजात जाते हैं। इसलिए वे महानगरीय भीड़ से खुद को काट लेते हैं। वे अपनी इर्द-गीर्द भीड़ का अनुभव करते हैं और भीड़ का कोई संवाद नहीं होता। इसलिए वे अकेलेपन के दर्द को अभिव्यक्त करते हैं- ''**कभी-कभी बहुत अजीब लगता है/ कि मैं-/किसी मसीहा की तरह/अपने हाथों में/दिशा-संकेत संभाले/भीड़ के साथ दौड़ता जाता हूँ/जबकि मैं जानता हूँ/ कि भीड़ की आँखें नहीं होती/केवल आवाज होती है। (कुमार विकल)** इसतरह समकालीन कविता में कवियों ने महानगरों के भीड़ से खुद को काट लिया है और अकेलपन के दर्द को साकार किया है।

6. नारी के प्रति हीन दृष्टिकोण :

समकालीन कविता में नारी के प्रति उदात्त भावना का पतन हुआ। उसे केवल शरीर के रूप में एक भोग वस्तु बनाकर पेश किया गया। नारी के पतनशील रूप को साकार करते हुए उसके प्रति न आदर की भावना थी न उसके प्रति संवेदना की। नारी को पुरुष की वासना पूर्ति का केंद्र बनाकर या फिर बच्चे पैदा करने वाली मादा के रूप में व्यक्त किया गया। यौन संबंधों के चित्रण में उसे साधन के रूप में पेश करने से उसके मादक रूप से कवियों ने सरोकार रखा। स्त्री के माँ, बेटी, बहन, पत्नी इन आदर्शों रूपों के बजाए उसके भोग्या के रूप में पेश किया गया। जिसमें उसकी वेदना का दूर-दूर तक संबंध न था। जैसे-

कुछ स्त्रियाँ प्रेम करती है/वर्दी से/बाकी नामर्दी से। (श्रीकांत वर्मा)

कवियों की झूठ में लिपटी हुई/वेश्या-माँ/अपनी संतानों का स्वर्ग देख रही हैं। (श्रीकांत वर्मा)

इस तरह समकालीन कविता में स्त्री को पुरुषप्रधान व्यवस्था की भोगवस्तु के रूप में दर्शाया है। तत्कालीन पूँजीवादी पुरुषी व्यवस्था में स्त्री की नारकीय दशा को कवियों ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

7. निषेधात्मकता :

समकालीन कविता की निषेधात्मकता एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। विभिन्न विचारधारा, राजनीति, मूल्य-व्यवस्था सभी का यह कविता निषेध करती है। सातवें दशक के कवि ने पतनशील राजनीति का निषेध किया उसी प्रकार समाज में बदलते मूल्यों, प्रेम, नैतिकता, भावुकता का भी निषेध किया है। बेईमानी, रिश्वतखोरी, गुंडागर्दी इन नए मूल्यों का सम्मान मिल रहा है। इसका कवि निषेध करता है। इस संदर्भ में जगदीश चतुर्वेदी लिखते हैं-

''मैं प्रेम जैसे अभिशप्त रोग को मुट्ठी में भरकर/आग में झोंक देना चाहता हूँ/ मैं आस-पास के घरों में एक हाहाकार मचाना चाहता हूँ/-एक अनिर्दिष्ट व्याघात/ मैं तमाम यात्राओं को दुर्घटना में बदलना चाहता हूँ।'' (जगदीश चतुर्वेदी, इतिहासहंता)

8. संघर्षशील पर रूमानियत से दूर :

समकालीन कविता सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के पतनशीलता को नजदीक से देखता है। समाज

की भयावह स्थितियों से वह पूरी तरह से परिचित है। इसलिए वह इन पतनशील व्यवस्था पर व्यंग्य से करारी चोट करता है। वह समाज की वास्तविकता को खुली आँखों से देखता है और उसे वास्तविकता के साथ स्पष्ट करता है। इसकारण उसका रूख हमेशा संघर्षशील रहा है। वह सड़ी–गली व्यवस्था की पोल खोलने के लिए हमेशा आतुर रहता है। वह खुद को कोरी कवि कल्पना और सौंदर्य बोध के जाल में खुद को उलझाता नहीं। बल्कि वास्तविकता से लोहा लेता है। मुक्तिबोध की अंधेरे में, विश्वनाथ तिवारी की आखिरी लड़ाई और धूमिल की पटकथा कविता में संघर्षशीलता और जुझारूवृत्ति के दर्शन होते हैं। **जैसे– ''मैं जीना चाहता हूँ/इस भयानक अंधेरे में भी जीना चाहता हूँ/जब एकही रास्ता शेष रह जाता है/तो उसपर चलना अनिवार्य हो जाता है। (मुक्तिबोध–अंधेरे में)**

समकालीन कवि कोरी भावुकता या कवि कल्पना से बुने सौंदर्य बोध से कोसो दूर रहा है। रूमानियत के बदले कवि को गरिबी, भ्रष्टाचार, विसंगति, छल आदि में दिलचस्पी है। समकालीन कवि रोमांटिक नहीं, या वह प्यार को समझता ही नहीं ऐसी बात नहीं पर वह रूमानी प्रवृत्ति से खुद को दूर रही रखता है। इसी वजह से धूमिल, रघुवीर सहाय, मुक्तिबोध की कविता में रूमानियत के दर्शन नहीं होते। उनका सौंदर्यबोध भी समाज–बोध से जुड़ा है। जैसे–मैं जिसे ओढता बिछाता हूँ। वो गजल तुम को सुनाता हूँ/एक जंगल है तेरी आँखों में जहाँ मैं राह भूल जाता हूँ/(दुष्यंतकुमार) इसतरह समकालीन कविता में संघर्षशीलता और एक जुझारूपन दिखता है। उनके सौंदर्यबोध में भी समाजबोध है जो उन्हें रूमानियत से दूर रखता है।

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

प्रश्न 1 निम्नलिखित वाक्यों में दिए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) हिंदी की रोमांटिक स्वछंदतावादी काव्यधारा की विकसित अवस्था को ..... नाम से जाना जाता है।

क) छायावाद ख) प्रगतिवाद ग) प्रयोगवाद घ) साठोत्तरी कविता

2) छायावाद यह नामकरणअकवि ने पहलीबार इस्तेमाल किया।

क) निराला ख) पंत ग) प्रसाद घ) मुकुटधर पांडेय

3) स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद है। यह ..... परिभाषा की है।

क) आ. शुक्ल ख) डॉ. नगेंद्र ग) रामकुमार वर्मा घ) निराला

4) ..... को आधुनिक काल की मीरा कहा जाता है।

क) महादेवी वर्मा ख) सुभद्राकुमारी चौहान ग) अनामिका घ) रजनी अवस्थी

5) हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का आरंभ ..... ई. से माना जाता है।

क) 1946 ख) 1936 ग) 1956 घ) 1966

6) प्रगतिवाद का मूलाधारे ..... यह विचारधारा है।

क) मार्क्सवाद ख) उदारमतवाद ग) साम्यवाद घ) समाजवाद

7) कल्पना एवं सौन्दर्य का विरोध ..... कविता की विशेषता है।

क) प्रयोगवाद ख) समकालीन ग) छायावादी घ) प्रगतिवादी

8) सन् 1936 ई. में ..... की अध्यक्षता में प्रगतिशील साहित्य का प्रचार-प्रसार करने के लिए लखनऊ में पहला अधिवेशन संपन्न हुआ।

क) आ. शुक्ल ख) डॉ. नगेंद्र ग) प्रेमचंद घ) निराला

9) हिंदी कविता में साठ के दशक के बाद लिखी गई कविताएँ ..... की श्रेणी में आती है।

क) प्रगतिवादी ख) समकालीन ग) छायावादी घ) प्रयोगवादी

10) कवि ..... को समकालीन कविता के प्रवर्तक माना जाता है।

क) आ. शुक्ल ख) जगदीश चतुर्वेदी ग) प्रेमचंद घ) निराला

11) राजनीतिक व्यंग्य ..... कविता की विशेषता है।

क) छायावादी ख) प्रयोगवादी ग) समकालीन घ) रहस्यवादी

12) समकालीन कविता का ..... कविता नाम से भी जाना जाता है।

क) साठोत्तरी ख) छायावादी ग) प्रयोगवादी घ) प्रगतिवादी

4.5 पारिभाषिक शब्द – शब्दार्थ :

1. छायावाद – अव्यक्त, अज्ञात को विषय बनाकर उसके प्रति प्रणय, विरह के भाव कविता से प्रकट करना।
2. स्वच्छंदता वाद – अपनी इच्छा के अनुसार लिखनेवाला।
3. रहस्यवाद – वह धार्मिक विचार जिसमें मनुष्य प्रत्यक्ष रूप में ईश्वर के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है।
4. मानवतावाद – इन्सानियत, मानीयता का भाव।
5. प्रगतिवाद – समाज, साहित्य को प्रगतिशील विचारधारा के द्वारा आगे ले जाने वाला सिद्धांत।
6. मार्क्सवाद – कार्ल मार्क्स के विचारों पर आधारित सिद्धांत ।
7. समकालीन – अपने समय की कविता, वर्तमान काल की कविता।
8. राजनीतिक व्यंग – राजनीति की आलोनचना
9. मोहभंग – जो मोह किया था वह पूरा न होना।

4.6 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्नों के उत्तर :

1. छायावादी	2. मुकुटधर पांडेय	3. डॉ. नगेंद्र	4. महादेवी वर्मा
5. 1936	6. मार्क्सवाद	7. प्रगतिवादी	8. प्रेमचंद
9. समकालीन	10. जगदीश चतुर्वेदी	11. समकालीन	12. साठोत्तरी

4.7 सारांश :

1. हिंदी साहित्य को अध्ययन की सुविधा के लिए विभिन्न कालखंडों में विभाजित किया है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल इन चार कालखंडों में हिंदी साहित्य का विभाजन किया है। सन 1900 ई. से अबतक के कालखंड को आधुनिक काल कहा जाता है। आधुनिक काल का अध्ययन करने के लिए फिर उसे विभिन्न भागों में विभाजित किया है। जैसे- भारतेंदु युग (1850 ई. से 1900 ई.), द्विवेदी युग (1900 ई. से 1920 ई.), छायावाद (1920 ई. से 1936 ई.), प्रगतिवाद (1936 ई. से 1843 ई.), प्रयोगवाद/नई कविता (1943 ई. से 1960 ई.) और साठोत्तरी कविता (1960 ई. से आगे)। आधुनिक काल में मनुष्य के जीवन में काफी परिवर्तन हुए है। उसी तरह कविता के भाषा और शिल्प में भी काफी परिवर्तन देखने मिलते हैं। आधुनिक काल की कविता उत्तरोत्तर आमजन की कविता बनती गई है। इसमें सर्वसामान्य लोगों की जीवन की विभिन्न विषयों एवं समस्याओं को रेखांकित करने का प्रयास कवियों ने किया। इसकारण आधुनिक कविता के विभिन्न कालखंड में लोकतत्व की प्रधानता रही है। अत: इस इकाई में छायावाद, प्रगतिवाद और साठोत्तरी/समकालीन कविता पृष्ठभूमि को साथ उनकी विशेषताओं का विश्लेषण किया है।

2) हिंदी की रोमांटिक स्वछंदतावादी काव्यधारा की विकसित अवस्था को छायावाद नाम से जाना जाता है। मौटे तौर पर छायावाद का विकास व्दिवेदीयुगीन कविता के उपरान्त हिंदी में हुआ। छायावादी काव्य की समय सीमा अधिकतर विद्वानों ने सन् 1918 ई. से 1936 ई. तक माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी छायावाद का प्रारंभ 1918 से ही माना है क्योंकि छायावाद के प्रमुख कवियों पन्त, प्रसाद, निराला ने अपनी रचनाएँ लगभग इसी वर्ष के आस-पास लिखनी आरंभ की थीं। इस युग में छायावाद इतनी प्रमुख प्रवृत्ति रहने के कारण सभी कवि इससे प्रभावित हुए और इसके नाम पर ही इस युग को छायावादी युग कहा जाने लगा। छायावाद युग को साहित्यिक खड़ीबोली का स्वर्ण युग कहा जाता है। आधुनिक हिंदी काव्यधारा के विकास में छायावाद का स्थान महत्वपूर्ण है। छायावाद ने केवल अंतर्वस्तु के स्तर पर समृद्ध किया अपितु काव्य भाषा और संरचना की दृष्टि से से भी हिंदी कविता को समृद्ध किया है। इस काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियाँ हैं- वैयक्तिकता, प्रेम और सौंदर्य, प्रकृति-चित्रण, रहस्यवाद, स्वतंत्रता, प्रेम, मानवतावाद, वेदना और निराशा, स्वच्छंदता आदि।

3) प्रगतिवाद ने समाजवादी व्यवस्था का लक्ष रचनाकार के सामने रखा। कल्पना एवं सौन्दर्य के स्वप्नजीवी कवियों ने उसका विरोध कर प्रगतिवाद को अपनाया। कविता में कल्पना के जगह यथार्थ,सामाजिकता को अपनी कविता को केन्द्रबिंदु बनाया। प्रगतिवादी काव्यधारा ने शोषक एवं शोषित वर्ग की बाँटा और उसपर

विचार-विनिमय किया। प्रगतिवादी कविता में दलित, मजदूर,शोषित के प्रति विशेष भाव व्यक्त किया गया है। हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का आरंभ सन् 1936 से माना जाता है। सन् 1936 ई. से लेकर 1943 ई. तक की कविताओं को प्रगतिवादी काव्यधारा कहा जाता है। प्रगतिवादी काव्यधारा का मूल आधार मार्क्सवाद है। प्रगतिवाद रचना एवं आलोचना के क्षेत्र में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण लेकर आया। प्रगतिवाद केवल सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही स्वीकारता है। प्रगतिवाद साहित्य के सोद्श्य को स्वीकारता है। प्रगतिवाद का मुख्य उद्देश्य कुरूप, शोषक, सड़ी गली, विसंगतिग्रस्त शक्तियों से पर्दा हटाना एवं नई सामाजिक शक्तियों से संघर्षों, युयुत्सा तथा आस्था को सबल बनाना है। प्रगतिवादी कविता सामाजिक जीवन की वास्तविकता को लकर चलता है इसलिए उसे जनता तक पहुंचना तथा जनता के जीवन की बात कहना उसका लक्ष बन गया था। यही कारण है कि उसने छायावाद की वायवी, असमान्य, रेशमी परिधान शालिनी सूक्ष्म भाषा का परित्याग कर सुस्पष्ट , सामान्य, प्रचलित भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्य बनाया। उसने प्रतिकों, शब्दो, मुहावरों तथा चित्रों का चयन जन-जीन से लिया है। इसलिए उनकी भाषा में सादगी होते हुए भी जीवंतता है। रूढियों का विरोध, शोषितों का करूण-गान, शोषकों के प्रति घृणा, क्रांति की भावना, मार्क्सवाद का गुणगान, मानवतावाद आदि विशेषताएं है।

4) हिंदी कविता जगत में सन 1959 में तिसरा सप्तक प्रकाशन हो चुका था। सन 1960 के बाद हिंदी कविता में नए बदलाव आने लगे। इस नई कविता को क्या नाम दिया जाए, इसे लेकर काफी वाद-विवाद होने लगे। छठे दशक के बाद की कविता व्यक्तिवाद और आधुनिकतावाद के साथ ही अधिक तीव्रता से विकसित हुई लेकिन इसके तेवर अलग थे। साठोत्तरी काल की कविता को लेकर कई आंदोलन चलाए गए जिसमें अकविता, विद्रोही कविता, बीट कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, युयुत्सावादी कविता, नूतन कविता, सहज कविता, विचार कविता आदि नामों से कविता के नए तेवर और भाव-भंगिमा दिखाई देने लगी। लेकिन ये सभी आंदोलन क्षणजीवी साबित हुए और सातवे दशक से इन कविताओं को साठोत्तरी या समकालीन कविता कहा जाने लगा। आम आदमी का चित्रण, यथार्थता, नारी के प्रति हीन दृष्टिकोण आजादी से मोहभंग, राजनीतिक व्यंग्य, विद्रोह, सांप्रदायिकता, निषेधात्मकता आदि विशेषताएं है।

4.8 स्वाध्याय :

1. छायावादी की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. प्रगतिवाद की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. समकालीन कविता की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. छायावाद के प्रमुख कवि प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी वर्मा के काव्य-संग्रहों की सूचि, पुरस्कारों की सूचि बनाकर उनके फोटो का संग्रह कीजिए।
2. प्रगतिवाद के प्रमुख कवियों के प्रमुख कविताओं के संकलनों की सूचि बनाकर उनके फोटो का संग्रह कीजिए।

3. साठोत्तरी कविता के प्रमुख कवियों के काव्य–संकलनों की सूचि बनाकर उनका अध्ययन करें।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. हिंदी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, जयभारती प्रकाशन, मायाप्रेस इलहाबाद।
2. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
3. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली।
5. हिंदी साहित्य का इतिहास : नए विचार–नई दृष्टि– डॉ. सुरेशकुमार जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
7. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. पूरनचंद टंडन, जगतराम एंड सन्स, नई दिल्ली।

●●●